सस्ती-ग्रन्थमाला का सातवाँ पुष्प

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

प्रकाशक :—

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,

नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली।

प्रथम बार ४०००
द्वि० बार १०००
तृ० बार २३००
चतुर्थ बार २२००

वीर नि० सं० २४९१

वि० सं० २०२२

लागत मात्र मूल्य तीन रुपया

प्रकाशक :—
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
श्री दि० जैन नया मन्दिर,
धर्मपुरा, देहली—६

थ भी
टोडरमल
ार्ग-प्रकाशक
ही देखनेको

पत्र व्यवहार करने का पता —
मुन्शी सुमेरचन्द जैन
अराइज़ नवीस,
२५६६, छत्ता प्रतापसिंह,
दरीबा कलां, देहली-६ ।

७-८-१९६५

मुद्रक

पृष्ठ १ से १४४ तक
फमस प्रिन्टग प्रेस,
चार रहट, दिल्ली—६

पृष्ठ १४५ से ३५२ तक :
शिवजी प्रेस,
गली बर्फ वाली, दिल्ली—६

पृष्ठ ३५३ से ५२८ तक
मॉडर्न आर्ट प्रिन्टर्स,
३६१०, गली जगत सिनेमा वाली
देहली—६

प्रस्तावना

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

वाङ्मयमे हिन्दी जैन साहित्य अपनी खास विशेषता रखता है। इतना ही नही; किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय भी प्रायः जैन विद्वानोको प्राप्त है, क्योंकि हिन्दी भाषाका उद्गम भ्रंश भाषासे हुआ है जिसमे जैनियोका सातवी शताब्दीसे १७वीं ब्दी तकका विपुल साहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित्र, पुराण, और स्तुति आदि विभिन्न विषयो पर लिखा गया है। यद्यपि का अधिकाश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है तो भी हिन्दी ा मे जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनो मे देखा जाता है। हिन्दी ाद्य साहित्य १७ वी शताब्दी से पूर्व का मेरे देखनेमें नही आया। कता है कि यह इससे भी पूर्व लिखा गया हो परन्तु पद्य साहित्य भी पूर्व का देखनेमे अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमें स्वतन्त्र कृतियोकी अपेक्षा टीका ग्रन्थोकी अधिकता पाई जाती है परन्तु स्वतन्त्र रूपमे लिखी गई कृतियोमे सबसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ विक्रमकी १९वी शताब्दी के प्रथम पादकी रचना है तथापि उससे पूर्ववर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एव महत्ताको नही पा सके। उसका खास कारण प० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है। उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमें अपूर्व क्षमता थी, जो उन्हें स्वतः प्राप्त थी। उनकी विचारशक्ति आत्मानुभव और पदार्थ विवेचन की अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक

भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान ५. है। यद्यपि मागानेर (जयपुर) वासी प० दीपचन्दजी शाहने स० १ ६ मे चिद्विलास नाम के ग्रन्थ को और अनुभव प्रकाश की रचना की और पद्य ग्र लिखे हैं जो मनन करने योग्य हैं परन्तु उनकी भा प० जीकी भाषा के समान परिमार्जित नही है और न मोक्षम जैसी सरल एव सरस गम्भोर पदार्थ विवेचनका रहस्य मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे हैं।

ग्रन्थ का नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वय ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पाँच प्रकाशनोमे ग्र का नाम 'मोक्षमार्ग-प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमा प्रकाशक नही परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वय ही 'मो मार्ग-प्रकाशक' सूचित किया है और उनकी स्वहस्त लिखि 'खरडा' प्रति मे प्रत्येक अधिकार की समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पि मे 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही लिखा हुआ है और ग्रन्थ के प्रारम्भ भी उन्होने 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक सूचित किया है। इस कारण ग्र का नाम मोक्षमार्ग प्रकाशक रक्खा गया है, मोक्षमार्ग प्रकाश नही। ग्रन्थ का यह नाम अपने अर्थ को स्वयमेव सूचित कर रहा है। उसमे मोक्षमार्ग के स्वरूप अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोंका विवेचन सरल एव सुबोध हिन्दी भाषा मे किया गया है। साथ ही शका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरण भी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमे समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोसे छिपी हुई नही है। उसका अध्ययन स्वाध्याय प्रेमियोके लिये ही आवश्यक नही किन्तु विद्वानोके लिये भी अत्यावश्यक है। उससे विद्वानों को विविध प्रकारकी चर्चाओ का—

खासकर प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंका कथन, प्रयोजन, उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका— जो स्पष्टीकरण पाया जाता है, वह अन्यत्र नही है। और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोके अध्ययन, मनन, एवं चिन्तवन करनेकी वस्तु है। उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमे विरुद्ध जचनेवाली कथनशैली-के विरोधका निरसन सहज ही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है। साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है। उससे जहाँ निश्चय व्यवहार रूप नयोकी कथनशैली, दृष्टि, सापेक्ष, निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है, वहाँ सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूप का अध्ययन एव चितवन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरण का अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारनेमें समर्थ हो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको छोड़कर यथार्थ वस्तु स्थितिके मार्ग पर आजाता है और फिर वहाँ आत्म कल्याण करनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी पकरणोकी विवेचना बडी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुबोधशैलीसे की गई है परन्तु अभाग्यवश ग्रन्थ अधूरा ही रह गया है। मल्लजी अपने सकेतोके अनुसार इसे महाग्रन्थ का रूप देना चाहते थे और उसी दृष्टिसे उन्होने अधिकार विभाग के साथ विषयका प्रतिपादन किया है। काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नही रखता। फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपनेआपमें परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमें जगतका कल्याण करनेमें सहायक होगा। इस ग्रन्थके अध्ययन

एवं अध्यापनसे कितनोंका क्या कुछ भला हुआ और कितनोकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ हुई, इसे बतलानेकी आवश्यकता नही। पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वय परिचित हैं।

ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढू ढारी है। चू कि जयपुर स्टेट राजपूतानेमें है और जयपुर के आस-पासका देश ढू ढाहड देश कहलाता है, इसी से उक्त प्रदेशकी बोल चालकी भाषा ढू ढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजन मे ढू ढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नही है, उसे राजस्थानी और व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नही कहा जा सकता और यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस पर व्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषा का भी असर रहा हो। व्रजभाषाके प्रभावके बीज तो उसमे निहित ही हैं, क्योकि उत्तर प्रदेश की भाषा व्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोमे उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह सम्भावना नही की जा सकती है कि ढूंढारी भाषा व्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही हो किन्तु उसमे व्रज-भाषाके शब्दोका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढू ढारी होते हुए भी उसमे व्रजभाषाकी पुट अकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही और उसमें मधुरता भी कम नही पाई जाती है। पढते समय चित्त मे स्फुर्तिको उत्पन्न करती है और बडी ही रसीली और आकर्षक जान पडती है। साथ ही १९वी शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोमे जिस ढू ढारी भाषा का प्रचार था, प० टोडरमलजीकी भाषा उससे कही अधिक परिमार्जित है। वह आजकलकी भाषाके बहुत निकटवर्ती है और आसानीसे समझमे आसकती है। ढू ढारी भाषामे 'और' 'इसलिये' 'फिर' आदि शब्दोके स्थान पर 'बहुरि' शब्द का प्रयोग किया गया है

और 'क्योंकि' 'इसलिये' 'इस प्रकार' आदि शब्दोंके स्थान पर 'जातैं' 'तातैं' 'या भांति' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है और षष्ठी विभक्तिमें जो रूप देखनेमें आते हैं उनमें बहुबचनमें 'सिद्धोंके' स्थान पर 'सिद्धनिका' जैसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है। इसी तरह के और भी प्रयोग हैं पर उनके समझनेमे कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती। हाँ, ग्रन्थमे कतिपय ऐसे शब्दोका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोंकी समझमें नही आता जैसे 'आखता' शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ उतावला होता है और इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा मारै है' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलके समयमे जब कि हिन्दी भाषा बहुत कुछ विकास एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नही होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ नौ अधिकारोमे विभक्त है। उन मे अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमे परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम अधिकारमे मगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रगट करनेके अनन्तर ग्रन्थकी प्रमाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् बाचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई है।

दूसरे अधिकारमें सासारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए कर्म बन्धन निदान, नूतन बध विचार, कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिक आत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध, उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद, योग और कषायसे हनेवाले यथायोग्य कर्म बन्धनका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओं

का यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंको पूर्व बद्ध अवस्था मे होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया गया है। साथ ही कर्मों के फलदानमे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और भावकर्म द्रव्यकर्म का रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमे भी ससार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है और मोहोत्पन्न विषयोकी अभिलाषाजनक दुःख तथा मोही जीवके दुःख निवृत्तिके उपायको नि स्सार बतलाते हुए दुःख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदय से होनेवाले दुःख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया है। एकेन्द्रियादिक जीवोके दुःखोका उल्लेख करते हुए नरकादि चारो गतियोके घोर कष्टो और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारमे ससार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थों का वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पाचवे अधिकारमे आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बडा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मत के प्राचीन ग्रन्थोके उदाहरणो द्वारा जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओ एव मान्यताओकी समीक्षा की गई है और अछेरो (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवली के आहार नीहारका प्रतिषेध तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोके रखनेका निषेध किया है। साथ ही ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा-

धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध और मूर्तिपूजाके प्रतिषेध का निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमे गृहीत मिथ्यात्वके कारण कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवे अधिकार मे जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपाग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है, जिसे पढते ही जैन दृष्टि का वह सत्य स्वरूप सामने आ जाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोकी दृष्टि को न समझने के कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण प्रकरणमे मल्लजीने जैनियोके अभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बडा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोको सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशुद्ध, देशना, प्रायोग्य और करण इन पचलब्धियोका निर्देश करते हुए उक्त अधिकार को पूरा किया गया है।

आठवें अधिकारमे प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोका प्रयोजन, स्वरूप, विवेचन शैली और उनमे होने वाली दोष कल्पनाओका प्रतिषेध करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथनशैली का समुल्लेख किया गया है। साथ ही आगमाभ्यास की प्रेरणा भी की गई है।

नवमे अधिकारमे मोक्षमार्गके स्वरूप का निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनो मे से मोक्षमार्ग के प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नही

लिखा जा सका है। खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एव ग्रन्थको पूरा करनेमें समर्थ नही हो सके हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकार में जो भी कथन दिया हुआ है, वह बडा ही सरल और सुगम है। उसे हृदयगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहज ही समन्वय हो जाता है और उसके भेदोके स्वरूप का भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमे चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय ग्रन्थकर्ताके विशाल अध्ययन, अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके सद्योतक हैं।

इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि गम्भीर एव दुरुह चर्चा को सरलसे सरल शब्दोमे अनेक दृष्टान्त और युक्तियोके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नही बनना पडता।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जन विद्वानोमे पडित टोडरमल-जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य लेखक विद्वानोमें प्रथमकोटिके विद्वान् हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहकार तो आपको छूकर भी नही गया था। आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। श्री कुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक ग्रन्थोके अध्ययन,

मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद् हो जाते थे। सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एव सुयोग्य विद्वान् थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था और वस्तु तत्वके विश्लेषणमें आप बहुत दक्ष थे। आपका आचार एव व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बी-जनो का कोई परिचय नही दिया और न अपने लौकिक जीवन पर ही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और अध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं —

"मैं हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरघो, लग्यो है अनादितै कलक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो है शरीरको मिलाप जैसे खलको। रागादिक भावनिको पायकैं निमित्त पुनि होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलको। ऐसैं ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बनैं तो बनै यहाँ उपाव निज थलको ॥३६॥

दोहा—रम्भापति स्तुत गुन जनक, जाको जोगीदास।
सोई मेरो प्रान है, धारै प्रगट प्रकाश ॥३७॥
मै आतम अरु पुद्गल खध, मिलकैं भयो परस्पर बध।
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥३८॥
मात गर्भमें सो पर्याय, करकैं पूरण अग सुभाय।
बाहर निकसि प्रगट जब भयो, तब कुटुम्बको भेलो भयो ॥३९॥
नाम धरघो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहै सब कोय।
ऐसो यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय ॥४०॥
देश ढुढाहड़ माँहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।

तामें ताको रहनो घनो, थोरो रहनो ओढै बनो ।।४१।।
तिस पर्याय विषै जो कोय, देखन जाननहारो सोय ।
मै हूं जीव द्रव्य गुन भूप, एक अनादि अनन्त अरूप ।।४२।।
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय ।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिको विनशै मैं शिवराम ।।४३।।
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया ।
ये सब हैं पुद्गल का खेल, इनिमें नाहि हमारो मेल ।।४४।।

इन पद्यो परसे जहाँ पडितजीके अध्यात्मिक जीवनकी झाकीका दिग्दर्शन होता है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था। पिताका नाम जोगीदास था और माताका नाम रम्भा देवी था। दूसरे स्रोतोसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जानिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोसा और बडजात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पडता है। तथा आपके वशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारी ही आपके जीवन यापनका एक मात्र माधन था—और घर भी सम्पन्न था। इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नही थी।

आपके गुरुका नाम बन्शीधर [1] था, इन्हीसे प० जी ने प्रारम्भिक

---

1 यह प० बन्शीधर वही जान पडते है जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी राय-मल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामे तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग किया है जब वे उदयपुरमे प० दौलतरामजीके पाससे जयपुर प० टोडरमलजी से मिलने आए थे और वे वहाँ नही मिले थे, प० बन्शीधर जी मिले थे यथा—

"पीछे केताइक दिन रहि प० टोडरमल जयपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासू मिलनेके अर्थि जयपुर नगरी आये। सो एक बन्शीधर किंचित् सयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रोका पाठी, सो पचास लडका पुरुष वाया जासै व्याकरण छन्द, अलकार, काव्य चरचा पढै, तासू मिले।" वीरवाणी वर्ष अक २।

शिक्षा प्राप्त की थी। आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्र ही अवधारण कर लेते थे। फलतः कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोडेही समयमें जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलकार, कोष आदि विविध विषयोमे दक्षता प्राप्त कर ली थी।

यहाँ यह बात भी ध्यान मे रखने लायक है कि पडितजीके पूर्वज बीमपथ आम्नायके माननेवाले थे परन्तु पंडितजीने वस्तु स्वरूप और भट्टारकीय प्रवृत्तियोका अवलोकन कर तेरह पन्थ का अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमे सुधार होता न देखा किन्तु उलटा विकृत परिणमन एव कषाय की तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोको समकरि तेरा पन्थ की शुद्ध प्रवृत्तियोको प्रोत्साहन देते हुए जनता में सच्ची धार्मिक भावना एव स्वाध्यायके प्रचारको बढाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझने में समर्थ हुई और फलत. अनेक सज्जन और स्त्रियाँ अध्यात्मिक चर्चा के साथ गोम्मटसारादि ग्रन्थो के जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नका ही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमे एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्राय अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्व चर्चादि कार्योमे यथायोग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता* थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट

* "तथा तिनके पीछे टोडरमलजीके बडे पुत्र हरिश्चन्द्रजी तिनते छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान् वक्ताके लक्षणकू धारैं तिनके पास कितनेक रहस्य सुनिकर कुछ जानपना भया।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग स० १८३७ मे 'गुमान पन्थ' की स्थापना की थी[1]। गुमान-पन्थकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एव प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोमे पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओ को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था। उस समय चू कि भट्टारकोका साम्राज्य था और जनता भोली-भाली थी, इसीसे उनमे जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्ग की प्रवृत्तिके लिये उन्हे 'गुमान पन्थ' की स्थापनाका कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमे आजभी मौजूद है और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमे बहुत कुछ सहायता मिली है। **जयपुरमें दीवान बधीचन्दके मन्दिरमे गुमान पन्थकी स्थापना** का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमे उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमार्ग-प्रकाशक और गोम्मटसारादिकी मिली हैं। अस्तु—

क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पडित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमे ब्रह्मचारी रायमलजीने स० १८२१ की चिट्ठीमे जो पक्तियाँ लिखी हैं वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य हैं और वे इस प्रकार हैं—

"सारा ही विषै भाईजी टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम अलौकिक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोकी सम्पूर्ण लाख श्लोक टीका बनाई

---

1. श्वेताम्बरी मुनि शान्तिविजयजी अपनी मानव धर्म संहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १६७ मे लिखते हैं कि—"बीस पन्थ में से फूटकर सम्वत् १७२६ मे ये अलग हुए। जयपुरके तेरापन्थियोमें से पं० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने सम्वत् १८३७ में गुमान पन्थ निकाला।"

और पाच सात ग्रन्थोंकी टीका बनायवेका उपाय है। सो आयु की अधिकता हुए बनेगी। अर धवल महाधवलादि ग्रन्थोके खोलवाका उपाय किया वा उहाँ दक्षिण देससूं पाँच सात और ग्रन्थ ताडपत्राविषै कर्णाटी लिपि मे लिख्या इहाँ पधारे हैं। याकू मल्लजी बाचै हैं, वाका यथार्थ व्याख्यान करे हैं वा कर्णाटी लिपि मे लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छन्द अलकारका याकै ज्ञान पाइए है। ऐसे पुरुष महत बुद्धिका धारक ई कालविषै होना दुर्लभ है तातै वासू मिले सर्व सन्देह दूरि होइ हैं।"

इससे पडित जी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कर्नाटकी लिपिमे लिखना, अर्थ करना उस भाषा के परिज्ञानके बिना नही हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य भाषाके ही लेखक नही थे, किन्तु आपमे पद्य रचना करनेकी क्षमता थी और हिन्दी भाषाके साथ सस्कृत भाषामे भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे। गोम्मटसार ग्रन्थकी पूजा उन्होने सस्कृतके पद्योमे ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्रभडारमें मौजूद है। इसके सिवाय सदृष्टि अधिकारका आदि अन्त मगल भी सस्कृत श्लोकोमें दिया हुआ है और वह इस प्रकार है—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः।
प्रकाशिनः पदं स्तौभि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः॥

यह पद्य द्वयर्थक है। प्रथम अर्थमें क्षपणासारके साथ लब्धिसार की सदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमें करण लब्धि के परिणामरूप कर्मोंकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्के चरणोंकी स्तुतिका उपक्रम किया

गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्य भी तीन अर्थोको लिए हुये है और उसमें शुद्धात्मा (अरहन्त), अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओको सदृष्टिकी निर्विघ्न रचना के लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार है —

शुद्धात्मनमनेकान्तं सानुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्धचर्थं संदृष्टचर्थप्रकाशकम् ।।

हिन्दी भाषाके पद्योमे भी आपकी कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोको जानकारीके लिये गोम्मटसारके मगलाचरण का एक पद नीचे दिया जाता है जो चित्रालकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है। उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेसे चित्रालकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अवकारोके निदश भी निहित प्रतीत होते हैं। वह पद्य इस प्रकार है —

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ।।

इस पद्यमे बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यानरूपी धनमे लीन रहनेवाले, काम और मान (घमड) से रहित मेघके समान धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षीण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओ को नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बधका उदाहरण है। इसमे ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमश एक-एक अक्षर छोडनेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोडनेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोकी उसमें शीघ्र गति नही होतो किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है।

ग्रन्थाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृष्ठ १६-१७ में जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है .—

"बहुरि हम इस कालविषै यहाँ अब मनुष्य पर्याय पाया सो इस विषै हमारै पूर्व सस्कारतै वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषै अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातै व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीका सहित समयसार, पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनि का आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनविषै हमारै बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमे उद्धृत अनेक ग्रन्थोके उदाहरणोसे पडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पडितजी गृहस्थ थे—घर मे रहते थे परन्तु वे सासारिक विषय-भोगोमे आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे और सवेग निर्वेद आदि गुणोसे अलकृत थे। अध्यात्म-ग्रन्थोमे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नही होते थे। उनकी मधुर वाणी श्रोताजनोको आकृष्ट करती थी और वे उनकी सरल वाणीको सुन परम सन्तोषका अनुभव करते थे। पडित टोडरमलजीके घर पर विद्याभिलाषियोका खासा जमघट सा लगा रहता था। विद्याभ्यास के लिये घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे आप बडे प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही

बन रहा था। वहाँ तत्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हे आपके साथ विविध विषयो पर तत्वचर्चा करके तथा अपनी शकाओका समाधान सुनकर बड़ा ही सन्तोष होता था और इस तरह वे पडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नही रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमे जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमे दीवान रतनचन्दजी [1]

---

1. दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोमे प्रमुख थे। वे बडे ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता बधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० स० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिहजीके समयमे दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० स० १८२६ मे जयपुरके राजा पृथ्वीसिहके समयमे थे और उसके बाद भी कुछ समय रहे है। प० दौलतरामजी ने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० स० १८२७ मे प० टोडरमलजीकी पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्योमे प्रगट है —

साधर्मिनमे मुख्य है रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसो साधर्मिनसो प्रीत।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमे महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनको सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु-प्रतापते कीनो ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्मसो जिन दासनको दास ॥९॥
तासू रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरणा उर धर धर्म सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान।
कुशल होय चहुँ सगको लहै जीव निज ज्ञान ॥११॥

अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटणी, महारामजी [1], त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेमचन्दजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। बसवा निवासी श्री प० देवीदासजी गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्व चर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था [2]। उनका प्रवचन बडा ही मार्मिक और सरल होता था और उसमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी।

समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमे प्रसिद्ध शहर है। उसे आमेरके राजा सवाई जयसिहने स० १७८४ मे बसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमें विद्याधर नामके एक जैन विद्वानने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलजीने सम्वत् १८२१ की चिट्ठीमें दिया है। उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरी के रूपमे हो रही थी, वहाँ जैनियोके सात आठ हजार घर थे, जैनियोकी इतनी अधिक गृहसख्या उस समय सम्भवत अन्यत्र कही भी नही थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहाँ के अधिकाश जैन राज्यके उच्च पदोंपर आसीन थे और वे राज्यमे सर्वत्र शाति एव व्यवस्थामे अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचन्दजी

अट्ठारहसै ऊपरै सवत सत्ताबीस।
मगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीम ॥ १२ ॥

1 महारामजी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। बडे ही बुद्धिमान थे और प० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमे विशेष रस लेते थे।

2 "सो दिल्ली सूं पढकर बसुवा आय पीछे जयपुरमे थोडे दिन टोडरमलजी महाबुद्धिमानके पास सुननेका निमित्त मिल्या, फिर बसुवा गये।"

—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

बालचन्दजी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था। वे बडे प्रजावत्सल थे। राज्यमे सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहाँ कलाल, कसाई और वेश्याएँ नही थी। जनता प्राय सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्वचर्चा, सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियाओं में श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गम्मटसारादि सिद्धातग्रन्थोकी तत्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओके सद् अनुष्ठानमे यथेष्ट भाग लेने लगी थी। प० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमे श्रोताओकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी सख्या सातसौ आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमे कई विद्वान थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमे जैनियोकी सख्या कई सहस्र है और उनमे कितने ही राज्यके पदो पर प्रतिष्ठित हैं।

साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमे जैनियोके बढते हुए प्रभुत्व एव वैभव को सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उससे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करनेकी चिन्तामे सलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय काममे लानेकी गुप्त योजनाए भी बनाई जाती थी। उनकी इस असहिष्णुताका कारण यह जान पडता है कि जैनियोके प्रसिद्ध विद्वान् पडित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमे विजय पाना सम्भव नही था, क्योकि उनकी मार्मिक सरल एव युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सब पर ही प्रभाव पडे बिना नही रहता था और जैनी उस समय धन, वैभव,

प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योंमें सबसे आगे बढे हुए थे, राज्यमे भी उनका कम गौरव नही था और राज्य कार्यमे उनकी बहुमूल्य सेवाओका मूल्य बराबर आँका जाता था। इन्ही सब बातोसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लघन कर चुकी थी।

सम्वत् १८१७ में श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिहजी प्रथम पर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमे कर लिया तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेरगर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमे भी कभी कल्पना नही की जा सकती थी। राज्यमें पाये जानेवाले लाखो रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमें शिवकी मूर्ति रखदी गई और जिनमूर्तियोको खंडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया। यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अंधेरगर्दीका पता चला तब उन्होंने उसका गुरुपद खोसि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय बाद ही पा लिया [1]।

---

1. सम्वत् अट्टारहसे जब गए, ऊपर जबै अट्टारह भये।
तब इक भयो तिवारी श्याम, डिंभी अति पाखडको धाम॥
तुच्छ अधिक द्विज सबतैं घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा बसि कियो, माधवेष नृप गुरु-पद दियो॥
दिन कितेक बीते हैं जबै, महा उपद्रव कीन्हो तबै।
हुक्म भूपको लेके वाह, निसि गिराय देवल दिय ढाह॥
अमल राजाको जैनी जहाँ, नाव न ले जिनमतको तहाँ।
कोऊ आधो कोऊ सारो, बच्यो जहाँ छत्री रखवारो॥
काहू में शिव-मूरति धरदी, ऐसैं मची 'श्याम' की गरदी।

चुनाचे सम्वत् १८१९ मे मगसिर बदी दोयज के दिन जयपुर राज्यके ३३ परगनोके नाम एक ग्राम हुक्म जारी किया गया जिसमे जन-धर्मको प्राचीन और ज्योका त्यो स्थापित करनेकी ग्राज्ञा दी गई और तेरापन्थ बीसपन्थके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजामे किसी प्रकार की रोकटोक न करनेका ग्रादेश दिया गया और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट पाटकर लेली गई थी उसे पुन वापिस दिलानेकी भी ग्राज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा ग्रश 'वीरवाणी' के टोडरमल ग्रकमे प्रकाशित हुग्रा था, नीचे दिया जाता है :—

"सनद करार मिती मगसिर बदी २ स० १८१९ ग्रप्रच हृद सरकारीमे सरावगी वगैरह जैनधर्म माधवा वाला सू धर्ममे चालवा को तकरार छो सो याको प्राचीन जान ज्यो को त्यो स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्रीहजूरकै लिखा छै—बीम पन्थ तेरा पन्थ परगनामे देहरा बनाग्रो व देवगुरुशास्त्र ग्रागै पूजै छा जी भाति पूजो—धर्ममे कोई तरह की ग्रटकाव न राखो ग्रर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरहको ग्रागे जहाँसे पावे छा तिठा सू भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, ग्रक १९ से २१।

उसके बाद जयपुर ग्रादि स्थानोमे पुन उत्साहसहित जिनमन्दिर और मूर्तियोका निर्माण किया गया और ग्रनेक प्रतिष्टादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह वहाँ पुनः जिनधर्मका उद्योत हुग्रा।

ग्रकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दिया दुपहरा देश निकारो।
दुपटा धोति धरे द्विज निकस्यो, तिय जुत पायन लखि जग विगस्यो।
सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण श्याम, जीवत ही पाई कुगति॥

—बुद्धिविलास, ग्रागरा प्रति

इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव

सम्वत् १८२१ में जयपुरमें बडी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे [1] ज्ञात होता है कि उसमे चौसठ गजका लम्बा चौडा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारों तरफ बनाये गये। उसकी रचनामे बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोंका उपयोग किया था। सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान सस्कृत भाषा पाठके अनुसार किया गया है और यह उस चिट्ठीमे अनेक ऐतिहासिक बातोका उल्लेख किया गया था। उस चिट्ठी मे अनेक ऐतिहासिक बातो का उल्लेख किया गया है और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिड, कोरडा जहानाबाद, सिरोज, वासौदा, इन्दौर, औरगाबाद, उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान आदि भारतके विभिन्न स्थानोको भेजी गई थी। इससे उसकी महत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्य की ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी। दरबारसे यह हुक्म आया था कि "पूजा जी के अर्थ जो वस्तु चाहिए सो ही दरबारसे ले जावो।" इस तरह की सुविधा वि० की १५वी १६वी शताब्दीमे ग्वालियरमे राजा डूगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिहके राज्य-कालमे जैनियोको प्राप्त थी और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोमे राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल

पं० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २ गोम्मटसार जीवकाड टीका, ३ गोम्मटसार कर्मकाण्ड टीका, ४ लब्धिसार क्षपणासार टीका, ५ त्रिलोक-

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

सार टीका, ६ आत्मानुशासन टीका, ७ पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका, ८ अर्थसदृष्टि अधिकार, ९ मोक्षमार्ग प्रकाशक और १० गोम्मट-सारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पचमीको मुलतानके अध्यात्म-रसके रोचक खानचन्दजी, गगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमे लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवके ओत-प्रोत है। इसमे अध्यात्मिक प्रश्नो का उत्तर कितने सरल एव स्पष्ट शब्दोमें विनयके साथ दिया गया है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पडितजीकी आन्तरिक भद्रता तथा वात्सल्यताका खासतौरसे द्योतक है –

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिये।"

गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

गोम्मटसार जीवकाड, कर्मकाड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोके रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्र-वर्ती हैं, जो वीरनन्दि इन्द्रनन्दिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे और जिनका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाए रची गई हैं किन्तु वर्तमानमे उपलब्ध टीकाओमे मदप्रबोधिका सबसे प्राचीन टीका है जिसके कर्ता अभयचन्द सैद्धान्तिक[1] हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशव-वर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामे 'जीवतत्व-

1. अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है। इसमें ८३ न० गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पजिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोमे किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भो-पात्तानाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपजिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक स० १२८१ वि० स० १४१६ में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभडारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनडी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी सस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनडी टीकाकी तरह 'जीवतत्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूल सघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे। भट्टारक ज्ञानभूषण का समय विक्रमकी १६वी शताब्दी है, क्योकि इन्होने वि० स० १५६० मे 'तत्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना की है। अत· टीकाकार नेमिचन्द्रका भी समय वि० की १६वी शताब्दी है। इनकी 'जीव तत्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमे लिखी गई है और जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण निश्चय किया है[1]। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६वी शताब्दीका प्रथम चरण व विक्रमकी १६वी शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्रकी इस सस्कृत टीकाके आधारसे ही प० टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञान बनाई चन्द्रिका है। उन्होने इस सस्कृत टीकाको केशववर्णीकी टीका समझ लिया है जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्ति के निम्न पद्यसे प्रगट है —

केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।

सस्कृतटीका कीना एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥

पडितजीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त सस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद

---

1. देखो अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

विवेचन करती है। पडित टोडरमलजीने गोम्मटसार—जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, लब्धिसार—क्षपणासार, त्रिलोकसार इन चारो ग्रन्थोकी टीकाए यद्यपि भिन्न-भिन्न रूपसे की हैं किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारो ग्रन्थोकी टीकाओको एक करके उसका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' रक्खा है जैसा कि पडितजीकी लब्धिसार भाषा टीका प्रशस्तिके निम्नपद्यसे स्पष्ट है —

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रन्थनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकै।
इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ।
तातै एक करि दई हम तिनिको मिलायकै॥

सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धरचो है याका नाम।
सो ही होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकै।
कलिकाल रजनीमें अर्थको प्रकाश करै।
यातै निज काज कीने इष्ट भावभायकै॥३०॥

इस टीकामे उन्होने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है और अपनी ओरसे कषायवश कुछ भी नही लिखा, यथा —

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या माहि।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनो नाँहि॥३३॥

टीकाप्रेरक श्रीरायमलजी और उनकी पत्रिका :—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे[1]। रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामे स्वय लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होने २२ वर्षकी अवस्थामे

---

1. रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक।
सो नाना विध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो।

साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोग से जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म ग्रन्थोका पाठी था, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणा, बध, उदय और सत्ता आदिकी तत्वचर्चाका मर्मज्ञ था, जिसके तीन पुत्र थे जो जैनधर्मके श्रद्धालु थे, उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होने तीन चीजोका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्वहरितकायका, रात्रीभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह करनेका। इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तु तत्व का समीक्षण बराबर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश सयमके धारक थे। जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमे सलग्न रहते थ, साथ ही बडे ही उदार और सरल थे। उनके आचारमे विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोके विशेष प्रमी थे और विद्वानोसे तत्वचर्चा करनेमे बडा रस लेते थे। प० टोडरमलजीकी तत्व-चर्चासे बहुतही प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—एक कृति ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओको लिए हुए है। इनके सिवाय दो पत्रिकाये भी प्राप्त हुई हैं जो 'वीर वाणी' मे प्रकाशित हो चुकी हैं[1]। उनमेसे प्रथम पत्रिकामे अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओका समुल्लेख करते हुए पडित टोडरमलजीसे गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणा की गई है और वह सिघाणा नगरमे कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है। पत्रिकाका वह अश इस प्रकार है —

"पीछे सेखावटी विषै सिघाणा नग्र तहाँ टोडरमलजी एक दिली (दिल्ली) का बडा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म (कार्य) के अर्थि वहाँ रहै, तहाँ हम गए और टोडरमलजी मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये ताका उत्तर एक गोम्मटसार नाम ग्रन्थकी साखिसूं देते गए।

1. देखो वीरवाणी वर्ष १ अक २, ३।

सो ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वे सुनी थी तासूं विशेष देखी अर टोडरमल जीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछे उनसू हम कही—तुम्हारे या ग्रन्थका परिचै (परिचय) निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषा टीका होय तो घणा जीवोका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हो (इस) कालके दोषकरि जीवोकी बुद्धि तुच्छ रही है तो आगे यातै भी अल्प रहेगी। तातै ऐसा महान् ग्रन्थ प्राकृत ताकी मूलगाथा पन्द्रहसै १५००[1] ताकी सस्कृत टीका अठारह हजार १८००० ताविषै अलौकिक चर्चाका समूह सदृष्टि वा गणित शास्त्रोकी आम्नाय सयुक्त लिख्या है ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ती पूर्वे दीर्घकाल पर्यन्त लगाय अब ताईं नाही तो आगे भी याकी प्रवर्ती कैसे रहेगी ? तातै तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करो, आयुका भरोसा है नाही। पीछे ऐसे हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वे भी याकी टीका करनेका इनका मनोरथ था ही, पीछें हमारे कहनेकरि विशेष मनोरथ भया, तब शुभ दिन मुहूर्तविषै टीका करनेका प्रारम्भ सिघाणा नग्रविषै भया। सो वे तो टीका बनावते गए हम बाचते गए। बरस तीनमे गोम्मटसारग्रन्थकी अडतीस हजार ३८०००, लब्धिसार—क्षपणासार ग्रन्थकी तेरहहजार १३०००, त्रिलोकसार ग्रन्थकी चौदहहजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रन्थोकी पैसठ हजार टीका भई। पीछें सवाई जयपुर आये तहाँ गोम्मटसारादि च्यारो ग्रन्थोकू सोधि याकी बहुत प्रति उतरवाईं। जहाँ शैली थी तहाँ सुधाइ-सुधाइ पधराई। ऐसे इन ग्रन्थोका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान

[1] रायमलजी गोम्मटसार की मूल गाथा सख्या पन्द्रहसौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी सख्या सत्तरहसौ पाँच १७०५ है, गोम्मटसार कर्म काण्डकी ९७२ और जीवकाण्डकी ७३३ गाथासख्या मुद्रित प्रतियो मे पाई जाती है।

चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमे बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक सख्या पैंसठ हजार के करीब है और सशोधनादि तथा अन्य प्रतियोंके उतरवानेमे प्रायः उतना ही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका स० १८१८ मे समाप्त हुई है। इस टीकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमें पचपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की। यथा :—

आरम्भो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद॥
अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी मांगलीक उपकारी है।
तिनको स्वरूप जानि रागतें भई जो भक्ति,
कायको नमाय स्तुतिकों उचारी है॥
धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,
कर जोरि बारम्बार बन्दना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमे गद्यरूप मे प्रगट किया है[1]।

लब्धिसार की यह टीका वि० स० १८१८ माघशुक्ला पचमी के दिन पूर्ण हुई है, जैसा कि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है —

सवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्लापचमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत॥

---

1 "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये। वाके प्रसादतें सर्व आकुलता दूरि होइ हमारै शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

—लब्धिसारटीका प्रशस्ति

लब्धिसार—क्षपणासारकी इस टीकाके अन्तमें अर्थसदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमे दिया हुआ है, जिसमे उक्त ग्रन्थमे आनेवाली अकसंदृष्टियो और उनकी सज्ञाओ तथा अलौकिक गणितके करणसूत्रो का विवेचन किया गया है । यह सदृष्टि अधिकार से भिन्न है । जिसमें गोम्मटसार—जीवकाण्ड, कर्मकाण्डकी संस्कृतटोकागत अलौकिक गणितके उदाहरणो, करणसूत्रो, सख्यात असख्यात और अनन्तकी सज्ञाओ और अकसदृष्टियोका विवेचन स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमे किया गया है और जो 'अर्थसदृष्टि' के सार्थक नामसे प्रसिद्ध है । यद्यपि टीका ग्रन्थोके आदिमे पाई जाने वाली पीठिकामे ग्रन्थगत सज्ञाओ एव विशेषताका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठक जन उस ग्रन्थ के विषयसे परिचित हो सकें । फिर भी उनका स्पष्टिकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोकी रचनाकी गई है । इसका पर्यालोचन करनेमे सदृष्टि-विषयक सभी बातोका बोध हो जाता है । हिन्दी भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं । आपकी इन टीकाओसे ही दिगम्बर समाजमे कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं । इस सबका श्रेय प० टोडरमलजीको ही प्राप्त है ।

त्रिलोकसार टीका----

त्रिलोकसार टीका यद्यपि स० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी परन्तु उसका सशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबन्ध वगैरह बादको लिखे गये हैं । मल्लजीने इस टीकाका दूसरा कोई नाम नही दिया । इससे यह मालूम होता है कि उसे भी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाके अन्तर्गत समझा जाय ।

मोक्षमार्ग प्रकाशक----

इस ग्रन्थका परिचय पहले दिया जा चुका है और इसकी रचना

का प्रारम्भ समय भी सम्वत् १८२१ के पूर्वका है। भले ही बाद मे उसका सशोधन परिवर्धन हुआ हो।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका—

यह उनकी अतिम कृति जान पडती है। यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गई है। यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे उसे अवश्य पूरी करते। बादकी यह टीका श्री रतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणामे पडित दौलतरामजीने स० १८२७ मे पूरी की है परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नही हो सका है। फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है।

उक्त कृतियोका रचनाकाल स० १८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है। फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी स० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा जरूर है। प० टोडरमलजीकी ये सब रचनाए जयपुर नरेश माधवसिहजी प्रथमके राज्यकालमे रची गई हैं। जयपुर नरेश माधव-सिहजी प्रथमका राज्य वि० स० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है[1]। प० दौलतरामजीने जब स० १८२७ में पुरुषार्थसिद्ध्यु-पायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमे राजा पृथ्वीसिहका राज्य था। अतएव सवत् १८२७ से पहले ही माधवसिहका राज्य करना सुनिश्चित है।

गोम्मटसार पूजा—

यह सस्कृत भाषामे पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है। जिसमे गोम्मटसारके गुणोकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एव श्रद्धा व्यक्त की गई है।

---

1 देखो 'भारतके प्राचीन राजवश' भाग ३ पृ० २३६, २४०।

मृत्युकी दुखद घटना—

पडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई ? यह विषय अर्सेसे एक पहेली सा बना हुआ है। जैन समाजमे इस सम्बन्धमे कई प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, परन्तु उनमे हाथीके पैर तले दबवाकर मरवानेकी घटना का बहुत प्रचार है। यह घटना कोरी कल्पना ही नही है, किन्तु उसमे उनकी मृत्युका रहस्य निहित है। पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकार अकल्पित घटना प० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वानके साथ नही घट सकती। परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफी विचार करनेके बाद मेरी धारणा अब दृढ हो गई है कि उपरोक्त किंवदन्ती असत्य नही है किन्तु वह किसी तथ्यको लिए हुए अवश्य है। जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पडितजीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओर ध्यान देते हैं, जो कभी स्वप्नमें भी पीडा देनेका भाव नही रखते थे, तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्व के साथ घोर ईर्षा रखने वाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एव अशक्य अपराधके द्वारा अन्ध श्रद्धावश विना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड पडा हो और राजाने पडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकारसे मृत्युदण्ड का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नही, क्योंकि जब हम उस समय की भारतीय रियासती परिस्थितियो पर ध्यान देते हैं तो उस समयके भारतीय नरेशो द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोका अवलोकन होता है तब उससे हमे आश्चर्यको कोई स्थान नही रहता। यही कारण है कि उस समय के विद्वानोने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमे स्पष्ट कुछ भी नही लिखा और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है। क्योंकि उस समय सर्वत्र रियासतो

में खासतौरसे मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनाएँ घटती रहती थी और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता था। हाँ आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और अब प्राय इस प्रकारकी घटनाएँ कही सुनने में नही आती।

पडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दुखद घटनाका उल्लेख प० बखतराम शाहके 'बुद्धि विलास' मे पाया जाता है और ‍ इस प्रकार है :—

"तब ब्राह्मणनु मतौ यह कियो, शिव उठानको टौना दियो।
तामै सबै श्रावगी कैद, करिके दड किये नृप फैद ॥
‍ह तेरह-पथिनुको भ्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
‍ भूप मारयो पल माहि, गाडयो मद्धि गदगी ताहि ॥
—आरा भवन प्रति

इसमे पसे यह बतलाया गया है कि स० १८१८ के बाद जब जयपुरमें उ र्मका पुन विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब कार्य सम्प्रदा द्वेषी ब्राह्मणोको सह्य नही हुआ और उन्होंने मिल कर एक गुप्त ‍ड्यत्र' रचा—जिसमें ऐसी कोई असह्य घटना घटा कर जैनियोपर उसका आरोप किया जा सके और इच्छित कार्यकी पूर्ति हो सके। तब सबने एक स्वरसे शिवपिडीको उखडवानेकी बात स्वीकार की और उसका अपराध जैनियो पर बिना किसी जाँचके लगाये जानेका निश्चय किया गया। अनन्तर तदनुसार घटना घटवा और राजाको जैनियोकी ओर से विद्वेषकी तरह तरहकी बाते सुनाकर राजाको भडकाया और क्रोध उपजाया गया। इधर जैनियोने किसी धर्मके सम्बन्धमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नही दिया और न उसमे भाग ही लिया; हाँ अपने पर घटाई जानेवाली असह्य घटनाओ को विषके घूटसमान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनाचे राजाने घटना सुनते ही बिना किसी जांच पडतालके क्रोधवश

सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पंडित टोडरमलजीको पकडकर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया। हुक्म होते ही उन्हें हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शव को शहर की गन्दगीमें गडवाया गया।

सुना जाता है कि जब पंडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथी को अकुश ताडनाके साथ उनके शरीरपर चढने के लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिघाडके साथ उन्हें देखकर सहम गया और अंकुशके दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमे अक्षम रहा और तीसरा अकुश पडना ही चाहता था कि पडित जीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नही; जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जाँच नही की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तूं क्यो व्यर्थ अंकुशका वार सह रहा है, सकोच छोड और अपना कार्य कर। इन वाक्योंको सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

ऐसे असह्य घटनाके आरोपका सकेत केशरीसिह पाटणी सागाकोंके एक पुराने गुटकेमे भी पाया जाता है—

"मिति कार्तिक सुदी ५ ने (को) महादेवकी पिंडि सहैरमाही कछु अमारगी उपाडि नाखि तीह परि राजा दोष करि सुरावग धरम्या परि दड नाख्यौ।"—वीर वाणी वर्ष १ पृष्ठ २८५।

इन सब उल्लेखोसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोंकी विद्वेषपूर्ण परिस्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असम्भव नही कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोंके हृदयमे जो पीडा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मैं पाठकोको दुःखी नही करना चाहता पर यह निसकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नही भुला सकता। अस्तु—

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षडयंत्रके रहस्यका ठीक पता चला तब वे बहुत दु खी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिडिया चुग गई खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादमे जैनियोंके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार हो गया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी ? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है परन्तु उसकी अधिकाश सम्भावना स० १८२४ मे जान पडती है। चू कि प० देवीदासजी जयपुरसे बसवा गए और उससे वापिस लौटने पर पुन· प० टोडरमलजी नही मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पडित गुमानीरामजीके पास ही तत्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया। यह उल्लेख स० १८२४ के बादका है और उसके अनन्तर देवीदास जी जयपुरमे स० १८३८ तक रहे हैं।

परमानन्द जैन शास्त्री

विषय-सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

तीसरा अधिकार

चौथा अधिकार

क्रम	विषय		पृष्ठ

छठा अधिकार

सातवाँ अधिकार

आठवाँ अधिकार

नवमा अधिकार

मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	मंगलाचरण के ऊपर	—	अथ मोक्ष मार्ग प्रकाशक नामा शास्त्र लिख्यते :—
४	१७	रह्या ही	ही रह्या
६	१२	विशेषता करि	विशेषता होने करि
६	१३	भाव	—
८	८	तथा	तथापि
८	१६	अनुसरि	अनुसारि
९	१९	लिये	लिये ही
९	१९	भाव	—
१०	८	सिद्धी	सिद्धी ऐसैं
१०	२२	किखू	किछु
११	२	किछ	किछु
११	१८	समाप्ति	समाप्तता
१२	७	कहै	कहै है
१२	१७	होने	—
१२	१७	तैसैं ही	तैसैं
१२	२२	ही	ही का
१४	१	सो	सो मैं
१४	१९	गए	भए
१८	६	पाइए है,	पाइए है, और किछु प्रयोजन ही नाही। बहुरि श्रद्धानी गृहस्थ भी कोई ग्रंथ बनावै है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	८	जीवादिक	जीव अजीवादिक
२०	१४	हवयण	पवयण
२३	४	परन्तु	पर
२५	४	तातै	तातै तू
२५	८	महा	महान
२७	८	कार्य	विशेष कार्य
२७	८	वृत्ति	प्रवृत्ति
२७	६	सहज	पद्धति बुद्धि करि वा महज
२६	५	पूर्व ग्रन्थ	ग्रन्थ पूर्व
३६	१५	णया	पाया
३६	१८	सहकारण	सहकार
३७	५	तब	तो
३७	१५	बुद्धितै	बुद्धितै जोरावरी करी जुदे किए नाही, दिवस विषै काहूने करुणा बुद्धितै
४०	१	शुभोपयोग	शुभयोग
४०	२०	घना	घना वा
४१	६	बहुरि	बहुरि जो
४१	६	है ता विषै	है अर ता विषै
४६	५	सुखी	जीव सुखी
४६	७	रूा	रूप
४७	१६	श्रुत ज्ञान	श्रुत ज्ञान अर कदाचित् अवधिज्ञान पाइये है

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
५०	१४	भया	—
५२	३	भी	—
५३	७	ही	—
५४	२	ऐसैं	ऐसैं होते
५४	१२	आये	आडे आये
५५	६	ही	हो
५५	१७	अपने	ही अपने
५६	५	होना	—
५६	२१	कार्य	नीचा कार्य
५७	४	अवस्था अनेक प्रकार	अनेक अवस्था
५७	१४	कषाय	कषाय का
६०	११	ही	—
६१	२०	ही	हो
६२	८	पर्याय पर्याय मात्र	पाया पर्याय मात्र ही
६४	२	आदि	—
६४	२	होय	क्रिया होय
६४	८	निमित्ततैं	उदय करि
		तिनकरि	—
६५	१०	ससार	—
६६	१८	मिथ्यात्व का प्रभाव (हैडिंग)	—
६७	७	मानि, तातें	मानिता तें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	६	मोह जनित विषयाभिलाषा (हैडिंग)	—
६७	११	विषै इन	विषयनि
६८	२२	कहा करै	करै कहा
६९	८	दु.ख निवृत्ति का उपाय	ज्ञान दर्शनावरण के उदय से भया दुःख और उस की निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७०	१	बहुत बहुत	बहुत
७१	१०	ताका सग्रह	वाका ग्रहण
७२	७	जो	याका अर्थ —जो
७२	१०	दु ख निवृत्ति का साचा उपाय (हैडिंग)	—
७३	३	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापणा
७३	७	एक	—वस्त्र को एक
७३	१२	वह	यह
७३	१३	मो	वह
७३	१५	जानै	मानै
७३	२२	अवस्था रू	अवस्था रूप
७४	८	प्रकार	प्रकार करि
७५	२	भया	भया था
७५	६	कषाय	कषाय होय
७६	१	मोह से	मोह के उदय से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१	निवृत्ति	निवृत्ति के उपाय का झूठापना
७८	१६	ही है	है ही
७६	१३	पीडा	पीडा सो
७६	१६	अर	अर इनि
८०	४	बनै	बनै ही
८०	२१	इनके	इसके
८१	४	आपका	अपना
८१	७	भया	हुआ
८२	१	ही	—
८२	६	निम	तो तिस
८३	४	झूठा उपाय	उपाय झूठा
८३	६	उपाय बिना	बिना उपाय
८३	१०	खेद	द्वेष
८३	२२	उल्लास	उस्वास
८५	१८	भी	ही
८६	१५	वह दुखी हो है	वह तो दुखी है
८७	२	परिणामनि	परिणमन
८७	१६	तातै	ताकरि
८६	८	करै	करै है
८६	१२	नीच ऊँच	ऊँचा नीचा
८६	२२	कहा है	यहु ही
६२	५	ज्ञान	ज्ञान तो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	७	वाह्या	बहुत वाह्या
९२	२१	आयु कर्म	आयु
९३	२१	दुख	दुखी
९६	९	होय	होय ही
१००	५	तेतीस सागर है। अर ३१ सागर से	इकत्तीस सागर है। यातैं
१०१	११	प्रकार	प्रकार ही
१०१	१२	हो	ह्वो
१०१	१३	करने	होने
१०२	१	माधनन	साधन न
१०३	९	जीव ससारी	ससारी जीव
१०३	२१	मोह	सो मोह
१०३	२२	होते	होतें
१०४	७	जान्या	जाने
१०४	२१	काहे को	काहे का
११२	१३	आपा परका	तातैं आपा परका
११२	२२	होइ	कैसैं न होइ
११३	१	मो	सो ए
११३	८	अभाव	अभाव करना
११८	१२	विशेषनि	विशेषननि
१२१	५	हो	—
१२२	१८	परोक्ष	प्रत्यक्ष परोक्ष
१२४	११	मति ज्ञान	मति
१२४	१३	तो	तो ए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२४	१७	अयथार्थ	अयथार्थ यथार्थ
१२४	२०	यथार्थ	अयथार्थ
१२४	२१	जेवरी	जेवरी को
१२५	२	विषै	विष तो
१२६	१०	पीछे	पीछे कहना
१२६	१८	श्रद्धान कै	श्रद्धान है वा
१२६	१६	कारण	कारण कार्य
१२७	१४	चारित्र मोह	जो चारित्र मोह
१२८	१३	होइ ही नाही	होता नाही। बहुरि जो गमना किया सद्भाव अभाव होई ही नाही तो
१३०	१२	पदार्थ	पदार्थनि ही
१३०	१६	ही	—
१३०	२१	कर्म के	कर्म का
१३१	३	परिणामनि	परिणामन
१३१	७	की प्रवृत्ति	का विधान तथा विस्तार
१३१	१६	वा	वा घातक
१३१	१६	विष	विषै
१३२	३	आवते	तै
१३२	१७	राग	राग द्वेष
१३४	१६	पाहुये	पाइये
१३५	६	नाहीं	नाही अर
१३६	१	मानै	मानै है
१३६	७	वाकै	वकै
१३६	८	किछू	किछू ही
१३६	६	पोत्रा	पोता
१३६	२१	विभाव	विभाव भाव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	६	अनादि	अनादि ही
१३८	३	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व का निराकरण
१३८	५	के	—
१३८	८	इन	इन ही
१३८	१८	ब्रह्म	ब्रह्म का निराकरण
१४१	१	भया,	भया, बहुरि
१४१	४	जरचा	जुरचा
१४१	५	जुरघा	जुरघा रह्या
१४१	६	जब	जन
१४१	१०	पाषाणादि	पाषाण
१४२	१८	एक	एक ब्रह्म
१४२	१६	भिन्न	भिन्न ही
१४३	१०	ब्रह्म की इच्छा से जगत की सृष्टि	सृष्टि कर्तृत्ववाद का निराकरण
१४४	८	माया	माया का निराकरण
१४४	१३	दड दड	दडी-दड

॥ श्री सर्वज्ञिनवाणी नमस्तस्यै ॥

शास्त्र–स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय,

नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आईरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्वसाहूणं।

ओंकार बिन्दुसंयुक्त, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षद चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलका।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरवेनमः।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धक भव्यजीवमन.प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नामधेय, तस्य मूलग्रंथ कर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथ-कर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसार-मासाद्य श्री पंडित टोडरमलजी विरचित।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥

श्रीमान् पं० प्रवर टोडरमलजी

प० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थका अन्तिम पत्र

ॐनमः सिद्धेभ्य ।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

पहला अधिकार

मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।

नमौ ताहि जातै भये, अरहंतादि महान् ॥१॥

करि मंगल करिहौ महा, ग्रंथकरन को काज ।

जातै मिलै समाज सब, पावै निजपदराज ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है । तहाँ मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरीयाणं ।

णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है । बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है ।

नमोऽर्हत्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः । नमःउपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि,

नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषै सर्वसाधुनिके अर्थि, ऐसैं या विषै नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है। अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातैं स्वरूप जाने बिना यहु जान्या नाही जाय जो मैं कौनकों नमस्कार करूं। तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसे होय। ❀)

अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूपविचारिये हैं—जे गृहस्थपनो त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये। तहाँ अनंतज्ञानकरि तौ अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपने करि प्रत्यक्ष जानैं हैं। अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपने अवलोकैं हैं। अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यको धारैं हैं। अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवैं हैं। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए हैं। बहुरि क्षुधा-तृषाआदि समस्तदोषनितैं मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिन्ह तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोक विषै धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि जिनके लौकिक

❀ यह पंक्ति खण्डा प्रति मे नही है, अशोधित लिखित प्रतियो मे है इसीसे उसे मूल मे दिया गया है।

जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नाना प्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है । बहुरि जिनको अपना हितके अर्थि गणधर इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवें हैं । ऐसें सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव है, तिनको हमारा नमस्कार होहु ।

सिद्धों का स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये है-जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतें च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनन्तचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतें परम औदारिक शरीरको भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतें लोकका अग्रभागविषै जाय विराजमान भये । तहां जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनेतें मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई,बहुरि जिनकै चरमशरीरतें किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातें समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावको प्राप्त भये है, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातें समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये हैं । बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातें निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है । बहुरि जिनके ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरि तिन सिद्धनिके समान आप होनेका साधन हो है । तातें साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेको प्रतिबिंब समान हैं। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातें ऐसें ही अनंत कालपर्यंत रहैं है, ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनको

हमारा नमस्कार होहु ।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये है—

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहको त्यागि शुद्धोपयोगकरि मुनिधर्म अगीकार करि अतरगविषै तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपको आप अनुभवै हैं, परद्रव्यविषै अहबुद्धि नाही धारै है। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीको अपने मानै है। परभावनिविषै ममत्व न करै है। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषै प्रतिभासै हैं तिनको जानै तो है परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष नाही करै हैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो हैं, बाह्य नाना निमित्त बन है परन्तु तहा किछू भी सुखदु ख मानते नाही। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है तैसे बनै है, खैचकरि तिनको करते नाही। बहुरि अपने उपयोगको बहुत नाही भ्रमावै हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्ति को धारै हैं। बहुरि कदाचित् मदरागके उदयतै शुभोपयोग भी हो है तिसकरि जे शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं तिनविषै अनुराग करै हैं परन्तु तिस रागभावको हेय जानकरि दूरि किया चाहै है। बहुरि तीव्र कषाय के उदयका अभावतै हिसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व रह्या ही नाही। बहुरि ऐसी अतरग अवस्था होतै बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये है। शरीरका सवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये है। वनखडादिविषै बसै हैं। अठाईस मूलगुणनिको अखडित पालै है। बाईस परीसहनिको सहैं है। बारह प्रकार तपनिको आदरै हैं। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो है। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषै प्रवर्तै है। कदाचित् मुनिधर्म

का सहकारी शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रिया-निविषै सावधान हो हैं। ऐसे जैन मुनि हैं तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

आचार्यका स्वरूप

निनिविषै जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदको पाय सघविषै नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषै ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिको देखि रागअशके उदयतै करुणाबुद्धि होय तो तिनिको धर्मोपदेश देते है। जे दीक्षाग्राहक है तिनको दोक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करै है तिनको प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करै हैं। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होहु।

उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय सघविषै पठन-पाठनके अधिकारी भये है, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपको ध्यावै है। अर जो कदाचित् कषाय अश उदयतैं तहाँ उपयोग नाही थभै है तौ तिन शास्त्रनिको आप पढै हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिको पढावै हैं। ऐसै समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

साधुका स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवोधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक है बहुरि जे आत्मस्वभावको साधै हैं। जैसै अपना उपयोग परद्रव्यनिविषै इष्ट अनिष्टपनो मानि फँसै नाही वा भागै नाही तैसै

उपयोगको सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषे प्रवर्तें हैं या कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषे प्रवर्तें हैं। ऐसैं आत्मस्वभावके साधकसाधु हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

पूज्यत्वका कारण

ऐसैं इन अरहंतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय है तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं, जातैं जीवतत्त्वकरि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनता-करि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनिकै तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकै एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातैं ते अरहंतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहंतादि पद हैं तिन विषै ऐसा जानना जो मुख्यपनै तौ तीर्थंकरका अर गौणपने सर्वकेवलीका ग्रहण है, यहु पदका प्राकृत भाषाविषै अरहंत अर संस्कृतविषै अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदवां गुणस्थानके अनंतर समयतैं लगाय सिद्धनाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते संघविषै रहो वा एकाकी आत्मध्यान करो वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषै भी प्रधानताको पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तो अन्यमुनि भी करै हैं परन्तु जिनकै आचार्यनिकरि

दिया उपाध्याय पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतें भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहाँ ऐसा नियम नाहीं है जो पंचाचारनि करि आचार्य पद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जाते ए तो क्रिया सर्वमुनिनकै साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसे करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसे शब्द नय-करि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परन्तु समभिरूढ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसे हो यहाँ समझना।

इहा सिद्धनिके पहिले अरहंतनिको नमस्कार किया सो कौन कारण ? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान -

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातैं पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहंतादिकनिका स्वरूप चितवन किया। जातै स्वरूप चितवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिको पंचपरमेष्ठी कहियेहै। जातै जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पंच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्टी जानना। बहुरि रिषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषै वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषै इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै है तिनको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, वृषभानन, अनंत वीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक बीसतीर्थंकर पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषै अबार केवलज्ञानसहित विराजमान है तिनको हमारा नमस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पद-विषै इनका गर्भितपना है तथा विद्यमान कालविषै इनको विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

बहुरि त्रिलोकविषै जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै है, मध्यलोक-विषै विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिंब विराजै है, जिनके दर्शनादिकतै स्व-परभेद विज्ञान होय है, कषाय मंद होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मो-पदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवलीके दर्शना-दिकतै होय तैसे ही हो है, तिन जिनबिंबनिको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधर-करि रचित अंगप्रकीर्णक तिनके अनुसरि अन्य आचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक है, ऐसे ये सर्व जिनवचन हैं, स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य है, न्यायमार्गतै अविरुद्ध है तातै प्रमाणीक है, जीवनिकौ तत्त्व-ज्ञान के कारण है तातै उपकारी हैं, तिनको हमारा नमस्कार होहु।

बहुरि चैत्यालय, आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य है तिनकौं नमस्कार करूं

हूँ अर जे किंचित् विनय करने योग्य है तिनका यथा योग्य विनय करूं हूँ। ऐसे अपने इष्टनिका सन्मानकरि मगल किया है। अब ए अरहतादिक इष्ट कैसे है सो विचार करिए है—

जाकरि सुख उपजै वा दुखविनशै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि हाय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषै वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है, जातै याकरि निराकुल साचे सुख की प्राप्ति हो है अर सर्व आकुलतारूप दुखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहतादिकनिकरि हो है। कैसे सो विचारिए है—

अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकारके है—सक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध. तहाँ तीव्र कषायरूप सक्लेश है, मदकषायरूप विशुद्ध हैं, कषाय रहित शुद्ध है। तहा वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो है ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका सक्लेश परिणाम करि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मदवध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वै जो तीव्रबध भया था ताको भी मद करै है अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है, केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहतादिविषै स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिये हो है तातै विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषायभाव मिटावनेका साधन है, तातै शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतै सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय

तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है। ऐसें अरहतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है। अथवा अरहतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना व तिनके अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिको हीन करै है। जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानको उपजावै है तातै ऐसे भी अरहतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धी हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै, दु ख विनशै ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनि करि हो है कि नाही। ताका समाधान—

जो अरहतादि विषै स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वै असाताआदि पापप्रकृति बधी थी तिनको भी मद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है। बहुरि तिस पुण्यका उदय होतै स्वयमेव इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्री मिलै है अर पापका उदय दूर होतै स्वयमेव दु ख को कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसें इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक हैं ते तिस भक्त पुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखको कारणभूत सामग्रीनिका सयोग करावै हैं, दु.खको कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै हैं। ऐसै भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिन अरहतादिकनि करि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतें किछू अपना भी हित होता नाही तातै यहु आत्मा

कषायभावनितै बाह्य सामग्रीविषै इष्ट-अनिष्टपनो मानि आप ही सुखदुःखकी कल्पना करै है। बिना कषाय बाह्य सामग्री किछू सुख-दुःखकी दाता नाही। बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातै इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दुःखतै डरना सो यहु भ्रम है। बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहतादिककी भक्ति किए भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबन्ध ही हो है तातै आपकों इस प्रयोजनका अर्थि होना योग्य नाही। जातै अरहतादिककी भक्ति करतै ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

ऐसै अरहतादिक परम इष्ट मानने योग्य है। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषै भक्तिभाव भये परममगल हो है। जातै 'मग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'म' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धी हो है। तातै तिनके परममगलपना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहा कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषै ही मगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर--

जो सुखस्यौं ग्रन्थकी समाप्ति होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतै यहा प्रथम मगल किया है।

इहा तर्क--जो अन्यमती ऐसै मगल नाही करै है तिनकै भी ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होता देखिये है तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान--

जो अन्यमती ग्रन्थ करै हैं तिसविषै मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व

कषाय भावनिको पोषते विपरीत अर्थनिको धरै है तातै ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसैं मगल किये बिना ही होइ । जो ऐसे मगलनिकरि मोह मद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै ? बहुरि हम यहु ग्रन्थ करै है तिस विषै मोहकी मदता करि वीतराग तत्वज्ञानको पोषते अर्थनिको धरेगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसै मंगल किये ही होय । जो ऐसै मगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहे, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनै ? बहुरि वह कहै जो ऐसैं तौ मानेगे परन्तु कोऊ ऐसा मगल न करै ताकै भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिये है अर कोऊ ऐसा मगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है, पापका उदय देखिये है तातै पूर्वोक्त मगलपना कैसे बनै ? ताकौ कहिये है--

जो जीवनिकै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके है तिनकरि अनेक कालनिविषै पूर्वै बधे कर्म एक कालविषै उदय आवे है। तातै जाकै पूर्वै बहुत धनका सचय होय ताकै बिना कुमाए भी धन देखिए है अर देणा न देखिये है। अर जाकै पूर्वै ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतै भी देणा देखिये है अर धन न देखिए है। परन्तु विचार किए, तै कुमावना धन होनेहीका कारण है, ऋणका कारण नाही। तैसे ही जाकै पूर्वै बहुत पुण्य बध्या होइ ताकै इहां ऐसा मगल विना किए भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वै बहुत पाप बध्या होय ताकै इहा ऐसा मगल किये भी सुख न देखिए है, पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतै ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है, पाप उदयका कारण नाही। ऐसै पूर्वोक्त मगलका मगल

पना बनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक है तिनिने तिस मगल करनेवालेकी सहायता न करी अर मगल न करनेवालेको दड न दिया सो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै हैं, तातै जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै है अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दडका निमित्त न बनै है। यहु निमित्त कैसै न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक है ते क्षयोपशम ज्ञानतै सर्वको युगपत् जानि सकते नाही, तातै मगल करनेवाले वा न करनेवालेका जानपना किसी देवादिकक काहू कालविषै हो है। तातै जो तिनिका जानपना न होइ तो कैसै सहाय करै वा दड दे। अर जानपना होय तब आपके जो अति मदकषाय होइ तो सहाय करनेके वा दड देनेके परिणाम ही न होइ। अर तीव्रकषाय होइ नो धर्मानुराग होइ सकै नाही। बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तो कहा करै। ऐसै सहाय करने वा दड देनेका निमित्त नाही बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपके धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतै तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकी सहाय करै वा किसी अधर्मीको दंड दे है। ऐसे कार्य होनेका किछू नियम तौ है नाही,

ऐसें समाधान किया। इहां इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होने को, सहाय करानेका, दुख द्यावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषै वा आगामी काल विषै दुखदायक है। तातै ऐसो इच्छा कू छोरि हम तौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंता-दिकको नमस्कारादिरूप मंगल किया है। ऐसें मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्ग प्रकाशकनाम ग्रन्थका उद्योत करें हैं। तहां यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरू-पिए है—

ग्रन्थकी प्रमाणिकता और आगम-परम्परा

अकारादि अक्षर हैं ते अनादिनिधन है,काहूके किए नाही, इनिका आकार लिखना तो अपनो इच्छाके अनुसार अनेक प्रकार है परन्तु बोलनेमे आवें हैं ते अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसेंही प्रवर्तें है सोई कह्या है— **'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'**। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयसिद्ध है। बहुरि तिन अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसें 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जना-वनहारा है। ऐसें अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसें मोती तो स्वयसिद्ध है तिन विषै कोऊ थोरे मोतीनिको, काऊ घने मोतीनिको, काऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै हैं तैसें पद तो स्वयसिद्ध हैं तिन विषै कोऊ थोरे पदनिको, कोऊ घने पदनिको,कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै हैं। यहां मैंभी तिन सत्यार्थ पद-

निकों मेरो बुद्धि अनुसारि गूंथि* ग्रन्थ बनाऊं हूं सो मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषै नाहीं गूंथूं हूं। तातें यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहां प्रश्न—जो तिन पदनिकी परम्परा इस ग्रन्थ पर्यंत कैसें प्रवर्ते है? ताका समाधान—

अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिकै सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिन पदनिका वा तिनके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिन तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकै पदनिके अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूंथे हैं। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिककी रचना करै हैं। तिनिको केई अभ्यासे हैं केई कहैं हैं केई सुनै हैं, ऐसे परम्परातै मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषै वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिसविषै चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषै श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिको दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिको भी जानि धर्मानुरागके वशतैं अंगप्रकीर्णकनिकी रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहां पीछे इस पंचम कालविषै तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बूस्वामी ३, तहां पीछे कालदोषतैं केवलज्ञानी होनेका तो अभाव भया।

* जोडकर या लिखकरि।

बहुरि केतेक काल ताई द्वादशाग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछै तिनका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालताई थोरे अगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्य कालमे हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेगे, तातै ग्रन्थ रचना आरम्भ करी और द्वादशागनुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे।*) पीछै तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषै भी काल दोषतै दुष्टनिकरि कितेक ग्रन्थनिकी व्युच्छिति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतै व्युच्छिति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए है तिनिका बुद्धिकी मदताते अभ्यास होना नाही। जैसै दक्षिणमे गोमट्टस्वामीके निकट मूलबद्री नगरविषै धवल महाधवल जयधवल पाइए है परन्तु दर्शन-मात्र ही है। बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए है। तिन विषै भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसै इस निकृष्ट काल विषै उत्कृष्ट जैनमतका घटना तो भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषै सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

बहुरि हम इस काल विषै यहा अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषै हमारे पूर्व सस्कारतै वा भला होनहारतै जैनशास्त्रनिविषै

---

* यह पक्तिया खरडा प्रति मे नही है, अन्य सब प्रतियो मे है। इसीसे आवश्यक जानि दे दी गई है।

अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुस्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिन विषैं हमारै बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्तै है। तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषै हम सारिखे मंद बुद्धीनितैं भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए हैं। तिनिकौं तिन पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रन्थ करनेकी हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावैं हैं सो इस विषै भी अर्थसहित तिनही पदनिका प्रकाशन हो है। इतना तो विशेष है जैसैं प्राकृत संस्कृत शास्त्रनिविषै प्राकृत संस्कृत पद लिखिए हैं तैसैं इहाँ अपभ्रंश लिए वा यथार्थपनाकौं लिए देशभाषारूप पद लिखिए हैं परन्तु अर्थविषै व्यभिचार किछू नाहीं है। ऐसैं इस ग्रथपर्यन्त तिन सत्यार्थ पदनिकी परम्परा प्रवर्तै है।

इहां कोऊ पूछै कि परम्परा तो हम ऐसैं जानी परन्तु इस परम्पराविषैं सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमको कैसैं होय। ताका समाधान—

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए बिना बनै नाहीं,

तातें जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपकों ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन करना होय सो ऐसा महाविपरीत कार्य तो क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषै तौ ऐसा कषायवान् होता नाही। प्रथम मूल उपदेशदाता तो तीर्थंकर भये सो तो सर्वथा मोहके नाशतै सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहको त्यागि महा मदकषायी भए है, तिनिके तिस मदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाही है, जो वाकै तीव्रकषाय होय तो सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसै होइ अथवा जो मोहके उदयतै अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै है तो पोषो परन्तु जिनआज्ञा भंगकरि अपनी कषाय पोषै तो जैनीपना रहता नाही, ऐसै जिनधर्म्मविषै ऐसा तीव्रकपायी कोऊ होता नाही जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषै बुरा करै।

इहा प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिका जैन शास्त्रनिविषै मिलावै, पीछै ताकी परम्परा चलि जाय तो कहा करिये?

ताका समाधान—जैसै कोऊ सांचे मोतिनिके गहनेविषै झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिलै नाही तातै परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाही, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परम्परा भी चालै नाही, शीघ्र ही कोऊ झूंठे मोतिनिका निषेध

कर है। तैसै कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषै असत्यार्थ पद मिलावै परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावनेका वा लौकिक कार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीने जे असत्यार्थ पद मिलाए है तिन विषै कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है, ऐसै प्रयोजन मिलता नाही, तातै परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाही, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है। बहुरि वाकी परम्परा भी चालै नाही,शीघ्र ही कोऊ तिन असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहाँ इस निकृष्ट कालविषै ही है, उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत हैं,तिस विषै तो ऐसे होते नाही। तातै जैन शास्त्रनि विषै असत्यार्थ पदनिकी परम्परा चालै नाही, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परन्तु ग्रंथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातै कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तो परम्परा चलै;?

ताका समाधान—

मूल ग्रंथकर्त्ता तौ गणधरदेव है ते आप च्यार ज्ञानके धारक है अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै है ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसार ग्रन्थ बनावै है। सो उन ग्रन्थनिविषै तो असत्यार्थ पद कैसै गूथे जाय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै है ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक है। बहुरि ते तिन मूलग्रन्थनिकी परपराकरि ग्रंथ बनावै है। बहुरि जिन पदनिका आपकों ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाही अर जिन पद-

निका ज्ञान होइ तिनकों सम्यग्ज्ञान प्रमाणतै ठीक करि गूंथे हैं सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषै असत्यार्थ पद गूथे जाय नाही अर कदाचित् आपको पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामे भी तैसे ही आजाय तो याका किछू सारा* नाही। परन्तु ऐसे कोईकों भासै सबहीको तौ न भासै। तातै जिनको सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परपरा चलने देते नाही। बहुरि इतना जानना-जिनको अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिको तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाही, इनिका तो जैनशास्त्रनिविषै प्रसिद्ध कथन है अर जिनको भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ, ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ है तिन विषै किसीको कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामे ल्यावै तो भी ताका विशेष दोष नाही सो गोमट्टसारविषै कह्या है—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं हवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनको श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोग तै असत्यको भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाही है अर जिनआज्ञा भग करनेका बहुत भय है परन्तु इस ही विचारके बलतै ग्रथ करनेका साहस करे है सो इस ग्रथ विषै जैसे पूर्व ग्रन्थनिमें वर्णन है तैसे ही वर्णन करेंगे। अथवा कही पूर्व ग्रन्थनिविषै सामान्य गूढ़

* वश नाही।

वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करेंगे । सो ऐसै वर्णन करनेविषै मैं तो बहुत सावधानी राखूंगा अर सावधानी करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान होइ सो संवारकरि शुद्ध करियो यह मेरा प्रार्थना है। ऐसैं शास्त्र करनेका निश्चय किया है । अब इहाँ कैसे शास्त्र बाँचने सुनने योग्य है अर तिन शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्णन करिए है ।

बांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करैं हैं तेई शास्त्र वाचने सुनने योग्य है। जातैं जीव संसारविषै नाना दुःखनिकरि पीड़ित है, सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गको पावै तो उस मार्गविषै आप गमनकरि उन दुःखनितैं मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, तातैं जिन शास्त्रनिविषै काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतराग भावका प्रयोजन प्रकट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वाचना सुनना उचित है। बहुरि जिनशास्त्रनिविषै शृङ्गार भोग कौतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र है। जातैं जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुःखी भया तिनकी वासना जीवके विना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया, भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका वाचना सुनना उचित नाहीं है । इहाँ वाचना सुनना जैसैं कह्या तैसैं ही जोडना सीखना सिखावना लिखना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें । ऐसे साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावको पोषै ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करना योग्य है।

वक्ता का स्वरूप

अब इनके वक्ताका स्वरूप कहिये है। प्रथम तो वक्ता कैसा होना चाहिए, जो जैन श्रद्धानविषै दृढ होय, जातै जो आप अश्रद्धानी होय तो औरको श्रद्धानी कैसै करै ? श्रोता तो आपहीतै हीनबुद्धिके धारक है तिनको कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसै करै ? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै विद्याभ्यास करनेतै शास्त्र वाचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय, जातै ऐसी शक्ति बिना वक्तापनेका अधिकारी कैसे होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय, जातै जो ऐसा न होय तो कही अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै जिनआज्ञा भग करनेका बहुत भय होय, जातै जो ऐसा न होय तो कोई अभिप्राय विचारि सूत्र-विरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है—

बहु गुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो ।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोडने योग्य ही है। जैसे उत्कृष्टमणिसयुक्त है तो भी सर्प है सो लोकविषै विघ्नका ही करणहारा है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वाचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय, जातै जो आशावान् होइ तो यथार्थ उपदेश देइ सकै नाही, वाकै तो किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसार व्याख्यानकर अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितै वक्ता का पद ऊचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए,जाकै तीव्र क्रोध मान न होय,जात तीव्र क्रोधी मानी की निंदा होय, श्रोता तिसतै डरते रहै, तिसतै अपना हित कैसे करै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करैं तो मिष्टवचननिकरि जैसै उनका सन्देह दूरि होय तैसै समाधान करै। जो आपकै उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तो या कहै, याका मोको ज्ञान नाही, किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दूंगा अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसो मिलै तो पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकू बताय देना। जातै ऐसा न होय तो अभिमानके वशतै अपनी पण्डिताई जनावनेकों प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातै श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेतै बुरा होय, जैनधर्मकी निंदा होय। जातै जो ऐसा न होइ तो श्रोताओंका सदेह दूर न होई तब कल्याण कैसै होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिकी प्रवृत्ति न होय, जातै लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय तब ताका वचन कौन प्रमाण करै,जिनधमको लजावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन

होय, प्रभुत्व होय तातै लोकविषै मान्य होय जातै जो ऐसा न होय तो ताकौं वक्तापनाकी महतता शोभै नाही। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषै ये गुण तो अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषैं कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ, जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपने प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दा करि रहितपना होय, परके मनका हरनहारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होय, ऐसा सभा का नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बडे-बडे जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तो विशेषपने ताको वक्तापनो शोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिनधर्मका मर्म जानै नाही, पद्धतिही करि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय सांचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसैं प्रगट किया जाय, तातैं आत्मज्ञानी होई तो साचा वक्तापनो होई, जातैं प्रवचनसार विषैं ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनों आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाही। बहुरि दोहापाहुडविषै ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुस कंडिया।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥ १ ॥

याका अर्थ–हे पांडे ! हे पाडे ! हे पाडे ! तू कण छोडि तुसहो कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषैं सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है, तातैं मूर्ख ही है- ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषै भी पहलै अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं वा अवधि-मन.पर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जानने। ऐसें वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ता-का सयोग मिलै तो बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतै शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतै तो शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लाभकरि श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषनिके मुखतै शास्त्र सुनना उचित नाही। उक्त च—

तं जिण आणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्सकहगाओ ॥१॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीके निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतै धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है, ऐसा जानना। ऐसे वक्ता-

का स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं है--

श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूँ? मेरा कहा स्वरूप है? (अर कहातैं आकर यहा जन्म धारया है और मरकर कहाँ जाऊँगा ?※) यह चरित्र कैसे वनि रह्या है? ए मेरे भाव हो है तिनका कहा फल लागेगा, जीव दुःखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका कहा उपाय है, मुझको इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतैं उद्यमवन भया है । बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतैं होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थको अपने अतरंगविषै बारम्बार विचारै है बहुरि अपने विचारतैं सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तो नवीन श्रोताका स्वरूप जानना। बहुरि जे जैनधर्मके गाढे श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है। बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीके जानि जिस अर्थको सुनै है ताको यथावत् निश्चय जानि अवधारै है। बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै है अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करै है, शास्त्राभ्यास विषै अति आसक्त है, धर्म्मबुद्धिकरि निंद्य कार्यनिके त्यागी भए हैं-ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे है । जाकै किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तो श्रोतापनों विशेष शोभै है। बहुरि

※ यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं है, अन्य सब प्रतियों में है। इसीसे आवश्यक जानि यहाँ दे दी गई हैं।

ऐसा भी श्रोता है अर वाक आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेशका मरम समझि सकै नाहीं तातै आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्म के रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवत बुद्धिकरि वा अवधिमन पर्ययकरि सयुक्त होय तो वह महान श्रोता जानना। ऐसे श्रोतानिके विशेष गुण है। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिएँ। बहुरि शास्त्र सुननेतै हमारा भला होगा, ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै है परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझै नाही, तिनिके पुण्यबन्ध हो है, कार्य सिद्ध होता नाही। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तो हैं परन्तु किछू अव-धारण करते नाही, तिनकै परिणाम अनुसार कदाचित पुण्यबन्ध हो है कदाचित पापबध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनै है वा तर्क करनेहीका जिनका अभिप्राय है, बहुरि जे महतताके अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनै है, बहुरि जो शास्त्र तो सुनै है परन्तु सुहावता नाही, ऐसे श्रोतानिके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसै ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनके पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्र को उचित वक्ता होय वाचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यह मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषै समस्त जीव हैं ते कर्म्मनिमित्त तै निपजे

जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे है। बहुरि तहाँ मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहांतैं मुक्त होनेका मार्ग पावते नाही, तडफि तडफि तहा ही दुःखको सहै हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेको कारण तीर्थंकर केवली भगवान सो ही भए सूर्य, ताका भया उदय, ताकी दिव्यध्वनिरूपो किरणनिकरि तहांतैं मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया। जैसे सूर्यकै ऐसी इच्छा नाही जो मैं मार्ग प्रकाशू परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलै है ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसे ही केवली वीतराग है तातैं ताकै ऐसी इच्छा नाही जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करै परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनका शरीररूप पुदगल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गकौं कैसे पावैं अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुःख सहेंगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसे दीपक करि दीपक जोवनेतैं दीपकनिकी परम्परा प्रवर्तै तैसे आचार्यादिकनिने तिन ग्रन्थनितैं अन्य ग्रन्थ बनाए। बहुरि तिनहूने किनहूने अन्य ग्रंथ बनाए। ऐसे ग्रंथनितैं ग्रंथ होनेतैं ग्रंथनिकी परम्परा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितैं इस ग्रन्थको बनाऊं हूं। बहुरि जैसे सूर्य वा सर्व दीपक है ते मार्गको एकरूपही प्रकाशै है तैसे दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ हैं ते मोक्षमार्गको एकरूप ही प्रकाशैं है। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गको प्रकाशै है। बहुरि जैसे प्रकाशे भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष है तिनकू मार्ग सूझता नाही तो दीपकके तो

मार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाही, तैसे प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित हैं तिनकूं मोक्षमार्ग सूझता नाही तो ग्रन्थकै तो मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाही। ऐसे इस ग्रन्थका मोक्षमार्ग प्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहां प्रश्न— जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रन्थ काहे को बनावो हो ?

ताका समाधान— जैसे बडे दीपकनिका तो उद्योत बहुत तेलादिकका साधनतै रहै है, जिनकै बहुत तेलादिककी शक्ति न होइ तिनको स्तोक दीपक जोड दीजिये तो वे उसका साधन राखि ताके उद्योततै अपना कार्य करै तैसे बडे ग्रन्थनिका तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतै रहै है, जिनके बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाही तिनकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तो वे वाका साधन राखि ताके प्रकाशतै अपना कार्य करै। तातै यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मै यहु ग्रन्थ बनाऊं हूं सो कषायनितै अपना मान वधावनेकों वा लोभ साधनेको वा यश होनेको वा अपनी पद्धति राखेनेकों नाही बनाऊं हूं। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाही तातै तिनकै बडे ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाही। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तो भी यथार्थ अर्थ भासै नाही। ऐसै इस समयविषै मदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितै यह भाषा मय ग्रन्थ बनाऊं हूं। बहुरि जैसे बड़े दरिद्रीकों अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसें कोढीकूं अमृत पान करावै

अर वह न करै तैसै ससारपीडित जीवको सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तो वाके अभाग्यकी महिमा का वर्णन हमतै तो होइ सकै नाही । वाका होनहारहीकों विचारे अपने समता आवै । उक्त च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुडें भी जे जीव धर्म्म वचननिको नाही सुनै है ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस ससार भयतै तीर्थकरादिक डरे तिस ससार भयकरि रहित है, ते बडे सुभट है । बहुरि प्रवचनसारविषैभी मोक्षमार्गका अधिकार किया है तहा प्रथम आगमज्ञान हो उपादेय कह्या, सो इस जीवका तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याको होतै तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए सयमभाव हो है अर तिस आगमतै आत्मज्ञानको भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है । बहुरि धर्म्मके अनेक अग हैं तिनविषै एक ध्यान बिना यातै ऊँचा और धर्म्मका अग नाही है तातै जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है । बहुरि इस ग्रथका तो वाचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातै अवश्य याका अभ्यासविषै प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा ।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं पीठबन्ध-प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

दूसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप

दोहा

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव।
सो जयवंत रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय ॥१॥

अब इस शास्त्रविषै मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है । सो इस आत्माकै कर्म्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दु खी होय रह्या है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु साचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाही अर दुःख सह्या भी जाता नाही तातै यहु जीव व्याकुल होय रह्या है। ऐसे जीवको समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका साचा उपाय करना सोही कर्तव्य है तातै इसहीका याको उपदेश दीजिए है। तहाँ जैसे वैद्य है सो रागसहित मनुष्यको प्रथम तो रोगका निदान बतावै, ऐसै यहु रोग भया है बहुरि उस रोगके निमित्ततै याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि वाकै निश्चयहोय जो मेरे ऐसै ही रोग है । बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताको प्रतीति अनावै, इतना तो वैद्यका बतावना है। बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तो रोग तै मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसै ही इहां कर्मबन्धनयुक्त जीवको प्रथम तो कर्मबन्धनका निदान बताइए है, ऐसै यहु कर्मबन्धन भया है बहुरि उस कर्मबन्धनके निमित्ततै याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि जीवकै

निश्चय होय जो मेरे ऐसे ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याको प्रतीति अनाइये है,इतना तो शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै,तो कर्मबन्धनतै मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है। सो इहा प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताइये है।

कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतै नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमणपनो पाइए है,एक रूप रहनो न हो है तातै कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम संसार अवस्था है। सो इस ससार अवस्थाविषै अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतै कर्मबन्धन सहित हैं। ऐसा नाहीं है जो पहलै जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछै इनिका सयोग भया। तो कैसे है–जैसै मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषै अनंते पुद्गलपरमाणु अनादितै एक बन्धनरूप हैं, पीछै तिनमें केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलै हैं। ऐसै मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसै इस ससार विषै एक जीव द्रव्य अर अनते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनिका अनादितै एक बन्धनरूप है, पीछै तिनमे केई कर्म परमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिलै हैं। ऐसै मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहा प्रश्न–जो पुद्गलपरमाणु तो रागादिकके निमित्ततै कर्मरूप हो है, अनादि कर्मरूप कैसे हैं ?

ताका समाधान––निमित्त तो नवीन कार्य होय तिस विषै ही सम्भवैहै। अनादि अवस्थाविषैं निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसैं नवीन पुद्गल-परमाणुनिका बधान तो स्निग्ध रूक्ष गुणके अशन ही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषैं अनादि पुद्गलपरमाणु-निका बन्धान है तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है ? तैसे नवीन पर-माणुनिका कर्म्मरूप होना तो रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्गलपरमाणुनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है। तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जो अनादिविषैंभी निमित्त मानिए तो अनादिपना रहै नाही। तातै कर्मका बन्ध अनादि मानना। सो तत्वप्रदीपिका प्रव-चनसार शास्त्रकी व्याख्या विषैं जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहा कह्या है। रागादिकका कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म्मका कारण रागादिक है। तब वहाँ तर्क करी जो ऐसैं इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाके आश्रय, वह वाके आश्रय, कही थभाव नाही है, तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनो-पादानात्।

याका अर्थ—ऐसैं इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातै अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्मका सबध है ताका तहा कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसैं आगममें कह्या है। बहुरि युक्तितै भी ऐसैं ही सभवै है, जो कर्म्मनिमित्त विना पहले जीवकै रागादिक कहिए तो रागादिक जीवका निज स्वभाव हो जाय, जातै परनिमित्त विना होइ ताहीका नाम स्वभाव है। तातै कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितै तिनका सम्बन्ध, ऐसैं कैसैं सम्भवै ?

---

* नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसबद्धस्यात्मन. प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। प्रवचनसार टीका, २।२९

ताका समाधान—जैसे ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तेल तिलका सम्बन्ध देखिए है, नवीन इनका मिलाप भया नाहीं तैसें अनादिहीसों जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसे सभवै ? अनादितै जैसे केई जुदे द्रव्य हैं तैसें केई मिले द्रव्य हैं, इस सभवनेविषै किछू विरोध तो भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो सबंध वा सयोग कहना तो तब सभवै जब पहले जुदे होइ पीछें मिलैं। इहां अनादि मिले जीव कर्म्मनिका सम्बध कैसें कह्या है।

ताका समाधान—अनादितै तो मिले थे परन्तु पीछें जुदे भए तब जान्या जुदे थे तो जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसें अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासैं हैं। तिसकरि तिनका बन्धान होतें भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनका सम्बन्ध वा सयोग कह्या है,जातैं नए मिलो वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसे ही कहना सभवै है। ऐसें इन जीवनिका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है।

तहाँ जीवद्रव्य तो देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिकों लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनत पुद्गल परमाणुनिका पिंड है तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसें ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनका अनादि सम्बन्ध है तो भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परमाणु

जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणको धरे जुदे जुदेही रहै हैं। जैसे सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिको धरे सोना जुदा रहै है, स्वेतादि गुणनिको धरे रूपा जुदा रहै है,तैसें जुदे जाननें।

इहां प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तो बन्धान होना बन, अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका बन्धान कैसे बनें ?

ताका समाधान—जैसे अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाही ऐसे सूक्ष्म पुद्गल अर व्यक्त इन्द्रियगम्य है ऐसे स्थूल पुद्गल तिनका बन्धान होना मानिए है तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाही ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्त्तीककर्म्म इनका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषै कोऊ किसीकौं करै तो है नाही। यावत् बन्धान रहै तावत् साथ रहै, बिछुरै नाही अर कारणकार्यपना तिनकै बन्या रहै, इतना ही यहाँ बधान जानना। सो मूर्तीक अमूर्तीककै ऐसे बधान होनै विषै किछू विरोध है नाही। या प्रकार जैसे एक जीवकै अनादि कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसे ही जुदा जुदा अनत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है। तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततै तो जीवके स्वभावका घात हो है। तहाँ ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तो जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनकी व्यक्तता नाहीं हो है, तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरिजीवके स्वभाव नाहीं ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिन की व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेकी समर्थतारूप वीर्य ताको व्यक्तता न हो है, ताका क्षयोपशमके अनुसार

किंचित् शक्ति हो है। ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्तते जीवके स्वभावका घात अनादिहीतैं भया है। ऐसै नाहीं जो पहलैं तो स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछै कर्म्मनिमित्ततैं स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहां तर्क—जो घात नाम तो अभावका है सो जाका पहलें सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनैं। इहां स्वभावका तो सद्भाव है ही नाहीं, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषै अनादिहीतैं ऐसी शक्ति पाइए है, जो कर्म्मका निमित्त न होइ तो केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्त परन्तु अनादिहीतें कर्मका सम्बन्ध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यार अघातिया कर्म्म हैं तिनके निमित्ततें इस आत्माकैं बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनैहै तहाँ वेदनीयकरि तो शरीरविषैं वा शरीरतैं बाह्य नानाप्रकार सुख दुःखको कारण परद्रव्यनिका सयोग जुरै है अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यन्त पाया शरीरका सम्बन्ध नाहीं छूट सकै है अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै है अर गोत्रकरि ऊँचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है,ऐसै अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहकेउदयका सहकारण होतें जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतै जीवके अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थको नाहीं करैहै। जैसै कोऊ शरीरको पकरै तो आत्मा भी पकरचा जाय। बहुरि यावत् कर्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसै ही बनी रहै अन्यथा न होय सकै, ऐसा इन अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहा कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तो जड है, किछू बलवान नाहीं, तिनकरि जीवके स्वभावका घात होना वा बाह्य सामग्रीका मिलना कैसे सम्भवै ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावको घातै, बाह्य सामग्रीको मिलावै तब कर्म्मकै चेतनपनों भी चाहिए अर बलवानपनो भी चाहिए सो तो है नाही, सहजही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस काल-विषै आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै, विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य है ते तैसै ही सम्बन्धरूप होय परिणमैं। जैसे काहू पुरुषके सिर परि मोहनधूलि परा है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहाँ उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बावलापना भी न था अर बावला-पना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तो निमित्त है अर पुरुष आपही बावला हुआ परिणमै है,ऐसाही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसै सूर्यका उदयका कालविषै चकवा चकवी-निका सयोग होय तहा रात्रिविषै किसीने द्वेषबुद्धितै ल्यायकरि मिलाए नाही,सूर्य उदयका निमित्तपाय आपही मिलै हैं अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही बिछुरै है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। तैसै ही कर्मका भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसै कर्मका उदय करि अवस्था होय है बहुरि तहा नवीन बन्ध कैसे हो है सो कहिए है—

नूतन बंध विचार

जैसैं सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतै जितना व्यक्त नाहीं तितनेका तो तिस कालविषै अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मन्दपनातैं जेता

प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अंश है, मेघपटल जनित नाही है। तैसे जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततै जितने व्यक्त नाही तितनेका तो तिस कालविषै अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगटै है सो तिस जीवके स्वभावका अंश ही है,कर्म्म-जनित उपाधिक भाव नाही है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितैं लगाय कबहूँ अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिको धरे वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका बंध नाही है जातै निज स्वभाव ही बंधका कारण होय तो बन्धका छूटना कैसे होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतै जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरि भी बंध नाही है जातै आपही का अभाव होतै अन्यकों कारण कैसे होय। तातै ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततै निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारण नाही।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तो मिथ्यात्व-भाव हो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय हो है। ते यद्यपि जीवके अस्तित्वमय है,जीवतै जुदे नाही, जीव ही इनका कर्ता है, जीवके परिणमनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनका होना मोहकर्म्मके निमि-त्ततैं ही है, कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनका अभाव हो है तातैं ए जीवकै निजस्वभाव नाही, उपाधिकभाव है। बहुरि इन भावनिकरि नवीन बन्ध हो है तातै मोहके उदयतै निपजेभाव बंधके कारण हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतै बाह्य सामग्री मिलै है,तिन विषै शरीरादिक

तो जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाही होय एक बन्धानरूप हो हैं अर घन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारण नाही हैं, जातै परद्रव्य बंधका कारण न होय। इनविषै आत्माके ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव हो हैं सोई बधका कारण जानना।

योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नामकर्म्मके उदयतै शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततै आत्माके प्रदेशनिका चचलपना हो है। ताकरि आत्माके पुद्गलवर्गणानिसों एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततै समय समय प्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनत परमाणुनिका ग्रहण हो है। तहाँ अल्पयोग होय तो थोरे परमाणुनिका ग्रहण होय, बहुत योग होयतो घने परमाणुनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनि विषै ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसैं सिद्धांतविषै कह्या है तैसै बटवारा हो है। तिस बटवारा माफिक परमाणु तिन प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है-शुभयोग,अशुभयोग। तहा धर्मके अगनिविषै मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तो शुभयोग हो है अर अधर्मके अगनिविषै तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तो सर्वप्रकृतिनिका निरन्तर बध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाही। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषैं, रति अरति युगलविषै,तीनों वेदनिविषै एकै काल एक एक हो प्रकृतिनिका

बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषै शुभोपयोग होतें साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतें असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतें केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त तैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणूनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया अर तिन विषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग

बहुरि मोहके उदयतैं मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो है, तिन सबनिका नाम सामान्यपने कषाय है। ताकरि तिनकर्मप्रकृतिनिकी स्थिति बन्धं है सो जितनी स्थिति बधै तिसविषै अबाधाकाल छोडि तहाँ पीछै यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिम प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होत थोरा स्थिति बन्ध होय, बहुत कषाय होते घना स्थितिबन्ध होय। इन तीन आयूनि का अल्पकषायतैं बहुत अर बहुत कषायतैं अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहोकरि तिन कर्मप्रकृतिनिविषै अनुभागशक्ति का विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बधै तैसा ही उदयकालविषै तिन प्रकृतिनिका घना थोरा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिकी सब प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषै तो अल्पकषाय होते थोरा अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होते घना अनुभाग बधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषै अल्पकषाय होते घना अनुभाग बधै है, बहुत कषाय होते थोरा अनुभाग बधै है। ऐसैं कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिके स्थिति अनुभागका विशेष भया तातै कषायनिकरि स्थितिबंध अनु भागबधका होना जानना। इहाँ जैसे बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तो वह मदिरा हीनपनाको प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तो वह मदिरा अधिकपनाको प्राप्त है। तैसैं घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु है अर तिनविषै थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तो ते कर्मप्रकृति हीनताको प्राप्त हैं। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषै बहुत कालपर्यत बहुत फल देनेकी शक्ति है तो वे कर्मप्रकृति अधिकपनाको प्राप्त है। तातै योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबध बलवान नाही, कषायनिकरि किया स्थितिबध अनुभागबध ही बलवान है। तातै मुख्यपने कषाय ही बध का कारण जानना। जिनको बध न करना होय ते कषाय मति करो।

जड़ पुद्गल परमाणुओं का यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहा कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तो जड है, उनकै किछू ज्ञान नही, कैसे यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै है?

ताका समाधान—जैसे भूख होते मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मास शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजनके परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनविषै केई परमाणुनिका

सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिन परमाणुनिविषै केई तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्तिकों धरै हैं, केई स्तोकशक्तिकों धरै हैं। सो ऐसें होने विषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिंडके ज्ञान तो नाही है जो मैं ऐसें परिणमूं अर और भी कोऊ परिणमावनहारा नाही है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है, ताकरि तैसें ही परिणमन पाइए है। तैसे ही कषाय होतें योग द्वारकरि ग्रह्या हुवा कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंड सो ज्ञानावरणादि प्रकृतिरूप परिणमै है। बहुरि तिन कर्म परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिन विषै केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिन परमाणुनिविषै कोऊ तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसें होनेविषै कोऊ कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तो नाही है जो मैं ऐसें परिणमूं अर और भी कोई परिणमावनहारा है नाही, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिकभाव बनि रह्या है ताकरि तैसैं ही परिणमन पाइये है। सो ऐसें तो लोकविषै निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसे मन्त्रनिमित्तकरि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा काकरी आदिविषै सर्पादि रोकनेकी शक्ति हो है तैसै ही जीव भावके निमित्तकरि पुद्गल परमाणुनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहां विचारकरि अपने उद्यमतै कार्य करै तो ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसै परिणमन होय तो तहां ज्ञानका किछू प्रयोजन नाही, या प्रकार नवीनबंध होने का विधान जानना।

भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाहरूप बधान रहै है। तहा जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणु थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जांय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसै पूर्वै बधे परमाणुनिकी भी जीव-भावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनै तो न पलटै, जैसेके तैसे रहैं। ऐसै सत्तारूप कर्म रहै हैं।

कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसार कार्य बनै। कर्म्म तिनके कार्यनिकों निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समयफल निपज्या तिसका अनन्तर समयविषै तिन कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतैं कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसैं समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरै हैं। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछै ते परमाणु तिस ही स्कंधविषैं रहो वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहां इतना जानना—इस जीवके समय समय प्रति अनन्त परमाणु बधै हैं तहां एक समयविषै बधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड अपनी स्थितिके जेते समय होहि तिन विषै क्रमतै उदय आवै हैं। बहुरि बहुत समयनिविषै बधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य है ते इकट्ठे होय उदय आवै है। तिन सब परमाणुनिका अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय तितना फल तिस काल विषै निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बधे परमाणु बधसमयतै लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप अस्तित्वको धर जीवसो सम्बन्धरूप रहै हैं। ऐसै कर्मनिकी बध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहा समयसमय प्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बधै है, एक समय प्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं। ड्योढगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इन सबनिका विशेष आगे कर्मअधिकारविषैं लिखेगे तहा जानना।

द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसै यह कर्म है सो परमाणुरूप अनन्त पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातै याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोहके निमित्ततै मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातै याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्यकर्मके निमित्ततै भावकर्म होय अर भावकर्मके निमित्ततै द्रव्यकर्म का बध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतै भावकर्म, भावकर्मतै द्रव्यकर्म, ऐसै ही परस्पर कारणकार्यभावकरि ससारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द बन्ध होनेतै वा सक्रमणादि होनेतै वा एक

कालविष बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषै बधे एककाल-विषै उदय आवनेतै काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषै मद उदय आवै तब मद कषाय होय तब मंद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिन तीव्र-मदकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी सक्रमणादिक होय तो होय। या प्रकार अनादितै लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतै शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दु.खको कारण है। तातै शरारको नोकर्म कहिए है। इहा नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर बचन ए भी शरीरके अग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिंड जानने। सो ऐसे शरीरके अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवके एक क्षेत्रावगाहरूप बधान हो है सो शरीर का जन्म समयतै लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनतर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म-उदयके निमित्ततै नवीन शरीर धरै है तहा भी अपने आयुपर्यन्त तैसें ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससो सम्बन्ध छूटै है। ऐसें ही पूर्व शरीरका छोडना नवीन शरीरका ग्रहण करना अनुक्रम [illegible] ्या करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असख्यातप्रदेशी है तथापि सकोचविस्तारशक्तितै शरीरप्रमाण ही रहै है। विशेष इतना—समुद्घात

होतें शरीरतें बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनके सहायतें जीवकै जानपना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाके अनुसार मोहके उदयतें सुखी दुखी हो है। बहुरि कबहूँ तो जीवकी इच्छाके अनुसार शरीर प्रवर्तै है, कबहूँ शरीरकी अवस्थाके अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूँ जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है। ऐसैं इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहां अनादितें लगाय प्रथम तो इस जीवके नित्यनिगोदरूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहां नित्यनिगोद शरीरको धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरको धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीको धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितें तहां ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहांतें छै महीना अर आठ समयविषै छैसै आठ जीव निकसै है ते निकसि अन्य पर्यायनिको धारै हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक-वनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं, बहुरि तहाँ कितेक काल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायको पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेककाल रहै तहां तें निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है

अर द्वीन्द्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत त्रसनिविषै साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनंतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावर पर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसैं एकेंद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अंतमुहूर्त काल है। ऐसैं घना तौ एकेन्द्रिय पर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तौ काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततैं जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तो इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपको प्रतिभासै है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है, विशेषरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकों प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्माविषै शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षुदर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसैं है सो दिखाइए है।

सो प्रथम तो मतिज्ञान है सो शरीरके अगभूत जे जीभ, नासिका,

नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थान विषै आठ पाखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्यमन तिनके सहायहीतैं जानै है। जैसे जाकी दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चश्मा दीए ही देखै बिना चश्मेके देख सकै नाही। तैसें आत्माका ज्ञान मन्द है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै, तिन बिना जान सकै नाही। बहुरि जैसे नेत्र तो जैसाका तैसा है अर चश्मा विषै किछू दोष भया होय तो देखि सकै नाही अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसें अपना क्षयोपशम तो जैसाका तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमे होय तो जान सकै नाही, अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातें द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परमाणुनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनके अनुसार ज्ञानका परिणमन होय है। ताका उदाहरण—जैसे मनुष्यादिकके बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। बहुरि जैसे शीतवायु आदिके निमित्ततैं स्पर्शनादि इन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय वा अन्यथा जानना होय। बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है। ताका उदाहरण—जैसै नेत्रइन्द्रियकै अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आडे आ जाएँ तो देखि न सकै। बहुरि लाल काच आडा आवै तो सब लाल ही दीसै, हरित कांच आडा आवै तो हरितही दीसै ऐसे अन्यथा जानना होय। बहुरि दुरबीन

चश्मा इत्यादि आडा आवै तो बहुत दीसने लग जाय। प्रकाश जल हिलव्वी काच इत्यादिकके परमाणु आडे आवै तो भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसे अन्य इन्द्रिय वा मनके भी यथासम्भव निमित्तनैमित्तिकपना जानना। बहुरि मन्त्रादिक प्रयोगतै वा मदिरा पानादिकतै वा घृतादिकके निमित्ततै न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यके भी आधीन जानना। बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरतै कैसा ही जानै, समीपतै कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानते बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै। काहूको संशय लिए जानै काहूको अन्यथा जानै, काहूको किंचित् जानै, इत्यादि रूपकरि निर्मल जानना होय सकै नाही। ऐसै यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इन्द्रिय मन द्वारकरि प्रवर्तै है। तहां इन्द्रियनिकरि तो जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कन्ध होय तिनहीको जानै। तिन वषै भी जुदे जुदे इन्द्रियनिकरि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कन्धके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूर क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनको अत्यन्त अस्पष्टपने जानै है सो भी इन्द्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीको जान सकै है। बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाही करि असत्को जानै है। जैसै सुपने विषै वा जागते भी जे कदाचित् कही न पाइए ऐसे आकारादिक चितवै वा जैसै नाही तैसै मानै। ऐसै मन करि जानना होय है सो यहु

इन्द्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेन्द्रियके स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शख आदि बेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीडा मकोडा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतगादिक चौइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पचेन्द्रिय है तिनकै स्पर्श रस गध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई सज्ञी हैं केई असज्ञी है। तहा सज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असज्ञी निकै नाही है। बहुरि मनुष्य देव नारकी सज्ञी ही हैं, तिन सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसे मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतै अन्य अर्थको जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहा जैसे 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तो मतिज्ञान भया .तिनके सम्बन्धतै घट पदार्थका जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसे अन्य भी जानना। सो यहु तो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। बहुरि जैसे स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तो मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतै यह हितकारी नाही यातै भाग जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसे अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असज्ञी जीवनिकै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष सज्ञी पचेन्द्रियकै दोऊ है। सो यहु श्रुतज्ञान है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताके भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिके आधीन है, तातै महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाके अनुसार क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिको स्पष्टपने जाकरि जानिये सो अवधिज्ञान है सो यह देव नारकीनिकै तो सर्वकै पाइए है अर सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकैं भी कोईकै पाइए है। असज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यह होता ही नाही। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिके आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद हैं। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थको जाननहारा देशावधि है सो ही काई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मन पर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै हैं। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातै इस अनादि संसार अवस्था विषै इनका सद्भाव ही नाही है, ऐसे तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनके स्पर्शादिक विषयनिका सम्बन्ध होतै प्रथम कालविषै मतिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहा नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तो चक्षुदर्शन है सो तो चौइन्द्रिय पचेन्द्रिय जीवनिहीकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यार इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनहीकै यहु हो है। जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहां सद्भाव ही नाही। ऐसे

दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमके अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतै शक्ति तो ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषै कै तो ज्ञानोपयोग हो है कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसे मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसै स्पर्शको जानै तब रसादिकको न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसै उष्णस्पर्शको जानै तब रूक्षादिकको न जानै। ऐसै एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसै ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रनिके समीप तिष्ठता भी पदार्थ न दीसै, ऐसै ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है तातैं काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाहीं, क्रम ही करि हो है संस्कारबलतै तिनका साधन रहै है। जैसै कागलेके नेत्र के दोय गोलक है, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है तैसै ही इस जीवके द्वार तो अनेक है अर उपयोग एक सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहां प्रश्न—जो एक कालविषं एक विषयका जानना वा देखना हो है ता इतना हो क्षयोपशम भया कहा, बहुत काहेकूं कहो ? बहुरि तुम कहो हो, क्षयोपशमतें शक्ति हो है तो शक्ति तो आत्माविषै केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है।

ताका समाधान—जैसे काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताको काहूने रोक्या अर यहु कह्या, पाच ग्रामनिविषै जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामको जावो। तहां उस पुरुष कै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषै सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही है परन्तु वर्तमान पाच ग्रामनित अधिक ग्रामनिविषै गमन करि सकै नाही। बहुरि पाच ग्रामनि विषै जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातै इनविषै गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषै एक ग्रामको गमन करनहीको पाइए है। तैसे इस जीवकै सर्वका देखनेका जानने-का शक्ति है। बहुरि याको कमने रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिको जानो वा देखो परन्तु एक काल विषै एक-हीका जानो वा देखो। तहां इस जीवके सबके देखने जाननेकी शक्ति तो द्रव्यअपेक्षा पाइए है अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही, जातै अपने योग्य विषयनित अधिक विषयनिको देखि जानि सकै नाही। बहुरि अपने योग्य विषयनिकू देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है जातै इनिको देखि जानि सकै है, बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीको देखने वा जाननेकी पाइए।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ऐसै तो जान्या परन्तु क्षयोपशम तो पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भये देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसे कर्महीका निमित्त तो न रह्या?

ताका समाधान—जैसे रोकनहाराने यहु कह्या जो पाच ग्रामनिविषै एक ग्रामको एक दिनविषै जावो परन्तु इन किकरनिको साथ लेके जावो तहा वे किकर अन्यथा परिणमैं तो जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय। तैसे कर्मका ऐसा ही क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयको एक कालविषै देखो वा जानो परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भये देखो वा जानो। तहाँ वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तो देखना जानना न होय वा अन्यथा होय। ऐसे यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातै कर्महीका निमित्त जानना। जैसे काहूके अधकारके परमाणु आडे आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकै तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसे जसे क्षयोपशम होय तैसे तैसेंही देखना जानना होय। ऐसें इस जीवकै क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषै अवधि मन पर्यय हो है ते भी क्षयोपशमज्ञान ही है, तिनिकी भी ऐसे ही एक कालविषै एकको प्रतिभासना वा परद्रव्यका आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततै बहुत ज्ञानदर्शनके अशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतै थोरे अशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतै मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं। तहाँ दर्शनमोहके उदयतै तो मिथ्यात्वभाव हो हैं ताकरि यह जीव

अन्यथा प्रतीतरूप अतत्त्वश्रद्धान करै है । जैसें है तैसे तो न मानै है अर जैसे नाही है तैसे मानै है । अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुंज प्रसिद्ध ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीन संयोग भया, ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर हैं । इनका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय ही हैं, तिस पर्यायनिविषै अहंबुद्धि धारै है, स्व-परका भेद नाही करि सकै है । जो पर्याय पावै तिसहीको आपा मानै । बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तो आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततै उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाही है, शरीरादिक पुद्गलके गुण हैं अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणुनिकी नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्गल की अवस्था है सो इन सबनिहीको अपनो स्वरूप जानै है, स्वभाव परभावका विवेक नाही होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषै कुटम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतै भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाही परिणमैं हैं तथापि तिन विषै ममकार करै है । ए मेरे हैं वे काहू प्रकार भी अपने होते नाही, यह ही अपनी मानि तै अपने मानै है । बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तो प्रतीत करै है अर यथार्थस्वरूप जैसे है तैसे प्रतीति न करै है। ऐसै दर्शनमोहके उदय करि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो है। जहा तीव्र उदय होय है तहाँ सत्यश्रद्धानतै घना विपरीत श्रद्धान होय है । जब मंद

उदय होय है तब सत्यश्रद्धानतै थोरा विपरीत श्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतै इस जीवकै कषायभाव हो हैं तब वह देखता जानता मना परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो मानि क्रोधादिक करै है तहा क्रोधका उदय होते पदार्थनिविषै अनिष्टपनो वा ताका बुरा होना चाहै। कोउ मदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि याका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाको वध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपको सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तो होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है

बहुरि मानका उदय होते पदार्थविषै अनिष्टपनो मानि ताको नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मन धूलि आदि अ[illegible] पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिको नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनकी हीनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसै ऊचा दीसै तैसै शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिको हीन दिखाय,आप ऊचा हुआ चाहै। बहुरि अन्यकोई आपतै ऊँचा कार्य करै ताको कोई उपाय करि नीचा दिखावै और आप कार्य करै ताकू ऊचा दिखावै; या प्रकार मानकरि अपनी महतताकी इच्छा तो होय, महतता होनी भवितव्य

बहुरि मायाका उदय होते कोई पदार्थको इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताको सिद्ध किया चाहै । रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल करै । परको ठगनेके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपनाअभिप्राय सिद्ध किया चाहै । या प्रकार मायाकरि इष्ट-सिद्धिके अर्थि छल तो करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है ।

बहुरि लोभका उदय होते पदार्थनिको इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै । वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय । बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकौं तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै । या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तो होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है । ऐसैं क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमै है । तहा एक एक कषाय चार चार प्रकार है । अनतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्या-नावरण ३, सजवलन ४ । तहाँ जिनका उदयतै आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनतानुबधीकषाय है ।*) जिनका उदय होतै देशचारित्र न होय तातै किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय है। बहुरि जिनका उदय होतैं सकलचारित्र न होय तातै सर्वका त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्याना-

* यह पंक्ति खरडा प्रति मे नही है ।

वरण कषाय हैं । बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्रको दोष उपज्या करै तातैं यथाख्यातचारित्र न होय सकै,ते सज्वलन कषाय हैं। सो अनादि ससार अवस्थाविषै इन चारयो ही कषायनिका निरतर उदय पाइए है । परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहा भी अर शुक्ललेश्यारूप मदकषाय होय तहा भी निरन्तर च्यारयोहीका उदय रहै है। जातैं तीव्रमन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाही हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद है। इनही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होत तीव्र क्रोधादिक हो है, मन्द अनुभाग उदय होतें मन्द उदय हो हैं। बहुरि मोक्षमार्ग भए इन च्यारो विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछे च्यारयोका अभाव हो है। बहुरि क्रोधादिक च्यारयो कषायनिविषै एककाल एकहीका उदय हो है। इन कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनो है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातैं काहूकाल भिन्नता भासै, काहूकाल न भासै है। ऐसैं कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्रमोहहीके उदयतै नोकषाय होयहै तहा हास्यका उदयकरि कही इष्टपना मानि प्रफुल्लित हो है,हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदयकरि काहूकों इष्ट मान प्रीति करै है तहा आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदयकरि काहूको अनिष्ट मान अप्रीति करै है तहाँ उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोकका उदयकरि कही अनिष्टपनों मान दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीको अनिष्ट मान तिसतै डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहूपदार्थकों अनिष्ट मान ताकी घृणा करै है, वाका वियोग चाहै है। ऐसैं ए हास्यादिक

छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतें याकै काम परिणाम हो है तहाँ स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसो रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसों रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सकवेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसो रमनेकी इच्छा हो है, ऐसें ए नव तो नोकषाय है। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाही तातें इनको ईषत्कषाय कहैं है। यहाँ नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनका उदय तिन क्रोधादिकनिकी साथ यथासम्भव हो है। ऐसें मोहके उदयतें मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए ससारके मूल कारण ही है। इनही करि वर्तमान काल विषें जीव दु:खी हैं अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारण ए ही हैं। बहुरि इनहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहाँ मिथ्यात्वका नाम मोह है जातैं तहाँ सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातें तहाँ इष्टबुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातें तहा अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। तातें इन विषै सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अतरायके उदयतें जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिको प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसें अंतरायके उदयतें चाह्या चाहै सो होय नाही। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतें किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तो बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु

थाडा हाॅ) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोडाही लाभ हा है । ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाॅ भो अनेक बाह्य कारण चाहिए। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतै जीवकै अवस्था हा है । बहुरि अघातिकर्मनिविषै वेदनीयके उदयकरि शरीर विष बाह्य सुख दु खका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपनो रोगीपनो शक्तिवानपनो दुर्बलपनो इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीडा इत्यादि सुख दु खनिके कारण हो है । बहुरि बाह्यविषै सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक,असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बधनादिक सुख दु खको कारण हो है। ए बाह्य कारण कहे तिन विषै केई कारण तो ऐसे है जिनके निमित्तस्यो शरीरकी अवस्था हो सुख दु खको कारण हो है अर वे ही सुख दु खको कारण न हो है। बहुरि केई कारण ऐसे है जे आप हो सुख दु खको कारण हो है। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयतै हो है। तहा साता वेदनीयतै सुखके कारण मिलै अर असातावेदनीयतै दु खके कारण मिलै । सो इहाॅ ऐसा जानना, ए कारणही तो सुखदु खको उपजावै नाही, आत्मा मोहकर्म का उदयतै आप सुखदु ख मानै है । तहा वेदनीयकर्मका उदयकै अर मोहकर्मका उदयकै ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तो सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारण मिलै तब दु ख मानने-

* यह पक्ति खरडा प्रति मे नही है किन्तु अन्य सब प्रतियो मे है, इस कारण आवश्यक जान यहा दे दी गई है।

रूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारण काहूको सुखका, काहूको दुखका कारण हो है। जैसे काहूकै सातावेदनीयका उदय होते मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है तैसा ही वस्त्र काहूको असाता वेदनीयका उदय होते मिल्या दुखका कारण हो है। तातै बाह्य वस्तु सुखदुखका निमित्त मात्र हो है। सुख दुख हो है सो मोहके निमित्ततै हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारण मिलै तो भी सुख दुख न उपजै। मोही जीवकै कारण मिले वा बिना कारण मिले भी अपने संकल्प हीतै सुख दुख हुआ ही करै है। तहाँ भी तीव्रमोहीके जिस कारणको मिले तीव्र सुख दुख होय तिसही कारणको मिले मंदमोहीकै मंद सुखदुख होय। तातै सुख दुखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु है सो बलवान कारण नाही। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवके परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीको सुखदुखका कारण मानै है। ऐसै वेदनीयकरि सुखदुखका कारण निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलो, शरीरस्यो सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किए भी शरीरस्यो सम्बन्ध रहै नाही, तिसही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषै जन्म, जीवन, मरणका कारण आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारणतै जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय

तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतैं मरण हो है। सहज ही ऐसा आयु-कर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा,क्षपावनहारा,रक्षाकरनेहारा है नाही,ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसें नवीन वस्त्र पहरे कितेक काल पहरे रहै, पीछे ताकूं छोडि अन्य वस्त्र पहरं तैसें जीव नवीन शरीर धरे कितेक काल धरे रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक है। जीव जन्मादिरहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाही। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्याय सम्बन्धी कार्यनि-विषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसें आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यह जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहा त्रसस्थावरादि विशेष निपजै है। बहुरि तहाँ एकेंद्रियादि जातिको धारै है। इस जाति कर्म-का उदयके अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमके निमित्तनैमित्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहाँ शरीरके परमाणु अर आत्माके प्रदेशोका एक बन्धन हो है अर सकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसना आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजै हैं वा हृदय स्थान विषै आठ पाखडीका फूल्या कमलके आकार द्रव्य मन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिक-का विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै है सो ए शरीररूप परणिए परमाणु ऐसें परिणमे हैं। बहुरि श्वासो-

च्छ्वास वा स्वर निपजै हैं सो ए भी पुद्गलके पिंड हैं अर शरीरस्यो एक बधानरूप हैं। इनविषै भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहा श्वासोच्छ्वास तो पवनहै सो जैसे आहारको ग्रहै नीहारको निकासै तबही जीवनो होय तैसें बाह्यपवनको ग्रहै अर अभ्यतर पवनको निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातै श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारण है। इस शरीरविषै जैसें हाड मासादिक हैं तैसें ही पवन जानना। बहुरि जैसें हस्तादिकसो कार्य्य करिए तैसें हो पवनतै कार्य करिए है। मुखमे ग्रास धरया ताको पवनतै निगलिए है, मलादिक पवनतै ही बाहर काढिए है, तैसें ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसें वीणाकी तातकों हलाए भाषारूप होने योग्य पुद्गलस्कधहै, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं, तैसें तालवा होठ इत्यादि अगनिको हलाए भाषापर्याप्तिविषै ग्रहे पुद्गलस्कध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो है। इहाँ ऐसा जानना, जैसे दायपुरुषनिकै इकदडो बेड़ो है तहाँ एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तो गमनादिक होय सकै, दोऊनिविषै एक बैठि रहै तो गमनादि होय सकै नाही अर दोऊनिविषै एक बलवान होय तो दूसरेको भी घसीट लेजाय तैसें आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बधान है तहाँ आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्गलविषै शक्ति पाइए है अर आत्माको इच्छा न होय तो हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इन

विषै पुद्गल बलवान होय हालै चालै तो ताकी साथ बिना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसै हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै है। ऐसैं ए कार्य निपजै है, तिनकरि मोहके अनुसार आत्मा सुखी दुखी भी हो है। नामकर्मके उदयतै स्वयमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो है, और कोई करनहारा नाही है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहाँ है ही नाही। बहुरि गोत्रकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजना हो है तहाँ अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है। मोहके निमित्ततै तिनकरि आत्मा सुखी दुखी भी हो है। ऐसै अघाति कर्मनिका निमित्ततै अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयके अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य! अपने अन्तरंगविषै विचारकरि देख, ऐसे ही है कि नाही। सो ऐसा विचार किए ऐसै ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसे है तो तू यह मान कि 'मेरै अनादि संसार रोग पाइए है ताके नाशका मोको उपाय करना'. इस विचारतै तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसारअवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनो करो प्रकाश ।
जो बहुविधि भवदुःखनिको, करि है सत्तानाश ॥१॥

अब इस ससार अवस्थाविषै नाना प्रकार दुख है तिनका वर्णन करिए है – जातै जो समारविषै भी सुख होय तो ससारतै मुक्त होने का उपाय काहेको करिए इस समारविष अनेक दुख है, तिसहीतै समारतै मुक्त होनेका उपाय कीजिए है । बहुरि जैसे वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीको ससार रोगका निश्चय कराय पीछे तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तसै यहाँ ससारका निदान वा ताको अवस्थाका वर्णनकरि ससारीको समार रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करनेकी रुचि कराईए है । जैसे रोगी रोगतै दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही, साँचा उपाय जानै नाही अर दुख भी सह्या जाय नाही । तब आपको भास सो ही उपाय करै तातै दुख दूरि होय नाही । तब तडफि तडफि परवश हुवा तिन दुखनिको सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही । याको वैद्य दुखका मूलकारण बतावै, दुखका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं झूठ दिखावै तब साचे उपाय करनेकी रुचि होय । तैसैही यह ससारी ससारतै दुःखी होय रह्या है

परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही अर साँचा उपाय जानै नाही अर दु ख भी सह्या जाय नाही। तब आपको भासै सो हो उपाय करै तातै दु ख दूर होय नाही। तब तडफि-तडफि परवश हुवा तिन दु खनिको सहै है।

दुःखोंका मूल कारण

याको यहाँ दु खका मूलकारण बताइए है, दु खका स्वरूप बताइए है अर तिन उपायनिकू झूठे दिखाइए तो साँचे उपाय करनेकी रुचि होय तातै यह वर्णन इहाँ करिये है । तहाँ सब दु खनिका मूल-कारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असयम है। जो दर्शनमोहके उदयतै भया अतत्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपको यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्या-दर्शनहीके निमित्ततै क्षयोपशमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथाथ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतै भया कषायभाव ताका नाम असयम है ताकरि जैसै वस्तुका स्वरूप है तैसा नाही प्रवर्त्तै है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसै ये मिथ्यादर्शनादिक है तेई सब दुःखनिके मूल कारन है। कैसै ? सो दिखाइये हैं—

मिथ्यात्वका प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व पर-विवेक नाही होइ सकै है, एक आप आत्मा अर अनत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनका सयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीको आपो मानै है। बहुरि

आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितें भए क्रोधादिकभाव तिनरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृषादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिको अपना स्वरूप जानै है। तहाँ ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारे हो है तातैं यहु मानै है कि ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग है। इनकरि मै देखूं जानूं हूँ, ऐसी मानि तातैं इन्द्रियनिविषैं प्रीति पाइए है।

मोहजनित विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतैं तिन इन्द्रियनिके द्वारा विषय ग्रहण करने की इच्छा हो है। बहुरि तिनविषै इनका ग्रहण भए तिस इच्छा के मिटनेतें निराकुल हो है तब आनन्द मानै है। जैसे कूकरा हाड चाबै ताकरि अपना लोहो निकसै ताका स्वाद लेय ऐसैं मानै, यहु हाडनिका स्वाद है। तैसैं यहु जीव विषयनिको जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तै, ताका स्वाद लेय ऐसैं मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमे तो स्वाद है नाही। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या परन्तु मै अनादि अनतज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ऐसा नि केवलज्ञानका तो अनुभव है नाही। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंध्या, पदार्थ स्पर्शा, स्वाद जान्या तथा मोकों यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसैं इस जीवके मोहके निमित्ततैं विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तो त्रिकालवर्त्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वको स्पर्शू सर्वकूं स्वादूं, सर्व को सूघूं, सबको देखूं, सबका सुनूं सर्वको जानूं, सो इच्छा तो इतनी है अर शक्ति इतनी हा है जो इन्द्रियनिके सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनविषै काहूको किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतै मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिले सिद्धि होय। तातै इच्छा कबहू पूर्ण होय नाही। ऐसी इच्छा तो केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तो इच्छा पूर्ण होय नाही तातै मोहके निमित्ततै इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिबो ही करै ताकरि आकुलित हूवा दुखी हो रह्या है। ऐसा दुखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनको भी नाही गिनै है। जैसै हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बडसीकै लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंग कै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तो भी मरनको गिनै नाही विषयनिका ग्रहण करै, जातै मरण होनेतै इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीडा अधिक भासै है। इन इन्द्रियनिकी पीडाकरि सर्व जीव पीडित रूप निर्विचार होय जैसे कोऊ दुखी पर्वततै गिर पडै तैसे विषयनिविषै झंपापात लै है। नाना कष्टकरि धनको उपजावै ताको विषयके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहां मरन होता जानै तहां भी जाय, नरकादिको कारन जे हिंसादिक कार्य तिनको करै वा क्रोधादि कषायनिको उपजावै, कहा करै. इन्द्रियनिकी पीडा सही न जाय ताते अन्य विचार

किछू आवता नाही। इस पीडाहीकरि पीडित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषै अति आसक्त हो रहे है। जैसै खाज रोगकरि पीडित हुआ पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीडा न होय तो काहेकों खुजावै; तैसै इन्द्रिय रोगकरि पीडित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करै है, पीडा न होय तो काहेको विषय सेवन करै? ऐसै ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतै भया इन्द्रियादिजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततै इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब इस दुःख दूर होनेका उपाय यहु जीव कहा करै है सो कहिए है - इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिको प्रबल करै है अर ऐसै ही जानै है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहा अनेक बाह्यकारण चाहिए है तिनका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय है ते विषयको सन्मुख भए ग्रहैं तातै अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका सयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका सयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछे मन द्वारे स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय ताते तिन विषयनिको अपने आधीन राखनेका उपाय करै अर शीघ्र शीघ्र तिनका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिकै

तो एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै तातै आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयको छोड़ि औरको ग्रहै। बहुरि वाको छोडि औरको ग्रहै, ऐसे हापटा मारे है। बहुरि जो उपाय याको भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातै प्रथम तो इन सबनिका ऐसै ही होना अपने आधीन नाही, महा-कठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसार ऐसै ही विधि मिलै तो इन्द्रियनिको प्रबल किए किछू विषय ग्रहणकी शक्ति बधै नाही। यह शक्ति तो ज्ञानदर्शन बधे × बधै+। सो यह कर्मका क्षयोपशमके आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूका शरीर दुर्बल है ताके अधिक देखिए है। तातै भोजनादिव करि इन्द्रिय-पुष्ट किए किछू सिद्धि है नाही। कषायादि घटनेतै कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञानदर्श। बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनि-का सयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाही अथवा सर्व विषयनि का सयोग मिलता ही नाही। तातै यह आकुलता रहिवो ही करे। बहुरि तिन विषयनिको अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तो जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमै हैं वा कर्मोदयके आधीन है। सो ऐसा कर्मका बन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछे उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करते भी कर्मका निमित्त विना सामग्री मिलै नाही। बहुरि एक विषय को छोडि अन्यका ग्रहणको ऐसै हापटा मारै है सो कहा सिद्धि हो है। जैसे मणकी भूख वालेको कण मिल्या तो भूख कहा मिटै? तैसे सर्व

* उतावला, × बढ़ने पर, + बढ़ै।

का ग्रहणकी जाकैं इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसें मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाही। तातै यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतै केई जीव सुखी होते देखिए हैं, सर्वथा झूठ कैसें कहो हो?

ताका समाधान— सुखी तो न हो है, भ्रमतै सुख मानै है। जो सुखी भया तो अन्य विषयनिकी इच्छा कैसे रहेगी। जैसे रोग मिटे अन्य औषध काहेको चाहै तैसे दुःख मिटे अन्य विषयको काहेको चाहै। तातै विषयका ग्रहणकरि इच्छा थभि जाय तो हम सुख मानै। सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तो तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय ताका सग्रह भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तो यह सुख मानना कैसे है। जैसे कोऊ महा क्षुधावान् रंक ताको एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसै यह महातृष्णावान् याको एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतै सुख है नाही।

कोऊ कहै जैसे कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसे एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तो दोष कहा?

ताका समाधान— जो कण भेले होय तो ऐसै ही मानै। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कण का निर्गमन हो जाय तो कैसै भूख मिटै? तैसे ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्वै विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाही तो कैसे इच्छा पूरण होय? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाही। आकुलता मिटे

बिना सुख कैसे कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्या-दर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातै आगामी अनेक दुखका कारन कर्म बंध है। जातै यह वर्तमानविषै सुख नाही,आगामी सुखका कारन नाही, तातै दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषै कह्या है -

"सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं त सोक्खं दुक्खमेव बद्धाधा* ॥१॥

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है,बंधका कारण है,विषम है सो ऐसा सुख तैसा दुःखही है, ऐसै इस ससारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तो साचा उपाय कहा

दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तो दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुःख मिटै। सो इच्छा तो मोह गए मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भए होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई साँचा उपाय जानना। ऐसै तो मोहके निमित्त तै ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहा कोऊ कहै—ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतै जानना न भया ताकू दुःखका कारण कहो, क्षयोपशमको काहेको कहो ?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारण होय तो पुद्गलकै भी दुःख ठहरै। तातै दुःखका मूलकारण तो इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतै हो है,तातै क्षयोपशमको दुःख का कारण कह्या है,परमार्थतै क्षयोपशम भी दुःखका कारण नाही। जो मोहतै विषय-

* प्रवचनसार १-७६ मे 'तहा' पाठ दिया है।

ग्रहणकी इच्छा है सोई दु.खका कारण जानना। बहुरि मोहका उदय है सो दु खरूप ही है। कैसे सो कहिए है—

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतै मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसै याक श्रद्धान है तैसै तो पदार्थ है नाही, जैसे पदार्थ है तैसे यह मानै नाहीं, तातै याकै आकुलता ही रहै। जैसै बाउलाको काहूने वस्त्र पहराया वह बाउला तिस वस्त्रको अपना अग जानि आपकूं अर शरीरको एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेके आधीन है सो वह कबहू फारै, कबहू जारै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चारित्र करै। वह बाउला तिसको अपने आधीन मान, वाकी पराधीन क्रिया होय तात महाखेदखिन्न होय। तैसे इस जोवको कर्मोदयने शरीर सम्बन्ध कराया, वह जीव तिस शरीरको अपना अग जानि आपको अर शरीरको एक मानै सो शरीर कर्मके आधीन कबहू कृष होय, कबहू स्थूल होय, कबहू नष्ट होय, कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसको आपके आधीन जानै, वाको पराधीन क्रिया होय तातै महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसै जहा बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहीतै आन उतरे, वह बाउला तिनको अपने जानै, वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसै यह जीव जहाँ पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहीतै आन प्राप्त भए, यह जीव तिनकों अपने जानै सो वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारू

परिणमै। यह जीव तिनको अपने आधीन मानै,उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहां कोऊ कहै, काहूकाल विषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीवके आधीन भी तो क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान– शरीरादिककी,भवितव्यकी अर जीवकी इच्छाकी विधि मिले कोई एक प्रकार जैसें वह चाहै तैसें परिणमै तातैं काहू कालविषै वाहीका विचार होते सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तो सर्व प्रकार यह चाहै तैसें न परिणमै। तातैं अभिप्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहवो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसार परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनके उपजावनेकी वा बधावनेकी वा रक्षा करनेकी चिताकरि निरतर व्याकुल रहै है। नाना प्रकार कष्ट सहकरि भी तिनका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है, कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनो मानै है, उपाय अन्यथा करै है साँचा उपायको न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इन सबनिका मूलकारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातैं सब दु.खनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है। बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानको सत्य श्रद्धान मानै, उपाय काहेको करै। बहुरि सञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्व निश्चय करनेका उपाय विचारै तहां अभाग्यतै कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तो अतत्त्व श्रद्धान पुष्ट होइ जाय, यह तो जानै कि इनतै मेरा भला होगा,वे ऐसा उपाय

करैं जाकरि यह अचेत होय जाय । वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ होय जाय । तब विषयकषाय की वासना बधनेतै अधिक दु.खी होइ । बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तहां तिनका निश्चय उपदेशको तो श्रद्धहै नाही, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्वश्रद्धानी ही रहै । तहां मद कषाय वा विषय इच्छा घटै तो थोरा दुःखी होय, पीछे बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय । तातै यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय । बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपके जैसा श्रद्धान है तैसैं पदार्थनिको परिणमाया चाहै सो वे परिणमैं तो याका सांचा श्रद्धान होय जाय परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमै है. कोऊ कोऊके आधीन नाही । कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाही । तिनको परिणमाया चाहै सो उपाय नाही । यह तो मिथ्यादर्शन ही है । तो साचा उपाय कहा है ? जैसे पदार्थनिका स्वरूप है तैसै श्रद्धान होइ तो सर्व दु ख दूरि हो जाय । जैसे कोऊ मोहित होय मुरदाको जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दु खी हो है। बहुरि वाकों मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवेगा नाही ऐसा मानना सो ही तिस दु ख दूर होनेका उपाय है । तैसै मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिको अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै सो आप ही दु·खी हो है । बहुरि उनको यथार्थ मानना अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैगे नाहीं ऐसा मानना सोही तिस दु खके दूर होनेका उपाय है । भ्रमजनित दुःखका उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो भ्रम दूर होनेतैं सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना ।

चारित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतें क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नो- कषायरूप जीवके भाव हो है। तब यह जीव क्लेशवान होय दुःखी होता सता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है— जब याकै क्रोध कषाय उपजै तब अन्यका बुरा करने की इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मर्मच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनि करि बुरा होना जानै तो औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तो भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होते कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनको भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तो अपने अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होते होहै। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिको नीचा वा आपको ऊंचा दिखा- वनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताका विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चै। मूए पीछै हमारा जस रहेगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकै भी

अपनी महिमा बधाव। जो अपना सन्मानादि न करै ताको भय आदिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सम्मान करावै। बहुरि मान होतें कोई पूज्य बड़े होहिं तिनका भी सम्मान न करै, किछू विचार रहता नाही। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दोसै तो अपने अंतरंग विषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होतें होय है। बहुरि जब याकै माया-कषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नाना प्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीर की अवस्था करै,बाह्य वस्तुनिको अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करै, बहुरि कपट प्रगट भए अपना बहुत बुरा होई, मरनादिक होई तिनको भी न गिनै। बहुरि माया होते कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तो उनस्यों भी छल करै, किछू विचार रहता नाही। बहुरि छलकरि कार्यसिद्ध न होइ तो आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होते हो है। बहुरि जब याकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदार्थका लाभ की इच्छा होय,ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। याके साधनरूप वचन बोलै, शरीरको अनेक चेष्टा करै, बहुत कष्ट सहै,सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जान सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होते पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै,किछू विचार रहता नाही। बहुरि जिस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करैहै;बहुरि इष्टवस्तुकी

प्राप्ति न होय वा इष्टका बियाग होइ तो आप बहुत सन्तापवान होय अपने अगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय,ऐसी अवस्था लोभ होते हो है;ऐसें कषायनिकरि पीडित हुवा इन अवस्थानिविषै प्रवर्तै है।

बहुरि इन कषायनिकी साथ नोकषाय हो हैं । जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हसना, नाना रोगकरि आप पीडित है, कोई कल्पनाकरि हसने लग जाय है। ऐसैं ही यह जीव अनेक पीड़ा-सहित है, कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावता कार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतै दु खी ही है। सुखो ता कषायरोग मिटे होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अति आसक्त हो है। जैसैं बिल्ली मूसाको पकरि आसक्त हो है, कोऊ मारै तो भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग हानेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है तातै दु खही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका सयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका संयोग भया सो आपकू सुहावता नाही। सो यह पीडा सही न जाय तातै ताका वियोग करनेको तडफडै है सो यह दु ख हो है। बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका सयाग हाते अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय,अपना अग-घात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाही तो भी आपही महादु खी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकाने प्राप्त होय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही

है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुसों घृणा करै। ताका तो संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होई कै वाकू दूर किया चाहै, महादुःखको पावै है। बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यों रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है, आताप उपजै है, निर्लज्ज हो है, धन खर्चै है। अपजसको न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दंडादिक होय ताको न गिनै है। कामपीडातै बाउला हो है, मरि जाय है। सो रसग्रंथनिविषै कामकी दश दशा कही है। तहां बाउला होना मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमे ज्वरके भेदनिविषै कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरण पर्यन्त होते देखिए है। कामांधकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता पुत्री वा मनुष्य तिर्यंचणी इत्यादितै रमने लगि जाय है। ऐसी कामकी पीडा महादुःखरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहां ऐसा विचार आवै है जो इन अवस्थानिविषै न प्रवर्त्तै तो क्रोधादिक पीडै अर अवस्थानिविषै प्रवर्त्तै तो मरण पर्यंत कष्ट होइ। तहां मरण पर्यंत कष्ट तो कबूल करिए है अर क्रोधादिककी पीडा सहनी कबूल न करिए है। तातै यहु निश्चय भया जो मरणादिकतै भी कषायनिकी पीडा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ तब कषाय किए बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलै तो उनके आश्रय कषाय करै, न मिलै तो आप कारण बनावै। जैसे व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तो जूआ खेलना वा अन्य

क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनाव है। बहुरि काम क्रोधादि पीड़े शरीरविषै तिनरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ ता औषधि बनाव, अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारण बनै नाही तो अपने उपयोग विषै कषायनिको कारणभूत पदार्थनिका चितवनकरि आप ही कषायरूप परिणमै। ऐसे यह जोव कषायभावनिकरि पीडित हुवा महान् दुःखी हो है। बहुरि जिस प्रयोजनको लिए कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोकू सुख होय, ऐसैं विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनेके अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होनेका उपाय मानै है। सो इहाँ कषायभावनितै जो दुःख हो है सो तो साचा ही है, प्रत्यक्ष आप ही दुःखी हो है। बहुरि यह उपाय करै है सो झूठा है। काहेतै सो कहिए है—क्रोध विषै तो अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकू नीचा करि आप ऊचा होना मायाविषै छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारण बन्या रहना, रतिविषै इष्टसयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूर होना, शोकविषै शोकका कारण मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारण दूर होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यो रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यो रमना, नपुसकवेदविषै दोऊनिस्यो रमना, ऐसे प्रयोजन पाइए है। सो इनकी सिद्धि होय तो कषाय उपशमनेतै दुःख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातै अनेक उपाय करते देखिये है अर सिद्धि न

हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्य आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्य की सिद्धि भी होय जाय तो तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहाँ थम्भाव होता नाहीं। यावत् कार्य सिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्यसम्बन्धी कषाय थी, जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्बन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्र भी निराकुल रहै नाही। जैसें कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्य सो क्रोधकरि वाका बुरा चाहने लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसे ही मानमाया लोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होय चुक्या तब अन्य विषैं मानादिक उपजांय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करनेका अभिलाषी भया। कषायनिविषै कार्यका प्रमाण होइ तो तिस कार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषै कह्या है—

"आशागर्तःप्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम्।

कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है। अनंता-

नंत जीव हैं तिन सबनिकै ही आशा पाइए है । बहुरि वह आशा-रूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़े विषै समस्त लोक अणुसमान है । अर लोक एक ही सो अब इहाँ कौन कौनके कितना कितना बटवारे*आवै । तुम्हारे यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है । इच्छा पूर्ण तो होती ही नाही । तातै कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय । जैसें काहूको मारनेवाले बहुत होय, जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जांय। तैसें जीवको दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जाँय। ऐसें कषायका सद्भाव रह्या ही करै। कोईएक समय भी कषाय रहित होय नाही । तातै कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसे होइ ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्व-कषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ। सो तो कदाचित होइ सकै नाही । तातै अभिप्राय विषै शाश्वत दुःखी ही रहै है । तातै कषायनिका प्रयोजनको साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है,सो यह उपाय झूठा ही है तो साँचा उपाय कहा है? सम्यग्-दर्शनज्ञानतै यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै । बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होय । ऐसे होते कषायनिका अभाव होइ तब तिनकी पीडा दूर होय । तब प्रयोजन भी किछू रहै नाही, निराकुल होनेतै महासुखी होइ । तातै सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका साचा उपाय है । बहुरि अन्त-

* बांटमें—हिस्सेमे ।

रायका उदयतैं जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजै परन्तु होइ सकै नाही। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही, याका उपाय यह करैहै कि जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनके दूर करनेका उद्यम कर सो यह झूठा उपाय है। उपाय किये भी अन्तरायका उदय होते विघ्न होता देखिए है। अन्तरायका क्षयोपशम भए उपाय बिना भी कार्य विषै विघ्न न हो है। तातैं विघ्न का मूलकारण अंतराय है। बहुरि जैसैं कूकराकै पुरुषकरि बाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यो वृथा ही द्वेष करै है। तैसैं जीवके अन्तरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया, यह जीव तिन बाह्य द्रव्यनिसो वृथा खेदकरै है। अन्यद्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातै जानिए है, अन्य द्रव्यका किछु वश नाही, जिनका वश नाही तिनिसो काहेको लरिये। तातै यह उपाय झूठा है। सो साचा उपाय कहा है? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूर होय अर सम्यग्दर्शनादिक ही करि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तो मिट जाय, शक्ति बधि जाय तब वह दुःख दूर होइ निराकुल सुख उपजै। तातै सम्यग्दर्शना-दिकही साचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतै दुःख सुखके कारण का सयोग हो है। तहाँ केइ तो शरीर विषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीरकी अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य संयोग हो हैं। केइ बाह्य ही वस्तूनिका संयोग हो है। तहाँ असाताके उदयकरि शरीर विषै तो क्षुधा, तृषा, उस्वास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी अनिष्ट

अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका सयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कधनिका सयोग हो है। सो मोहकरि इन विषै अनिष्ट बुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमें महाव्याकुल होइ इनको दूर किया चाहै। यावत् ए दूर न होय तावत् दुःखी हो है सो इनको होते तो सर्व ही दुःख मानै है,बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनो बलवानपनो इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका सयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका सयोग हो है सो मोहकरि इनवषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आव जाकरि परिणामनिमे चैन मानै। इनकी रक्षा चाहै, यावत् रहै तावत सुख मानै। सो यह सुख मानना ऐसा है जैसें कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीडित होय रह्या था ताके कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशांतता भई तब वह पूर्व अवस्थाको अपेक्षा आपको सुखी कहै, परमार्थतै सुख है नाही। तस यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीडित होइ रह्या था ताके कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखको कितेक काल किछु उपशातता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै है,परमार्थतैं सुखहै नाही। बहुरि याको असाताका उदय होते जो होय ताकरि तो दुःख भासै हैं तातैं ताके दूर करनेका उपाय करै है अर साताका उदय होतैं जो होय ताकरि सुख भासै है तातै ताको होनेका उपाय करै है।

सो यहु उपाय झूठा है। प्रथम तो याका उपाय याके आधीन नाहीं, वेदनीयकर्मका उदयके आधीन है। असाताके मेटनेके अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थि तो सर्वहीकै यत्न रहैहै परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूकै बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होय, तातैं जानिए है याका उपाय याके आधीन नाहीं, बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तो थोरे काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतैं तिनको भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्यवस्तुकी भोगनेकी इच्छा होय, वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी इच्छाकरि आकुलित होय. अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यको भोगनेकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसे काहूको स्वाद लेनकी इच्छा भई थी, वाका आस्वाद जिस समय भया तिसही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुको पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होय। जैसे स्त्रीको देख्या चाहै था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसे भोग भोगते भी तिनके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है सो तिनको छोरि अन्य उपाय करनेको लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमें व्यापारादिक करते बहुरि वाकी रक्षा करनेमे सावधानी करते केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका

उदय आया ही करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सो काहेका सुख है, यह तो रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहै तावत् तिनको मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होय, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी अकुलता होय,बहुरि क्षुधादिक होय तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसें याके उपाय करते कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै,तातै दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसें भी रहना तो होता नाही, आपको उपाय करते करते ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछु उपाय बनि सकै नाही अर ताकी पीडा बहुत होय,सही जाय नाही,तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसारमे साताका उदय तो कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाईए है, घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातै उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतै सुख दुःख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होते मोहका निमित्ततै हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह दुःखी हो है अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है,बाह्यसामग्री तो वाकै यातै निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तो वह सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसै काहूको मोटा वस्त्रका मिलना दुःखकारी होइ, काहूको सुखकारी होइ, बहुरि शरीर विषै क्षुधा आदि पीडा वा बाह्य इष्टका वियोग अनिष्टका सयोग भए काहूकै बहुत दुःख होइ,काहूकै थोरा होइ

काहूकै न होइ। तातै सामग्रीके आधीन सुख दुःख नाहीं। साताअसाता का उदय होते मोहपरिणामनिके निमित्ततै ही सुख दु·ख मानिए है।

इहा प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी, तो तुम कहो हो तैसे ही है परन्तु शरीरविषै तो पीडा भए दुखी होय ही होय अर पीड़ा न भए सुखी होय सो यह तो शरीरअवस्था होके आधीन सुख दुःख भासै है।

ताका समाधान—आत्माका तो ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इन्द्रिय शरीरका अग है। सो यामे जो अवस्था बीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथ ही मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दु ख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्र धनादिकस्यो अधिक मोह होय तो अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दु ख मानै, उनको दुःख भए वा सयोग मिटे बहुत दु ख मानै। अर मुनि है सो शरीरको पीडा होतेभी किछु दुःख मानते नाही। तातै सख दु·ख मानना तो मोहहीके आधीन है। मोहके अर वेदनीयके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, तात साता असाताका उदयतै सुख दु खका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतै हो है, केतीक असाताके उदयतै हो है तातै सामग्रीनिकरि सुख दु ख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतैं सुख दु·ख का मानना हो है, औरनिकरि सुख दु ख होने का नियम नाही। केवलीकै साता असाताका उदयभी है अर सुख दु खको कारण सामग्रीका सयोग भी है परन्तु मोहका अभावतै किचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाही, तातै सुख दु ख मोहजनित ही मानना। तातै तू सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दुःखमेट्या चाहै, सखी भया चाहै सो यहु उपाय झूठा है, तो सांचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतै भ्रम दूर होई तब सामग्रीतै सुख दुःख भासै नाही,अपने परिणामहीतै भासै; बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि अपने परिणाम जैसे सामग्रीके निमित्ततै सुखी दुःखी न होय तैसै साधन करै । सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतै मोह मद होइ जाय तब ऐसी दशा होइ जाय जो अनेक कारण मिले आपकौं सुख दुःख होइ नाही । जबएक शातदशारूप निराकुल होइ साचासुखको अनुभवै तब सर्वदुःख मिटे सुखी होय, यहु साचा उपाय है । बहुरि आयुकर्मके निमित्ततै पर्याय का धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन है । बहुरि यह जीव मिथ्यादर्शनादिकतै पर्यायहीको आपो अनुभवै है, तातै जीवितव्य रहे अपना अस्तित्व मानै है, मरन भए अपना अभाव होना मानै है । इसही कारणतै मदा काल याके मरनका भय रहै है, तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है । जिनको मरनका कारण जानै तिनसो बहुत डरै । कदाचित् उनका सयोग बनै तो महाविह्वल होइ जाय । ऐसै महा दुःखी रहै है । ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारणनिको दूर राखै है वा उनसो आप भागै है । बहुरि औषधादिकका साधन करै है, गढ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है । सो यहु उपाय झूठा है, जात आयु पूर्ण भए तो अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तो भी मरन होइ ही होइ, एक समय मात्र भी न जीवै । अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरन न होइ । तातै उपाय किए मरन मिटता नाही । बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातै मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तो साँचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतै पर्यायविषै अहबुद्धि छूटै, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहबुद्धि आवै। पर्यायको स्वाग समान जानै तब मरणका भय रहै नाही। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतै सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होय। तातै सम्यग्दर्शनादिकही साचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतै गति जाति शरीरादिक निपजै है तिनविषै पुण्यके उदयतै जे हो हैं ते तो सुखके कारण हो है। पापके उदयतै हो है ते दु खके कारण हो है। सो इहा सुख मानना भ्रम है,बहुरि यहु दु खके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै सो झूठा है। साचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसै वेदनीयका कथन करते निरूपण किया तैसै इहाँ भी जानना। वेदनोय अर नामके सुख दु:खका कारणपनाकी समानतातै निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतै नीच ऊंच कुलविषै उपजै है। तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजे आपको ऊँचा मानै है अर नोचा कुलविषै उपजे आपको नीचा मानै है; सो कुल पलटनेका उपाय तो याको भासै नाही तातै जैसा कुल पाया तिसही कुल विषै आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपको ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निद्य कार्य करै तो वह नीचा होइ जाय अर नीचा कुलविषै कोई श्लाध्य कार्य करै तो वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतै नोच कुलवालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै ? पर्याय छूटै कुलको पलटन होइ जाय। तातै ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा नोचा मानै। ऊँचाकुलवालेको नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेको पाए हुए नीचापनेका दु ख ही है तो याका साँचा उपाय कहाहै? सो कहिए है। सम्यग्द-

र्शनादिकतै ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै। बहुरि तिनहीतैं जाकी बहुरि पलटन न होइ ऐसा सर्वतै ऊचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःख मिटै, सुखी होय (तातै सम्यग्दर्शनादिक दु:ख मेटने अरु सुख करने का साचा उपाय है ❀)। या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्या-दर्शनादिजके निमित्ततै ससारविषै दु ख ही दु ख पाइए है ताका वर्णन किया। अब इसही दु खको पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

एकेन्द्रिय जीवोके दुःख

इस ससारविषै बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायही विषै बीत है। तातै अनादिहीते तो नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहाँतै निकसना ऐसै जैसै भारभूनते चणाका उछटि जानासो तहांते निकसि अन्य पर्याय धरै तो त्रसविषै तो बहुत थोरेही काल रहै, एकेद्रीही विषै बहुत काल व्यतीत करै है। तहाँ इतरनिगोदविषै बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होइ। नित्य निगोदतै निकसे पीछै त्रसविषै तो रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर ही है अर एकेन्द्रियविषै उत्कृष्ट रहनेका काल असख्यात पुद्गल परावर्तन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनतवाँ भागविषैभी अनते सागर हो है। तातै इस ससारीकै मुख्यपने एकेन्द्रिय पर्यायविषैही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तो किंचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततै भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततै भया श्रुतज्ञान अर स्पर्शनइन्द्रिय-जनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है।

❀ यह पक्ति खरडा प्रति मे नही है।

ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महादु.खी है । बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्धै है, अन्यविचार करनेको शक्ति ही नाही । बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमै है जातैं उनके केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्याही कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होते ही हो हैं सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दु:खी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाही ।

इहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तो किंचिन्मात्रही रह्या है,वे कहा कषाय करैं?

ताका समाधान--जो ऐसा तो नियम है नाही जेता ज्ञान होय तेता ही कषाय होय । ज्ञान तो क्षयोपशम जेता होय तेता हो है । सो जैसैं कोऊ आँधा बहरा पुरुषकैं ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसैं एकेन्द्रियके ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषायका होना मानना है । बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायके अनुसार किछु उपाय करै। सो वे शक्तिहीन है तातैं उपाय करि सकते नाही । तातैं उनकी कषाया प्रगट नाही हो है । जैसैं कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताके कोई कारणतैं तीव्र कषाय होय परन्तु किछु करि सकते नाही । तातैं वाका कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है,यू ही अति दु खी हो है । तैसैं एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनकैं कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाही, तातैं उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाही हो है; वे आप ही गदु·खी हो हैं । बहुरि ऐसा जानना, जहाँ कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन का होय तहाँ घना दु:खी हो है । बहुरि जैसै कषायघटती जाय,शक्ति बधती

जाय तैसे दु.ख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिके कषाय बहुत अर शक्तिहीन तातै एकेन्द्रिय जीव महादुःखी है। उनके दुःख वे ही भोगवै हैं अर केवली जानै है। जैसे सन्निपातीका ज्ञान घट जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनेतै अपना दु.ख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है,तैसे एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातै अपना दु.खको प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादु.खी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाही तातै भी दु.खी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषै विशेषपने पापप्रकृतिका उदय है तहाँ असातावेदनीयका उदय होते तिसके निमित्ततै महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनते टूटै है,शीत उष्णकरि सूकि जाय है,जल न मिलै सूकि जाय है,अगनिकरि बलै है,ताका कोऊ छेदै है, भेदै है,मसलै है, खाय है,तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसै ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषै अवस्था हो है। तिन अवस्थाको होते वे महादु.खी हो है। जैसै मनुष्यके शरीर विषै ऐसी अवस्था भए दु.ख हो है तैसै ही उनके हो है। जातै इनका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतै हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उनको जानि मोहके वशतै महाव्याकुल हो है परन्तु भागनेकी वा लरने की वा पुकारनेकी शक्ति नाही तातै अज्ञानी लोक उनके दु.खको जानते नाही। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होय सो वह बलवान् होता नाही। बहुरि आयुकर्मतै इन एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त है तिनके तो पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवे भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयुकर्म थोरा तातै जन्ममरण हुवाही करै,ताकरि दु.खी हैं; बहुरि नामकर्मविषै तिर्यंच

गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपने पाइएहै। कोईहीनपुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाही तातै तिनकरिभी मोहके वशतै दुःखी हो है। बहुरि गोत्रकर्मविषै नीचगोत्रही का उदय है तातै महतता होय नाही तातै भी दुःखी ही है। ऐसैं एकेन्द्रिय जीव महा-दुःखी हैं अर इस ससारविषै जैसे पाषाण आधारविषै तो बहुत काल रहै है, निराधार आकाशविषै तो कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसैं जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषै बहुतकाल रहैहै अन्य पर्यायविषैं तो कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातै यहु जीव समारविषै महादुःखी है।

दो इन्द्रियादिक जीवो के दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असज्ञीपचेन्द्रिय पर्यायनिको जीव धरै तहाँ भी एकेन्द्रियवत् दुःख जानना। विशेष इतना—इहाँ क्रमतै एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछु शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट होती नाही। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बडे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट हो है। तातै ते जीव विषयनिका उपाय करैं हैं, दुःख दूर होनेका उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना, मारना, लरना छलकरना, अन्नादिका सग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करैं हैं। गभदुःखकरि तडभडाट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करैं हैं। तातैं कार्यतनका दुःख किछु प्रगट भी हो है। सो लट कीडी आदि जीवन कै शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतै वा भूख तृषा आदितै परम दुःख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लेना। इहाँ विशेष

कहा लिखै। ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादु.खी हो जानने।

नरकगति के दुःख

बहुरि सञ्ज्ञीपचेन्द्रियनिविषै नारकी जीव है ते तो सर्व प्रकार घने दु.खी है। ज्ञानादिकी शक्ति किछु है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातै तिस शक्तिके होने करि भी घने दु.खी है,बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है, जातै उनके कृष्णादि अशुभलेश्या ही है। तहा क्रोध मानकरि परस्पर दु.ख देनेका निरन्तर काय पाइए है। जो परस्पर मित्रता करै तो यह दुःख मिट जाय। अर अन्यको दु.ख दिए किछु उनका कार्य भी होता नाही परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दु.खदेनेहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यको दु.खदायक शरीर के अग बनावै वा शस्त्रादि बनावै, तिनकरि अन्यको आप पीडै अर आपको कोई और पीडै, कदाचित् कषाय उपशात होय नाही। बहुरि माया लोभ की भी अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाही। तातै तिन कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाही तिनकरि अतरगविषै महादु.खी है। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय है परन्तु बाह्य निमित्त नाही तातै प्रगटे होते नाही, कदाचित् किंचित् किसी कारणतै हो है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्य कारण बनि रहे है, तातै ए कषाय तीव्र प्रगट होय हैं। बहुरि वेदनिविषै नपुसक वेद है सो इच्छा तो बहुत और स्त्री पुरुषसो रमनेका निमित्त नाही, तातै महापीड़ित है। ऐसै कषायनिकरि अति दु.खी हैं। बहुरि वेदनीय विषै

असाताहीका उदय है ताकरि तहा अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषै कोढ कास श्वासादि अनेकरोग युगपत् पाइए हैं अर क्षुधातृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहाकी माटीहीका भोजन मिलै है सो माटीभी ऐसी है जो इहा आवै तो ताका दुर्गंधतै केई कोसनिके मनुष्य मरि जाय। अर शीत उष्ण तहा ऐसी है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ सो भी तिनकरि भस्म होय जाय। कही शीत है, कही उष्ण है। बहुरि तहां पृथ्वी शस्त्रनितै भी महातीक्ष्ण कटकनि कर सहित है। बहुरि तिस पृथ्वीविषै वन है सो शस्त्रकी धारा समान पत्रादि सहित है। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खड खड होइ जाय ऐसे जल सहितहै। पवन ऐसा प्रचड है जाकरि शरीर दग्ध हुवा जाय है। बहुरि नारकी नारकीको अनेक प्रकार पीडै, घाणीमे पेलै, खड खड करै, हाडोमे राधै, कोरडा मारैं, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावै इत्यादि वेदना उपजावै। तीसरी पृथिवी पर्यंत असुरकुमारदेव जाय ते आप पीडा दे वा परस्पर लडावै। ऐसी वेदना होते भी शरीर छूटै नाही, परावत् खड खड होई जाय तो भी मिल जाय, ऐसी महा पीडा है। बहुरि साताका निमित्त तो किछु है नाही। कोई अश कदाचित् कोईकै अपनी मानतै कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाही। बहुरि आयु तहा बहुत, जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट ...र सागर। इतने काल ऐसे दु ख तहाँ सहने होय। बहुरि नामकर्मको गर्भक ...प्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाही, तिन काल ...र महादु.खी है। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकारि ह ...हतता न होइ तातै दु खी ही है; ऐसै नरकगतिविषै महादु.ख जानने।

तिर्यंच गतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव है तिनका तो उश्वासके अठारवे भाग मात्र आयु है । बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव है सो इनकी शक्ति प्रगट भासै नाही । तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना । ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना । बहुरि बडे पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन है, केई गर्भज है। तिनविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है, सो विषयनिकी इच्छाकरि आकुलित है। बहुतका तो इष्टविषयकी प्राप्ति नाही है, काहूको कदाचित् किंचित् हो है । बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्त्व श्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपने तीव्र ही पाइए है । क्रोध मानकरि परस्पर लरै है, भक्षण करै है, दुःखदेय है, माया लोभकरि छल करै है, वस्तुको चाहै है, हास्यादिककरि तिन कषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्तै हैं। बहुरि काहूकै कदाचित मंदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातै मुख्यता नाही। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीडा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुतभारवहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातै बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिके हो है, मुख्यता नाही। बहुरिआयु अन्तर्मुहूर्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहा घने जीव स्तोक आयुके धारक है तातै जन्म मरनका दुःख पावै हैं । बहुरि भोगभूमियोकी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मकी मुख्यपने तो तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिका

उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्य प्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि गोत्रविषै नीच गोत्रहीका उदय है तातै हीन होय रहे हैं। ऐसे तिर्यचगतिविषै महादुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तौ लब्धि अपर्याप्त है ते सम्मूर्छन ही है, तिनकी तो आयु उश्वासके अठारवे भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भमे आय थोरे ही कालमे मरन पावे है, तिनकी तो शक्ति प्रगट भासै नाही है। तिनके दुःख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमें रहना पीछे बाह्य निकसना हो है। सो तिनका दुःखका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वं वर्णन किया है तैसें जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवं है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसें जानना। विशेष यहु है,इहा कोइ शक्ति विशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुःख प्रत्यक्ष भासै है। जैसै विष्टाविषै लट उपजै तैसे गर्भमे शुक्र शोणितका बिन्दुको अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछें तहा क्रमतै ज्ञानादिककी वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है। सकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहा काल पूरण करै। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामे महा दुःख हो है। कोऊ कहै—बाल्यावस्थामें दुःख थोरा है सो नाही है। शक्ति

थोरी है तातै व्यक्त न होय सक है। पीछै व्यापारादि वा विपयइच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछै वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाय तब परमदुःखी हो है। सो ए दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए है। हम बहुत कहा कहै। प्रत्यक्ष जाको न भासै सो कह्या कैसे सुनै। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए बिना होय नाही। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं। एक मनुष्य पर्यायविषै कोई अपना भला होनेका उपाय करै तो होय सकै है। जैसे काना साँठा * की जड वा बाड ×तो चूसने योग्य नाही अर बीचकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाही। कोई स्वादका लोभी वाकू बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको बोइ दे तो वाके बहुत साठे होइ, तिनका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसे मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तो सुख भोगने योग्य नाही अर बीचकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहां सुख होइ सकै नाही। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारै तो बिगारो। अर जो वाको धर्मसाधनविषै लगावै तो बहुत ऊचे पदको पावै। तहा सुख बहुत निराकुल पाइए। तातै इहां अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषै ज्ञानादिककी शक्ति किछु औरनितै विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे है। बहुरि तिनकै कषाय किछु

* गन्ना × गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मद है, तहा भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मन्द नाही अर उपयोग तिनका चचल बहुत अर किछु शक्ति भीहै सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तै है । कोतूहल विषयादि कार्यनिविषै लगि रहे है सो तिस आकुलताकर दु खी है । बहुरि वमानिकनिकै ऊपरि-ऊपरि विशेष मद कषाय हे अर शक्ति विशेष है तातै आकुलता घटनेतै दु ख भी घटता है। इहा देवनिके क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है । तातै तिनके कार्य को गौणता है । काहूका बुरा करना वा काहूको हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तो कोतूहलादिकार होइ है अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है,मुख्यता नाही । बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए हैं ताते तिनके कार्य की मुख्यता है । तातै छल करना विषयसामग्रीको चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है । सो भी ऊँचे ऊँचे देवनिकै घाटि*है । बहुरि हास्य रतिकषायके कारन घने पाइए है ताते इनके कार्यनिकी मुख्यता है । बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनके कारण थोरे है ताते तिनके कार्यनिकी गोणता है । बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै है । ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द है । अहमिद्रनिके वेदनिकी मदताकरि कामसेवनका अभाव है । ऐसै देवनिकै कषायभाव है सो कषायहीतै दु.ख है । अर इनके कषाय जेता थोरा है तितना दु.ख भी थोरा है तातै औरनिकी अपेक्षा इनको सुखी कहिए है । परमार्थतै कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही है । बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है । तहा भवनत्रिकक थोरा है । वैमानिकनिकै

---

* कम है ।

ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्था स्त्रीमदिरादि सामग्री का सयाग पाइए हे। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारण करि हो है। तहा निकृष्टदेवनिकै किछु प्रगट भी है अर उत्कृष्ट देवनिके विशेष प्रगट नाही है। बहुरि आयु बडी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस मागर है। अर ३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होता नाही। सो इतना काल विषय सुखमे मगन रहै है। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है तातै सुखका कारण है। अर गोत्र विषै उच्च गोत्रहीका उदय है तातै महतपदको प्राप्त है। ऐसै इनके पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है, तातै तिनके भोगनेविषै आसक्त होय रहे है परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातै सुखी होते नाही। ऊँचे देवनिके उत्कृष्ट पुण्य का उदय है कषाय बहुत मद है तथापि तिनकै भी इच्छाका अभाव होता नाही तातै परमार्थतै दुःखी ही है। ऐसै सर्वत्र ससारविषै दुःख ही दुःख पाइए है। ऐसै पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होते हो है। सोई ससारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तो इच्छा विषय ग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसे वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तको जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहाँ अन्य किछु पीडा नाहीं परन्तु यावत् देखै जानै नाही तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका

नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीडा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छा का नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतैं शरीरविषै या बाह्य अनिष्ट कारण मिलै तब उनके दूरि करनेकी हो है। जैसे रोग पीडा क्षुधा आदिका संयोग भए उनके दूरकरनेकी इच्छाहो है सो इहाँ यहु ही पीडा मानै है। यावत वह दूरि न होइ तावत् महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसे इन तीन प्रकारकी इच्छा होते सर्व ही दुःख मानै है सो दुःख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततै बनै है सो इन तीन प्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा ही है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषे एक एक प्रकारकी इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकारका इच्छा पूरण करनेका कारण पुण्यउदयतै मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइसकै नाहीं। तातै एकको छोरि अन्यको लागै,आगै भी बाको छोरि अन्यको लागै। जैसे काहूकै अनेक सामग्री मिली है, वह काहूका देखै है, वाको छोरि राग सुनै है,वाको छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय,वाको छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषै ही एकको देखि अन्यको देखै है। ऐसे ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्ति विषै इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याको जगत सुख मानै है सो सुख है नाहीं, दुःख ही है। काहेतैं—प्रथम तो सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनै। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनै तो युगपत् तिन

का साधनन होय। सो एकका साधन यावत् न होय तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भए उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होय। एक समयभी निराकुल न रहै, तातैं दु:ख ही है। अथवा तीन प्रकारके इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दु:ख घाटि हो है, सर्व दु:खका तो नाश न होइ तातैं दु:ख ही है। ऐसे संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दु:ख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना तीनप्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीडित है अर चौथी इच्छा तो पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बंध धर्मानुरागतै होइ सो धर्मानुराग विषैं जीव थोरा लागैं। जीव तो बहुत पाप क्रियानिविषै ही प्रवर्तें है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषैही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तो चौथी इच्छावालाकै किछु तीन प्रकार इच्छाके घटनेतैं सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतेभी दु:खीहो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तो वह बहुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान् है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है, ताकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है तो वह थोडा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तो वह जीव घना आकुलतावान् है। तातैं सुखी दु:खी होना इच्छाके अनुसार जानना, बाह्य कारणके आधीन नाहीं है। नारकी दु:खी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए

है। तातै नारकीनिकै तीव्रकषायतै इच्छा बहुत है। देवनिकै मन्द कषायतै इच्छा थोरी है। बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुःखी इच्छा हीकी अपेक्षा जानने। तीव्र कषायतै जाकै इच्छा बहुत ताको दुःखी कहिए है। मंद कषायतै जाकै इच्छा थोरी ताको सुखी कहिए है। परमार्थतै घना वा थोरा दुःखही है, सुख नाही है, देवादिककै भी सुख मानिए है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातै आकुलित हैं। या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयमतै हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलतामयहै अर आकुलता है सोदुःख है। ऐसै सर्वजीव संसारी नानाप्रकारके दुःखनिकरि पीडित ही होइ रहेहै।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिको दुखतै छूटना होय सो इच्छा दूर करनेका उपाय करो। बहुरि इच्छा दूर तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातै इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करते जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेताही दुःखदूर होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतै सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, साचा सुख प्रगटै। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका अभाव होय तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञानदर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होय। अनंतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होय। बहुरि केतेक काल पीछै अघाति कर्मनिकाभी अभाव होय, तब इच्छाके बाह्य कारण तिनका भी अभाव होय। मोह गए पीछै एक समय मात्र भी किछु इच्छा उपजावनेको समर्थ थे नाही, मोह होते कारण थे तातै कारण कहे

हैं सो इनका भी अभाव भया तब सिद्धपदको प्राप्त हो है। तहाँ दुःखका वा दु.खके कारणनिका सर्वथा अभाव होनेते सदा काल अनौपम्य अखडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहे है। सोई दिखाइए है—

सिद्ध अवस्थामे दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होते वा उदय होते मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था सो अब मोहका अभावत इच्छाका भी अभाव भया। तातै दु खका अभाव भया है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतै सर्व इन्द्रियनिको सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातै दु खका कारण भी दूर भया है सोई दिखाइए है—जैसे नेत्रकरि एक विषयको देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिको युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाही, जाके देखनेकी इच्छा उपजै। ऐसै ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषयको ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व स्पर्श रस गध शब्दनिको युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाही, जाके ग्रहण की इच्छा उपजै।

इहा कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसे होइ ?

ताका समाधान – इन्द्रियज्ञान होते तो द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिनाही इन्द्रिय ग्रहण हो है। इहाँ कोऊ कहै, जैसे मनकरि स्पर्शादिकको जानिए है तैसे जानना होता होगा। त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसे न होता होगा। सो ऐसैं नाही है। मनकरि तो स्मरणादि होते अस्पष्ट जानना किछु हो है। इहाँ तो स्पर्शरसादिकको जैसे त्वचा जीभ इत्यादि करि

स्पर्शै स्वादै सूंघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतै भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिनकै हो है। विशेष इतना भया है—वहाँ इन्द्रिय विषयका सयोग होते ही जानना होता था, इहा दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछु अतीत अनागतको वा अव्यक्तको जान्या चाहे था, अब सर्वही अनादितै अनतकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनको युगपत् जानै है। कोऊ बिना जान्या रह्या नाही, जाके जाननेका इच्छा उपजै। ऐसै इन दु ख और दु खनिके कारण तिनका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयत मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनका सर्वथा अभाव भया ताते दु खका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव भया ताते दु.खके कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है।

सब तत्व यथार्थ प्रतिभासै, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसै होइ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाही, निदक स्वयमेव अनिष्ट पावै ही है, आप क्रोध कौनसो करै? सिद्धनित ऊँचा कोई है नाही। इन्द्रादिक आपहीतै नमै है, इष्ट पावै है तो कोनसो मान करै? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाही, काहूसो प्रयोजन रह्या नाही, काहेका लोभ करै? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाही, कौन कारणतं हास्य होइ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाही, इहाँ कहा रति करै? कोऊ दु खदायक सयोग रह्या नाही, कहा अरति करै? कोऊ इष्ट अनिष्ट सयोग वियोग होता नाही, काहेको शोक करै? कोऊ अनिष्ट करनेवाला कारण रह्या नाही, कौनका भय करै? सर्ववस्तु अपने स्वभाव लिए भासै, आपको अनिष्ट

नाही, कहा जुगुप्सा करै ? काम पीडा दूर होनेतै स्त्री पुरुष उभयसो रमनेका किछु प्रयोजन रह्या नाही, काहेको पुरुष स्त्री नपु सकवेद रूप भाव होई ? ऐसे मोह उपजनेके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतै शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी, अब ताका अभाव भया, तातै दु खका अभाव भया। बहुरि अनत शक्ति प्रगट भई, तातै दु खके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तो करते नाही, इनकी शक्ति कैसै प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाही तब उपचार काहेको करै। तातै इन कार्यनिका सद्भाव तो नाही। अर इनका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातै शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसे कोऊ नाही गमन किया चाहै ताको काहूनै रोक्या था तब दु खी था। जब वाकै रोकना दूर भया अर जिस कार्यके अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करते भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसे ही इहाँ जानना। बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनतवीर्य प्रगट उनके पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतै पाप प्रकृतिनिका उदय होते दु ख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होते सुख मानै था, परमार्थतै आकुलताकरि सर्व दु ख ही था। अब मोहके नाशतै सर्व आकुलता दूर होनेतै सर्व दुःखका नाश भया। बहुरि जिन कारणनिकरि दु ख मानै था, ते तो कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनकरि किंचित् दु ख दूर होनेतै सुख मानै था, सो अब मूलहीमे दु ख रह्या नाही। तातै तिन दु:खके उपचारनिका किछु

प्रयोजन रह्या नाही, जो तिनकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होय रही है। इसहीका विशेष दिखाइये हैं—

बेदनीय विषै असाताका उदयतै दु:खके कारण शरीर विषै रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाही तब कहा होय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाको कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन को कारण होय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था सो अब इनके अनिष्ट रह्या ही नाही। ऐसै दु खका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतै किंचित् दु ख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनका प्रयोजन रह्या नाही। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाही, तातै बाह्य भी मित्रादिकको इष्ट मानने का प्रयोजन रह्या नाही। इन करि दु ख मेटया चाहै था वा इष्ट किया चाहै था सो अब सम्पूर्ण दु ख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततै मरण जीवन था तहा मरणकरि दु ख मानै था सो अबिनाशी पद पाया, तातै दु खका कारण रह्या नाही। बहुरि द्रव्य प्राणनिको धरे कितेक काल जीवनतै सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दु:खकी विशेषताकरि तहा जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है अर तहा दु ख का लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतै अशुभ गति जाति आदि होते दु ख मानै था सो अब तिन सबनिका अभाव भया, दु:ख कहातै होय? अर शुभगति जाति आदि होते किंचित् दु ख दूर होनेतै सुख मानै था, सो अब तिन बिना ही सर्व दु:ख का नाश अर सर्व सुख का प्रकाश पाईए है। तातै तिनका भी किछु प्रयोजन

रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततै नीचकुल पाए दुःख मानै था सो ताका अभाव होने तै दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदको प्राप्त है, या प्रकार सिद्धनिकै सर्वकर्मके नाश होनेतै सर्व दुःख का नाश भया है।

दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होय। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातै निराकुल होय सर्व दुःख रहित अनन्त सुखको अनुभवै है, जातै निराकुलपना ही सुख का लक्षण है। संसारविषै भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहां सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसे न मानिए? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतै सिद्ध पद पाए सर्व दुःख का अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहाँ उपदेश दीजिए है—हे भव्य! हे भाई! जो तोकूं संसारके दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीतै है कि नाहीं सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसे ही हैं कि नाहीं सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं सो विचारि। जो तेरे प्रतीति जैसे कही है तैसे ही आवै है तो तू संसारतै छूटि सिद्धपद पावने का हम उपाय कहै है सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥

चौथा अधिकार

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव।
तिनकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ॥१॥

अब इहां संसार दुःखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है तिनका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए हैं। जैसे वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगीकुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसे इहाँ संसारके कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तो संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसार रहित होय। तातै मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है—

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितै कर्मसम्बन्धसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतै भया जो अतत्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातै तद्भाव जो श्रद्धान करनेयोग्य अर्थ है ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्व है। तत्व नाही ताका नाम अतत्व है। अर जो अतत्व है सो असत्य है, तातै इसहीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसै ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है। इहाँ श्रद्धानहीका नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहां प्रकरणके वशतै इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसै ही सर्वार्थसिद्धि नाम

सूत्रको टीकाविषै कह्या है। जातै सामान्यअवलोकन ससारमोक्षको कारण होई नाही। श्रद्धान ही ससार मोक्षको कारण है, तातै ससार मोक्षका कारणविषै दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्या-रूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताकानाम मिथ्यादर्शन है। जैसे वस्तुका स्वरूप नाही तैसै मानना, जैसं है तैसं न मानना ऐसा विपरीताभि-निवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताको लिए मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न— जो केवलज्ञान बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासै नाही अर यथार्थ भासे बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ, तातै मिथ्यादर्शनका त्याग कैसै बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै ? यहु तो सत्य है। परन्तु जैसै कोऊ पुरुष है सो जिनसे प्रयोजन नाही, तिनको अन्यथा जाने वा यथार्थ जाने बहुरि जैसे जानै तैसे ही मानै, किछु वाका बिगार सुधार है नाही, तातै बाउला स्याना नाम पावै नाही। बहुरि जिनसो प्रयोजन पाइए है, तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसै ही मानै तो बिगार होई तातै वाको बाउला कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसै ही मानै तो सुधार होई तातै वाको स्याना कहिए। तैसै ही जीव है सो जिनस्यो प्रयोजन नाही, तिनको अन्यथा जानो वा यथार्थ जानो बहुरि जैसै जानै तैसै श्रद्धान करै, किछु याका बिगार सुधार नाही तातै मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाही। बहुरि जिनस्यो प्रयोजन पाइए है तिनको जो अन्यथा जानै अर तैसै

ही श्रद्धान करै तो बिगार होइ तातै याकौ मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो सुधार होइ तातै याको सम्यग्दृष्टि कहिए। इहाँ इतना जानना कि अप्रयोजनभूत या प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामे ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तो ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहा प्रयोजनभूत पदार्थनिको अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछु और भी बिगार सुधार हो है। तातै याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहाँ कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातै ज्ञानावरणही के अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहा दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसे भासै ?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो सर्व सज्ञी पचेन्द्रियनिकै भया है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अग पर्यंत पढै वा ग्रैवेयकके देव अवधि ज्ञानादियुक्त है तिनकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होते भी प्रयोजनभूत जीवादिका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होते भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातै जानिए है ज्ञानवरणहीके अनुसारि श्रद्धान नाही। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याके उदयतै जीवक मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहां कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन कौन हैं?

ताका समाधान- इस जीवके प्रयोजन तो एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछु भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुःख न होना सुख का होना एक ही है, जातै दुःख का अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसे ? सो कहिए है।

प्रथम तो दुःख दूर करने विषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाही होय तो आपको पहिचाने बिना अपना दुःख कैसे दूरि करै। अथवा आपापरको एक जानि अपना दुःख दूर करनेकै अर्थि परका उपचार करै तो अपना दुःख दूर कैसे होइ ? अथवा आपतै पर भिन्न अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातै दुःख ही होय। आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूर हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातै आप जीव है, शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिककरि जीव अजीव की पहिचान होइ तो आपापरको भिन्नपनो भासै। तातै जीव अजीवको जानना अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतै दुःख होता था तिनका यथार्थ ज्ञान होनेतै दुःख दूरि होइ तातै जीव अजीवको जानना। बहुरि दुःखका कारन तो कर्मबन्धन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनको न पहिचानै, इनको दुःख का मूलकारन न जानै तो इनका अभाव कैसे करै ? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबन्धन होइ, तातै दुःख ही होय। अथवा

मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो दु खमय हैं । सो इनको जैसेके तैसे न जानै तो इनका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै तातै आस्रवको जानना। बहुरि समस्त दु.खका कारण कर्मबन्धन है सो याको न जानै तब यातै मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताके निमित्ततै दुःखी होइ तातै बधको जानना । बहुरि आश्रवका अभाव करना सो सवर है, याका स्वरूप न जानै तो या विषै न प्रवर्तै तब आस्रव ही रहै तातै वर्तमान या आगामी दु ख ही होइ तातै सवरको जानना । बहुरि कथचित् किंचित् कर्मबधका अभाव ताकानाम निर्जरा है सो याको न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बधही रहै तातै दु ख ही होइ तातै निर्जराको जानना। बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबधका अभाव होमा ताका नाम मोक्ष है। सो याको न पहिचानै तो याका उपाय न करे, तब ससारविषै कर्मबधतै निपजे दुःखनिहीको सहै तातै मोक्षको जानना। ऐसैं जीवादि सप्त तत्त्व जानने। बहुरि शास्त्रादिक करि कदाचित् तिनको जानै अर ऐसैं ही है ऐसी प्रतीति न आई तो जाने कहा होय तातै तिनका श्रद्धान करना कार्यकारी है । ऐसे जीवादि तत्त्वानका सत्यश्रद्धान किएही दु.ख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है। तातै जीवादिक पदार्थ है ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातै सामान्यतै विशेष बलबान् है। ऐसैं ये पदार्थ तो प्रयोजनभूत है तातै इनका यथार्थ श्रद्धान किए तो दु.ख न होय, सुख होय अर इनको यथार्थ श्रद्धान किए बिना दु खहो है, सुखन हो है। बहुरि इन बिना अन्य पदार्थ है, ते अप्रयोजनभूत है । जातै तिनको

यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखको कारण नाही।

इहाँ प्रश्न उपजै है, जो पूर्वं जीव अजीव पदार्थ कहे तिनविषै तो सर्व पदार्थ आय गए, तिन बिना अन्य पदार्थ कौन रहे जिनकों अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तो सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं परन्तु तिन जीव अजोवनिके विशेष बहुत हैं। तिन विषै जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातै सुख उपजै, अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होई रागादिक दूर करनेका श्रद्धान न होइ, तातै दुःख उपजै, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ तो प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकको यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाही तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजोव पदार्थ अप्रयोजनभून जानने। जैसे जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिको वा घटादिकी अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसेंही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब ससारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसे पाइए है सो कहिए हैं। इहाँ वर्णन तो श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायको छोरै, नवीन पर्याय धरै। बहुरि वह पर्याय है सो एक तो आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनका एक पिंड बधानरूप है। बहुरि जीवकै तिस पर्यायविषै यह मै हू, ऐसै अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तो ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव है तिन सबनिको अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे है, ऐसै मम बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताकी ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिन सबनिको अपनी अवस्था मानै है। ए मेरी अवस्था है, ऐसै मम बुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातै जो क्रिया हो है ताको अपनी मानै है। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है, ताकी प्रवृत्तिको निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय है। यहु तिनको एक मान ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मै स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसै मानै है। मनोवर्गणारूप आठ पाँखुडीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टिगम्य नाही ऐसा है सो शरीरका अंग है, ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनको अर ज्ञानको एक मानि ऐसै मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकों जैसे बोलना बनै हलावै, तब

एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतै शरीरके अग भी हालै, ताके निमित्ततै भाषा वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमै। यहु सबको एक मानि ऐसै मानै जो मैं बोलू हू। बहुरि अपने गमनादि क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिको जैसै कार्य बनै तैसै हलावै, तब एक क्षेत्रावगाहतै शरीरके अग हालै तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालै, यहु सबको एक मानि ऐसै मानै, मैं गमनादि कार्य करूँ हू वा वस्तु ग्रहू हूँ वा मै किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताके अनुसार चेष्टा होइ जाय। जसै क्रोधादिक भए रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भए प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय, पुरुष वेदादि भए लिगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबको एक मानि ऐसा मानै कि ए सर्व कार्य मै करू हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततै मोहभावकरि आप सुखदु.ख मानै। इन सबनिको एक जानि शीतादिकको वा सुख दु.ख को अपने ही भए मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कध का खडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अगहीना-दिक होय अर ताके अनुसार अपने प्रदेशनिका सकोच विस्तार होय। यहु सबको एक मानि मै स्थूल हूँ, मै कृश हूँ, मै बालक हूँ, मै वृद्ध हूँ, मेरे इन अगनिका भग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनको अपने मानि मै मनुष्य हू, मै तिर्यच हूँ, मै क्षत्रिय हूँ, मै वैश्य हू इत्यादिरूप मानै है। बहुरि

शरीर सयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय, तिनको अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या,मैं मरूंगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीरही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यो नाता मानै है। जिनकरि शरीर निपज्या-तिनको अपने माता पिता मानै है। जो शरीरको रमावै ताको अपनी रमनी मानै है। जो शरोरकरि निपज्या ताको अपना पुत्र मानै है। जो शरीरको उपकारी ताको मित्र मानै है। जो शरीर का बुरा करै ताको शत्रु मानै है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस प्रकारकरि आप अर शरीरको एक ही मानै है। इन्द्रादिक का नाम तो इहा कह्या है। याको तो किछू गम्य नाही। अचेत हुआ पर्यायविषै अहबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है ? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितै इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तो भासै नाही अर शरीर मूर्तीक है सोही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहबुद्धि धारै ही धारै सो आप जुदा न भास्या तब तिनका समुदायरूप पर्यायविषै ही अहबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाही। बहुरि जिस विचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तै होइ सकै नाही तातै पर्याय ही विषै अहबुद्धि पाइए है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्य सामग्रीका संयोग होतें तिन को भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी घोडे, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतै भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाही, ऐसे आपकों भासै तो भी तिन विषै ममकार करै है। पुत्रादिकविषै ए है सो मैं ही हूँ, ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्या-

दर्शनतैं शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही भासै है। अनित्यको नित्य मानै, भिन्नको अभिन्न मानै, दुख के कारणको सुखका कारण मानै, दुःखको सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसै जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकै माहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनको अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितै भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनको एक मानै है। जातै इनका आधारभूत तो एक आत्मा अर इनका परिणमन एकै काल होइ, तातै याको भिन्नपनो न भासै अर भिन्नपनो भासनेका कारण जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाही। बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिए हैं, तातै वर्तमान दुखमय हैं अर कर्मबधके कारण हैं, तातै आगामी दुख उपजावेगे, तिनको ऐसै न मानै है। आप भला जानि इनभावनिरूप होइ प्रवर्त्तै है। बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषायभावनितै होइ अर वृथा ही औरनिको दुख उपजावनहारे मानैहै। जैसै दुखीतो मिथ्यात्वश्रद्धानतै होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्त्तै ताको दुखदायक मानै। बहुरि दुखी तो क्रोधतै हो है। अर जासो क्रोध किया होय ताको दुखदायक मानै। दुखी तो लोभतै होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिको दुखदायक मानै, ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि इन भावनिका जैसा फल लागै तैसा न भासै है। इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दताकरि स्वर्गादिक होहै। तहा घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाही, तातै बुरे न लागै हैं। कारण कहा

है— ए आपके किए भासैं तिनकों बुरे कैसे मानै ? बहुरि ऐसें ही आस्रव तत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इन आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनका उदय होते ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुख-दुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजाति शरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषै मूल कारन कर्म है। ताको तो पहिचानै नाहीं, जातै यहु सूक्ष्म है, याको सूझता नाहीं। अर वह आपको इन कार्यनिका कर्ता दीसै नाहीं, तातै इनके होनेविषै कै तो आपको कर्त्ता मानै, कै काहू औरको कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तो गहलरूप होई भवितव्य मानै। ऐसै ही बंधतत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवको यथार्थ न पहिचानै, ताकै संवरका यथार्थश्रद्धान कैसे होइ? जैसे काहूकै अहित आचरण है, वाकों वह अहित न भासै तो ताके अभावको हितरूप कैसे मानै? तैसे ही जीवकै आस्रव की प्रवृति है। याको यहु अहित न भासै तो ताके अभावरूप संवरको कैसे हित मानै। बहुरि अनादितै इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातै संवर का होना भासै नाहीं। संवर होते सुख हो है सो भासै नाहीं। संवरतै आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातै आस्रवका तो संवर करै नाहीं अर तिन अन्य पदार्थनिकों दुःखदायक मानै है। तिनहीके न होने का उपाय किया करै है सो वे

अपने आधीन नाही, वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसे संवर तत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि बंधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है। जो बंधको यथार्थ न पहिचानै, ताके निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसे होय? जैसे भक्षण किया हुवा विष आदिकतै दु:ख होता न जानै तो ताके उषाळ*का उपायको कैसे भला जानै। तैसे बंधनरूप किए कर्मनितै दु:ख होता न जानै तो तिनकी निर्जराका उपायको कैसे भला जानै। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितै सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनका तो ज्ञान होता नाही। बहुरि तिनविषै दु:खकू कारणभूत शक्ति है ताका ज्ञान नाही। तातै अन्य पदार्थनिहीके निमित्तको दु:खदायक जानि तिनके ही अभाव करनेका उपाय करै है सो वे अपने आधीन नाही। बहुरि कदाचित दु:ख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसार बनै है। तातै तिनका उपायकरि वृथा ही खेद करै है। ऐसे निर्जरातत्वका अयथार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि सर्व कर्मबंधका अभाव ताका नाम मोक्ष है। जो बंधको वा बंधजनित सर्व दु:खनिको नाही पहिचानै, ताके मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसे होइ। जैसे काहूकै रोग है, वह रोगको वा रोग-जनित दु:खनिको न जानै तो सर्वथा रोगके अभावको कैसे भला जानै? तैसे याकै कर्मबंधन है, यह तिस बंधनको वा बंधजनित दु:खको न जानै तो सर्वथा बंधके अभावको कैसे भला जानै? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तो ज्ञान नाही, तातै बाह्यपदार्थ

* नष्ट करना

निको दु:खका कारन जानि तिनके सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तो जानै,सर्वथा दु ख दूर होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिको मिलाय सर्वथा सुखी होना सो कदाचित् होय सकै नाही । यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसै मिथ्यादर्शनतै मोक्षतत्वका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतै जीवादि सप्त तत्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनका अयथार्थ श्रद्धान करै है । बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष है । सो इन पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतै पुण्यको भला जानै है, पापको बुरा जानै है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताको भला जानै है। पापकरि इच्छाके अनुसार कार्य न बनै है, ताको बुरा जानै है सो दोनो ही आकुलताके कारण है, तातै बुरे ही है। बहुरि यहु अपनी मानितै तहाँ सुख दु ख मानै है। परमार्थतै जहाँ आकुलता है तहाँ दु ख ही है। तातै पुण्यपापके उदयको भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनको भले बुरे जानै हैं सो भी भ्रम ही है, जातै दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन है। ऐसै पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतै अयथार्थ-श्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातै याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतै रहित है तातै याहीका नाम अदर्शन है।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभत जीवादि

तत्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसे है कि ऐसे है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है जैसे 'मै आत्मा हू कि शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि ऐसें ही है,ऐसा वस्तुस्वरूपते विरुद्धता लिए एक रूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है, जैसे 'मै शरीर हूँ' ऐसा जानना। बहुरि किछु है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है जैसे 'मैं कोई हूँ' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिविषै संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिको यथार्थ जानै वा अयथार्थ जानै ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाही है। जैसे मिथ्यादृष्टि जेवरीको जेवरी जानै तो सम्यग्ज्ञान नाम न होय अर सम्यग्दृष्टि जेवरीको साप जानै तो मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहाँ प्रश्न – जो प्रत्यक्ष साँचा झूठा ज्ञानको सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे न कहिए ?

ताका समाधान—जहा जाननेहीका साँच झूठ निर्द्धार करनेही का प्रयोजन होय तहाँ तो कोई पदार्थ है ताका साँचा झूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे परोक्ष-प्रमाणका वर्णनविषै कोई पदार्थ हो है ताका साचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहाँ संसार मोक्षके कारणभूत साचा झूठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाही । तातै तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहाँ प्रयोजनभूत जीवादिक-तत्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है । इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषै मिथ्यादृष्टिका तो, सर्वजानना मिथ्याज्ञान ही कह्या अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहाँ प्रश्न—जो मिथ्यादृष्टिकै जीवादि तत्वनिका अयथार्थ जानना है ताको मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो ?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहाँ वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाही है। तातै कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदाभेद विपर्ययको उपजावै है। तहाँ जाको जानै है ताका मूल कारणको न पहिचानै। अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताका मूलवस्तु तत्वस्वरूप ताको नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताको यहु इनतै भिन्न है यहु इनतै अभिन्न है ऐसा न पहिचानै, अन्यथा भिन्न अभिन्नपनो मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसै मिथ्यादृष्टिकै जाननेविषै विपरीतता पाइए है। जैसै मतवाला माताको भार्या मानै, भार्याको माता मानै, तैसै मिथ्यादृष्टिकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसै काहू-कालविषै मतवाला माताको माता वा भार्याको भार्या भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातै वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसै मिथ्यादृष्टि काहू काल विषै किसी पदार्थको सत्य भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परन्तु तिनकरि अपना प्रयोजन तो अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टीके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहा प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतै जो मिथ्यात्वभाव होय,सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसे विषके सयोगतै भोजन भी विषरूप कहिए'तैसे मिथ्यात्वके सम्बन्धतै ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहाँ कोऊ कहै–ज्ञानावरणका निमित्त क्यो न कहो ?

ताका समाधान—ज्ञानावरणके उदयतै तो ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतै किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनविषै काहूको मिथ्याज्ञान काहूको सम्यग्ज्ञान कहिए तो दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टीकै पाइए है तातै तिन दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तो सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातै ज्ञानावरणका निमित्त बने नाही।

बहुरि इहा कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थज्ञानका कौन कारण है तिसहीको जीवादि तत्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहो ?

ताका उत्तर—जो जाननेविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तो ज्ञानावरणका उदयतै हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैहो है जैसे जेवरीको सर्प जान्या सो यथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमे हो है,तातै अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है

तातै यथार्थ जानै है। तैसे ही जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होने विषै ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसे काहू पुरुषकै क्षयोपशमतै दुखको वा सुखको कारणभूत पदार्थनिको यथार्थ जाननेकी शक्तिहोय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखको कारणभूत जो होय तिसहीको वेदै, सुखका कारणभूत पदार्थनिको न वेदै अर जो सुखका कारणभूत पदार्थको वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतें होय सकै नाही। तातै इहा दुःखको कारणभूत अर सुखको कारणभूत पदार्थ वेदनेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही, असाता साता का उदय ही कारणभूत है। तैसै ही जीवकै प्रयोजनभूत जीवादितत्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनके यथार्थ जाननै की शक्ति होय। तह जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनहीको वेदै, जानै, अप्रयोजनभूतको न जानै। जो प्रयोजनभूतको जानै तो सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होते होइ सकै नाही। तातै इहाँ प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषै ज्ञानावरणका निमित्त नाही, मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहाँ ऐसा जानना—जहा एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेको शक्ति ही न होय तहा तो ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतै भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहाँ सज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होते शक्ति होय अर न जानै तहा मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतै मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या, मोहका उदयतै भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहां प्रश्न – जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातै पहिलै मिथ्या-ज्ञान कह्यो, पीछै मिथ्यादर्शन कह्यो ?

ताका समाधान – है तो ऐसें ही, जाने बिना श्रद्धान कैसे होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी सज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततै हो है। जैसे मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थनिको जानै तो समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टिकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसेही सर्वमिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानको कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातै जहां सामान्यपने ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ तो ज्ञान कारणभूत है ताको पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताको पीछे। बहुरि जहाँ मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहा श्रद्धान कारणभूत है ताको पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताको पीछे कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—वह होय तो वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसे दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय, तातै दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसै ही ज्ञान श्रद्धानकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारणपना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शन के सयोगतै ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तो एक मिथ्यादर्शन ही ससारका कारण कहना था, मिथ्या-ज्ञान जुदा काहेको कह्या ?

ताका समाधान - ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशमसे भया यथार्थ ज्ञान तामे किछु विशेष नाही अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषै भी जाय मिलै है, जैसे नदी समुद्र मे मिलै। तातै ज्ञानविषै किछु दोष नाही परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहा लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततै अन्य ज्ञेयनिविषै तो ज्ञान लागै अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषै न लागै सो यहु ज्ञान विषै दोष भया। याको मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषै दोष भया। याको मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसै मिथ्याज्ञान का स्वरूप कह्या। इसहीको तत्वज्ञानके अभावतै अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातै याहीको कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतै कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहा अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाही, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाही, तातै याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है—अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तो रहै नाही। जिन पदार्थनिको देखै जानै तिन विषै इष्ट अनिष्टपनो मानै तातै रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावको चाहै, काहूका अभावको चाहै सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता नाही। जातैं

कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्ता हर्ता है नाही। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमैं हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसे आप चाहै तैसे ही पदार्थ परिणमैं तो अपना परिणमाया तो परिणम्या नाही। जैसै गाडा चालै है अर वाको बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याको मैं चलाऊँ हूँ। सो वह असत्य मानै है, जो वाका चलाया चालै है तो वह न चालै तब क्यो न चलावै? तैसै पदार्थ परिणमै है अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै जो याको मैं ऐसे परिणमाऊँ हूँ। सो यहु असत्य मानै है। जो याका परिणमाया परिणमैं तो वह तैसें न परिणमै तब क्यो न परिणमावै? सो जैसै आप चाहै तैसै तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् ऐसै ही बनाव बनै तब हो है, बहुत परिणमन तो आप न चाहै तैसें ही होता देखिए है। तातै यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होइ ही नाही। कषायभाव करनेतै कहा होय? केवल आप ही दुखी होय। जैसै कोऊ विवाहादि कार्य विषै जाका किछु कह्या न होय अर वह आप कर्ता होय कषाय करै तो आप ही दुखी होय तैसै जानना। तातै कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछु कार्यकारी नाही। तातै इन कषायनिकी प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने ही है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातै कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाही। कैसै? सो कहिए है।

इष्ट-अनिष्टकी मिथ्याकल्पना

आपको सुखदायक उपकारी होय ताको इष्ट कहिए। आपका दुख

दायक अनुपकारी होय ताको अनिष्ट कहिए। सो लोकमें सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्त्ता हैं। कोऊ काहूकों सुख दु:खदायक उपकारी अनुपकारी है नाही। यह जीव अपने परिणामनिविषै तिनको सुख-दायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दु:खदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट माने है। जातें एक ही पदार्थ काहूको इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागैहै। जैसें जाको वस्त्र न मिलै ताको मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाको महीन वस्त्र मिलै ताको वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिकको विष्टा इष्ट लागै है, देवादिकको अनिष्ट लागै है। काहूको मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। ऐसैं ही अन्य जानने। बहुरि याही प्रकार एक जीवको भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसैं शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट है सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए हैं,इत्यादि जानने। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिये है। जैसें गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमें इष्ट लागै है, इत्यादि जानने। ऐसें पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनो है नाही। जो पदार्थविषै इष्ट अनिष्टपनो होता तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्वको इष्ट ही होता, जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाही। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनको इष्ट अनिष्ट मानै है सो यह कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दु:खदायक अनुपकारी हो है सो आपही नाही हो है, पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है।

जाकै पुण्यका उदय होहै ताकै पदार्थनिका सयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका सयोग दुःखदायक अनुपकारी होहै सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं, काहूकै दु खदायक हैं,व्यापार किए काहूकै नफा हो है,काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो हैं,काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो है। तातै जानिए है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाही, कर्म उदयके अनुसार प्रवर्त्तै है। जैसे काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसार किसी पुरुषको इष्ट अनिष्ट उपजावै तो किछू किंकरनिका कर्त्तव्य नाही,उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकों इष्ट अनिष्ट मानै सो भूठ है। तैसे कर्मके उदयतै प्राप्तभए पदार्थ कर्मके अनुसार जीवको इष्टअनिष्ट उपजावै तो किछु पदार्थनिका कर्तव्य नाही, कमका कर्त्तव्य है। जो पदार्थको इष्ट अनिष्ट मानै सो भूठ है। तातै यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष करना मिथ्या है।

इहाँ कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका सयोग कम निमित्ततै बनै है तो कर्मनिविषै तो राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तो जड़ हैं, उनकै किछू सुख दु ख देनेकी इच्छा नाही। बहुरि वे स्वयमेव तो कर्मरूप परिणमै नाही,याके भावनिके निमित्ततै कर्मरूप हो हैं। जैसे कोऊ अपने हाथकरि भाटा(पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसे ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलको कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मके कहा दोष है। तातै कर्मस्यो भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है।

जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट हैं नाही अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातै इन परिणामनिको मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

राग-द्वेषकी प्रवृत्ति

प्रथम तो इस जीवकै पर्यायविषै अहंबुद्धि है सो आपको वा शरीर को एक जानि प्रवर्ते है। बहुरि इस शरीरविषै आपको सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपको न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तो राग करै है अर ताके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरको अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थ-निविषै तो द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै जिन बाह्य पदार्थनिसो राग करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यो द्वेष करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थ नि-विषै द्वेष करै है, तिनके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै भी जिनस्यो राग करै है तिनके कारण वा अन्य पदार्थनिविष राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यो द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्ते है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरकी अवस्थाको कारण नाही

तिन विषै भी रागद्वेष करै है। जैसे गऊ आदिके पुत्रादिकतै किछु शरीरका इष्ट होय नाहीं तथापि तहा राग करै है। जैसें कूकरा आदिकै बिलाई आदिक आवतें किछू शरीर का अनिष्ट होय नाही तथापि तहाँ द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोक-नादिकतै शरीरका इष्ट होता नाही तथापि तिनविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतै शरीरका अनिष्ट होता नाही तथापि तिनविषै द्वेष करै है। ऐसे भिन्न बाह्य पदार्थनिविषै रागद्वेष हो है। बहुरि इनविषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण अर घातक अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यो द्वेष करै है तिन के कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिन विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्त्तै है।

इहाँ प्रश्न--जो अन्य पदार्थनिविषै तो रागद्वेष करनेका प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही तो मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीरकी अवस्थाको कारण नाही, तिन पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है ?

ताका समाधान—जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिन विषै भी प्रयोजन विचार राग करै तो मिथ्याचारित्र काहेकों नाम पावै। तिनविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वष करै है अर तिनहीके अर्थि अन्यस्यो रागद्वष करै है तातै सव रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहाँ प्रश्न—जो [illegible] अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका [illegible] भासै नाही अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता [illegible] रण कहा है ?

ताका समाधान–इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतै रागद्वेषभाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकै नाही । जैसे राग होय सो कोई पदार्थ विषै होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै ही होय । ऐसै तिन पदार्थनिकै अर रागद्वेषकै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है । तहाँ विशेष इतना जो केई पदार्थ तो मुख्यपने रागकौं कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपने द्वेषको कारण हैं । केई पदार्थ काहूकों काहू काल विषै रागके कारण हो हैं, काहूको काहूकाल विषै द्वेषके कारण हो हैं । इहाँ इतना जानना–एक कार्य होने विषै अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होने विषै अतरग कारण मोहका उदय है सो तो बलवान् है अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाही है । महामुनिनिकै मोह मन्द होते बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतें भी रागद्वेष उपजते नाही । पापी जीवनिकै मोह तीव्र होते बाह्यकारण न होतें भी तिनका सकल्प ही करि रागद्वेष हो है । तातै मोहका उदय होते रागादिक हो हैं । तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा कछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है । बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेषभाव होना होय, तिस विषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है । तातैं मोहका उदयतै पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाही । ऐसैं पदार्थनि विषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि होते जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना । बहुरि इन रागद्वेषनि हीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव हैं ते सर्व इस

मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने । इनका वर्णन पूर्वै कियाही है । बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषै स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है ताते याका नाम अचारित्र भी कहिए । बहुरि यहाँ परिणाम मिटे नाही अथवा बिरक्त नाही, ताते याहीका नाम असयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जाते पाँच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषै बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषै स्वछन्दपना होय अर इनके त्यागरूप भाव न होय सोई असयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसे कार्य हो है ताते मिथ्याचारित्रका नाम असयम वा अविरति जानना । बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना । जाते हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यनिविषै प्रवृतिका नाम अव्रत है। सो इनका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है । प्रमत्तयोग है सो कषायमय है ताते मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसे मिथ्याचारित्र का स्वरूप कह्या। या प्रकार इस ससारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितै पाइए है । सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असज्ञीण्यन्त तो सर्व जीवनिकै पाइए है । बहुरि सज्ञी पचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्वजीवनिक ऐसा ही परिणमन पाइए है । परिणमनविषै जैसा जहाँ सम्भवै तैसा तहाँ जानना । जैसे एकेन्द्रियादिकक इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनके निमित्तते मिथ्यादर्शनादिका वर्णन किया है । तिसविषै जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना । बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाही हैं परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव

है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसें मैं स्पर्शनकरि स्परशू हूँ, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै हैं अर ताके भावरूप परिणमैं हैं, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लेना। ऐसें ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितै पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाही। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहाँ बिना ही सिखाए मोहके उदयतै स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्यविचार होनेके कारण मिलै तो भी सम्यक् परिणमन होय नाही। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वे बारबार समझावै, यहु कछु विचार करै नाही। बहुरि आपको भी प्रत्यक्ष भासै सो तो न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसें ? सो कहिए है–

मरण होते शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो हैं। एक शरीरको छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए हैं परन्तु याकै शरीरतै भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्री पुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिन विषै ममत्व करै है अर तिनके अर्थि नरकादिकविषै गमनको कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है, यहु तिनको अपनी मानै है, बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय ताको तो कहै मैं किया अर अन्यथा होय ताकों कहै मैं कहा करूँ ? ऐसें ही होना था वा ऐसें क्यो

भया ऐसा मानै। सो कै तो सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्ता रहना था सो विचार नाही। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाही, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहू तो कहै मैं मरूँगा शरीरको जलावेगे। कबहू कहै मोको जलावेंगे। कबहू कहै जस रह्या तो हम जीवते ही हैं। कबहू कहै पुत्रादिक रहेगे तो मै ही जीऊगा। ऐसें बाउलाकीसी नाईं वाकै किछू सावधानी नाही। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै,ताका तो इष्ट अनिष्टका किछू उपाय नाही अर इहा पुत्र पोत्रा आदि मेरी सततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या कर अर अनिष्ट न होइ,ऐसें अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछे इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि विषयकषायकी प्रवृत्तिकरि वा हिंसादि कार्यकरि आप दुःखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिन-ही विषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताको भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है ऐसें यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितै जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि ससारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइये है। एई भाव दुःखनिके बीज हैं, अन्य कोई नाही। तातै हे भव्य जो दुःखतै मुक्त भया चाहै तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना, यहु ही कार्य है, इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥४॥

पाँचवाँ अधिकार

विविध मत-समीक्षा

दोहा

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयोनिज भाव।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव॥ १॥

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि ससारविषै दुःख सहतो सतो कदाचित् मनुष्यादि पर्यायनि विषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिको पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिन मिथ्या-श्रद्धानादिकको पोषै तो तिस जीवका दुःखतै मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसै कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकों पाय कुपथ्य सेवन करै तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय। तैसै यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकों पाय विशेष विप-रीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन कर तो इस जीवका मुक्त होना कठिन हो होय। तातै जैसै वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनके सेवनको निषेधै तैसै हो इहाँ विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनका निषेध करिए है। इहा अनादितै जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए हैं ते तो अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जाते ते नवीन ग्रहण किए नाही। बहुरि तिनके पुष्ट करनेके कारण-निकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने।

तहाँ अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तो पूर्वे वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनका श्रद्धान सो तो मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनके विषै विपरोत निरूपणकरि रागादि पोषे होय ऐसे कुशास्त्र तिनविषैं श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषै कषायनिका सेवन होय अर ताको धर्म रूप अगीकार करे सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए हैं —इन्द्र लोकपाल इत्यादि, बहुरि अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि, बहुरि हनुमान, भैरू, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाडो, सतो इत्यादि, बहुरि शीतला, चौथि, साँझी, गणगोरि, होली इत्यादि, बहुरि सूर्य,चन्द्रमा, ग्रह, अऊत, पितर,व्यन्तर इत्यादि, बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि, बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि, बहुरि शस्त्र दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनको पूजै। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाही,तातै ऐसे श्रद्धानको गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहाँ तिनका अन्यथा श्रद्धान कैसे हो है सा कहिए है—

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म

अद्वैतब्रह्मको * सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानै सो कोई है नाही।

---

*"सर्वं वैखल्विद ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० ख० १४ म० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ म०११
ब्रह्मैवेदममृत पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणातपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृत ब्रह्मैवेद विश्वमिद वरिष्ठम्॥ मुण्डको०खड२,म०१

प्रथम वाकों सर्वव्यापी मानें सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष है वा तिनके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए हैं, इनकों एक कैसे मानिए है ? इनका मानना तो इन प्रकारनि करि है - एक प्रकार तो यहु है जो सर्व न्यारे न्यारे है तिनके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए। जैसे घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनके समुदायका नाम सैना है, तिनतें जुदा कोई सैना वस्तु नाही। सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरया, कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे है तिनको जाति अपेक्षा कल्पना करि एक कहिए है। जैसे सौ घोटक (घोडा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे सो ही हैं तिनके आकारदिककी समानता देखि एक जाति कहैं, सो वह जाति तिनतें जुदी ही तो कोई है नाही। सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरया, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे है तिनके मिलापतें एक स्कध होय ताको एक कहिए। जैसे जलके परमाणू न्यारे न्यारे हैं तिनका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसे पृथ्वी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहाँ समुद्रादि वा घटादिक है ते तिन परमाणूनितें भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाही। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसे मानिए तो इनतें जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो अग तो न्यारे न्यारे हैं अर

जाके अग हैं सो अंगी एक है। जैसे नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाके ए हैं सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तो अग है अर जाके ए है सो अगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अग है, ऐसैं मानिए तो मनुष्यके हस्तपादादिक अगनिकै परस्पर अनराल भए तो एकत्वपना रहता नाही। जुडे रहैं ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तो पदार्थनिकै अतराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसें मानिए ? अतराल भए भी एकत्व मानिए तो भिन्नपना कहाँ मानिएगा।

इहा कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अग हैं तिनकरि सर्व जुरि रहे है, ताकौं कहिए है—

जो अग जिस अगतै जुर्या है, तिसहीतै जुर्या रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अगनिस्यो जुर्या करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो सूर्यादि गमन करै है, तिनकी साथि जिन सूक्ष्म अगनितै वह जुरै हैं ते भी गमन करै। बहुरि उनकौ गमन करतै वे सूक्ष्म अग अन्य स्थूल अगनितै जुरे रहै, ते भी गमन करै हैं सो ऐसै सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसै शरीरका एक अग खीचे सर्व अग खीचे जाय, तैसं एक पदार्थको गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय सो भासै नाही। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो अग टूटनेतैं भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसे रह्या ? तातै सर्वलोक के एकत्वको ब्रह्म मानना कैसे सम्भवै ? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहले एक था, पीछे अनेक भया बहुरि एक होय जाय तातै एक है। जैसे जल एक था सो बासणनिमे जुदा जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय

वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो कंकण कुडलादिरूप भया बहुरि मिलकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसे ब्रह्म एक था पीछे अनेक-रूप भया बहुरि एक होयगा तातै एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है तो जब अनेक रूप भया तब जरथा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरथा कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवेगा। भिन्न भया कहेगा तो तिस काल तो एकत्व न रह्या। बहुरि जब सुवर्णादिकको भिन्न भए भी एक कहिए है सो तो एक जाति अपेक्षा कहिए है सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाही। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसे कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछे भिन्न भया मानै है तो जैसे एक पाषाणादि फूटि टुकड़े होय जाय हैं तैसे ब्रह्मके खड होय गए, बहुरि तिनका एकट्ठा होना मानै है तो तहाँ तिनका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तो तहाँ अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है अर एक होइ जाय है तो जड भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड होइ जाय। तहाँ अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषैं अनेक वस्तु, काहू कालविषै एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाही। बहुरि जो कहेगा लोक रचना होतें वा न होतें ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहै है, तातै ब्रह्म अनादि अनत है। सो हम पूछे हैं, लोकविषै पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं कि ब्रह्मही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तो ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न

* डला वा पासा

ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसाका तैसा कैसे रह्या ? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है,वाका कोई अंश हो है। ताकों कहिए है.– जैसे समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहां स्थूलदृष्टिकरि तो गम्य नाही परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिए तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसे ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया तहाँ स्थूल विचारकरि तो किछू गम्य नाही परन्तु सूक्ष्मविचार किए तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यह अन्यथापना और तो काहूकै भया नाही। ऐसै सर्वरूप ब्रह्मको मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है जैसे आकाश सर्वव्यापी एक है तैसे ब्रह्म सर्व व्यापी एक है। जो इस प्रकार मानै है तो आकाशवत् बड़ा ब्रह्मको मानि वा जहाँ घटपटादिक है तहाँ जैसे आकाश है तैसे तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसे घटपटादिकको अर आकाशको एक ही कहिए तो कैसे बनै ? तैसे लोकको अर ब्रह्मको एक मानना कैसे सम्भवै ? बहुरि आकाशका तो लक्षण सर्वत्र भासै है तातै ताका तो सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाही तातै ताका सर्वत्र सद्भाव कैसे मानिए ? ऐसें इस प्रकारकरि भी सर्वरूप ब्रह्म नाही है। ऐसै ही विचारकरते किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवै नाही। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न भासै हैं।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है तातै तुमको एक भासै नाही। बहुरि तुम युक्ति कही सो ब्रह्म का स्वरूप युक्तिगम्य नाही, वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा

भी है, मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है। ताको कहिए है—जो प्रत्यक्ष तुझको वा हमको वा सबनिको भासै, ताको तो तू भ्रम कहै अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाही। बहुरि वह कहै, साचास्वरूप वचन अगोचर है सो वचन बिना कैसे निर्णय करै ? बहुरि कहै—एक भी है, अनेक भी है; जुदा भी है, मिल्या भी है सो तिनकी अपेक्षा बतावै नाही, बाउलेकीसी नाईं ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहा न्याय न होय है तहा झूठे ऐसैं ही वाचालपना करै है सो करो, न्याय तो जैसे साच है तैसे हो होयगा।

ब्रह्म की इच्छासे जगत्की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मको लोकका कर्त्ता मानै है ताको मिथ्या दिखाइए हैं प्रथम तो ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहुस्या" कहिए मैं एक हू सो बहुत हास्यू। तहाँ पूछिए है—पूर्व अवस्थामें दु खी होय तब अन्य अवस्थाको चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्थातै बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दु ख था ? तब वह कहै है जो दु ख तो न था, ऐसा ही कोतूहल उपज्या। ताको कहिए है—जो पूर्वे थोरा सुखी होय अर कोतूहल किए घना सुखी होय सो कोतूहल करना विचारै। सो ब्रह्मकै एक अवस्थातै बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसे सम्भवै ? बहुरि जो पूर्वे ही सम्पूर्ण सुखी होय तो अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तो कोई किछू कर्त्तव्य करै नाही। बहुरि पूर्वे भी सुखी होगा, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय।

तब वह कहै है, ब्रह्मके जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातै दुःखी न हो है। तहाँ कहिए है—स्थूलकालकी अपेक्षा तो ऐसे मानो परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तो इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाही। इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातै सूक्ष्मकाल मात्र इच्छा रही तब तो दु खी भया होगा। जातै इच्छा है सो ही दु ख है, और कोई दुःखका स्वरूप है नाही। तातै ब्रह्मके इच्छा कैसै बनै ?

ब्रह्म की माया

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होतैं ब्रह्मकी माया प्रगट भई सो ब्रह्मके माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसे रह्या ? बहुरि ब्रह्मके अर मायाके दडी दडवत सयोग सम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो सयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या ? बहुरि जैसे दड दडको उपकारी जानि ग्रहै है तैसे ब्रह्म मायाको उपकारी जानै है तो ग्रहै है, नाही तो काहेको ग्रहै ? बहुरि जिस मायाकों ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसै सम्भवै, वह तो उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तो जैसै अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसै ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसैं सम्भवै ? यहु तो उत्तम भई।

बहुरि वे कहैं है कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड है सो समवाय सबधविषै ऐसे दोय स्वभाव सम्भवै नाही। जैसे प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसें सम्भवे ? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तो भ्रम रूप होता नाही, ताकी माया करि जीव भ्रमरूप हो है। ताकों कहिए

है–जैसे कपटी अपने कपटको आपजानै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रम रूप होय जाय। तहाँ कपटी तो वाही कों कहिए जानै कपट किया, ताके कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए तिनकों तो कपटी न कहिए। तैसें ब्रह्म अपनी मायाकों आप जानै सो आप तो भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहाँ मायावी तो ब्रह्म ही कों कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनको मायावी काहेको कहिए है।

बहुरि पूछिए है वे जीव ब्रह्म तै एक हैं कि न्यारे है। जो एक हैं तो जैसें कोऊ आपही अपने अगनिको पीडा उपजावै तो ताकों बाउला कहिए है तैसें ब्रह्म आप ही आपतें भिन्न नाही ऐसे अन्य जीव तिनको मायाकरि दुःखी करै है सो कैसें बनै? बहुरि जो न्यारे है तो जैसें कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिको भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसें ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि को माया उपजाय पीडा उपजावै सो भी बनै नाही। ऐसै माया ब्रह्म की कहिए है सो कैसे सम्भवै?

जीवो की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानने का निराकरण

बहुरि वे कहै है, माया होते लोक निपज्या तहाँ जीवनिकै जो चेतना है सो तो ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहाँ जैसे जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषै जल भरया है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिब जुदा जुदा पडै है, चन्द्रमा एक है। तैसें जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषै ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है, तातें जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्म की है। सो ऐसा कहना भी भ्रमही

है जातैं शरीर जड़ है, या विषै ब्रह्म का प्रतिबिंबतैं चेतनाभई तो घट पटादि जड़ हैं तिनविषै ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यो न पड्या अर चेतना क्यों न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरको तो चेतन नाही करै है,जीवको करै है। तब वाको पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतन का चेतन कहा करेगा। अचेतन है तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाको पूछिए है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तो ज्ञानका अधिकहीनपना कैसे देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानी को न जानै, वह वाकी जानी को न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधि भेदहै तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटे याकी चेतना ब्रह्म मे मिलेगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तो यहु जीव तो अचेतन रह जायेगा। अर तू कहेगा जीव ही ब्रह्म मे मिल जाय है तो तहाँ ब्रह्मविषै मिले याका अस्तित्व रहै है कि नाही रहै है। जो अस्तित्व रहै है तो यहु रह्या, याको चेतना याकै रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तो ताका नाश ही भया, ब्रह्मविषै कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहेगा–ब्रह्मकी अर जीवनिकी चेतना भिन्न है तो ब्रह्म अर सर्वजीव आपही भिन्न-भिन्न ठहरे। ऐसे जीवनि के चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसैं भी बनै नाही।

शरीराविक का मायारूप माननेका निराकरण

शरीरादि मायाके कहो हो सो माया ही हाड मासादिरूप हो है कि माया के निमित्ततै और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय तो

माया के वर्ण गधादिक पूर्वे ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वे ही थे तो पूर्वे तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्तीक है तहाँ वर्णादि कैसे सम्भवै? बहुरि जो नवीन भए तो अमूर्त्तीक का मूर्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरया। बहुरि जो कहेगा, माया के निमित्त तैं और कोई हो है तो और पदार्थ तो तू ठहरावता ही नाही, भया कौन? जो तू कहेगा, नवीन पदार्थ निपजे। तो ते मायातैं भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातैं भिन्न निपजे तो मायामयी शरीरादिक काहेको कहै, वे तो तिनपदार्थमय भए। अर अभिन्न निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेको कहै। ऐसे शरीरादिक मायास्वरूप है ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वे कहै हैं, माया तै तीन गुण निपजे—राजस १ तामस २ सात्विक ३। सो यहु भी कहना कैसे बनै? जातै मानादि कषायरूप भावको राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावको तामस कहिए है, मदकषायरूप भावको सात्विक कहिए है। सो ए तो भाव चेतनामई प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड कह्यो हो सो जड़तैं ए भाव कैसे निपजैं। जो जड़के भी होई तो पाषाणादिकके भी होता सो तो चेतनास्वरूप जीव तिनहीके ए भाव दीसै हैं। तातैं ए भाव मायातै निपजे नाही। जो मायाको चेतन ठहरावै तो यहु मानै। सो मायाको चेतन ठहराए शरीरादिक मायातैं निपजे कहेगा तो न मानेंगे तातै निर्धारकर, भ्रमरूप माने नफा कहा है?

बहुरि वे कहै हैं तिन गुणनि तै ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसे सम्भवै? जातै गुणीतै तो गुण [illegible]

[illegible] ।। [illegible] पु० अ० २५०, श्लोक २

गुणी कैसे निपजै। पुरुषतें तो क्रोध होय, क्रोधतें पुरुष कैसे निपजै। बहुरि इन गुणनिकी तो निन्दा करिए है। इनकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनको पूज्य कैसे मानिए है। बहुरि गुण तो मायामई अर इनकों ब्रह्म के अवतार [1] कहिए है सो ए तो माया के अवतार भए, इनको ब्रह्मके अवतार कैसे कहिए है? बहुरि ए गुण जिनके थोरे भी पाइए तिनकों तो छुडावने का उपदेश दीजिए अर जे इनही की मूर्ति तिनको पूज्य मानिए, यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्तव्य भी इनमई भासै है। कोतूहलादिक वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिन राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो है सो इनके राजसादिक पाइये है ऐसा कहो। इनको पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तो बनै नाही। जैसै अन्य संसारी है तैसै ए भी है। बहुरि कदाचित् तू कहेगा, संसारी तो माया के आधीन है सो बिना जाने तिन कार्यनिको करै है। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है सो ए जानते ही इन कार्यनिको करै है सो यह भी भ्रम ही है। जातै माया के आधीन भए तो काम क्रोधादिकही निपजै है और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तो काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिके

---

[1] ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियां हैं।

विष्णुपु० अ० २२-५८

कलिकाल के प्रारम्भसे परब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचनाकी। प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल (शिव) ने सृष्टिको ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुण से उत्पन्न हो। [illegible] मे शयन किया। —वायुपु० अ० ७-६८, ६९।

वशीभूत भए नृत्यगयनादि करते भए, विह्वल होते भए, नाना प्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोध के वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मान के वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, माया के वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभ के वशीभूत भए परिग्रहका सग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसे वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया अर रुन्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया,*बहुरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालो की क्रिया इत्यादि जे निद्य क्रिया तिनको तो करते भए, याते अधिक माया के वशीभूत भए कहा क्रिया हा है सो जानी न परी। जैसे कोऊ मेघपटलसहित अमावस्याकी रात्रिको अधकार रहित मानै तैसे बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिको मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै है कि इनको काम क्रोधादि व्याप्त नाही होता, यहु भी परमेश्वर की लीला है। याको कहिए है—ऐसे कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है,युद्ध करनेकी इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसै ही जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तो आप जाको न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भए ही होय सो परवशपना कैसे सम्भवै ? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर

---

* नानारूपाय मुण्डाय वरुथपृथुदण्डिने।
नम कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥ मत्स्य पु०अ०२५०, श्लोक २

अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तो अन्य जीवनिकों इन कार्यनितै छुडाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकों दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिका उपदेश सर्व झूठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरको तो किछू प्रयोजन नाही। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवातार धरै ॐ है तो याकों पूछिए है—प्रयोजन बिना चीटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेको करै। बहुरितै प्रयोजन भी कह्या, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसे कोई पुरुष आप कुचेष्टा-करि अपने पुत्रनिको सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्त्तै तब उनको मारै तो ऐसे पिताको भला कैसे कहिए तैसे ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकों प्रवृत्ति करावै। बहुरि वे लोक तैसे प्रवर्त्तै तब उनको नरकादिकविषै डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषै लिख्या है सो ऐसे प्रभुको भला कैसे मानिए? बहुरि तै यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकों दुखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भए। जो इच्छाकरि भए तो जैसे कोऊ अपने सेवकको आप ही काहू को कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालोको आप मारै सो ऐसे स्वामीकों भला कैसे कहिए। तैसे ही जो अपने भक्तको आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीडित करावै बहुरि पीछे तिन दुष्टनिकों आप

ॐ परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥ — गीता ४—८

अवतार धारि मारै तो ऐसे ईश्वर को भला कैसें मानिए ? बहुरि जो तू कहेगा कि बिना इच्छा दुष्ट भए तो कै तो परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिको दूःख देवेंगे,कै पहिलैं ऐसे शक्ति न होगी जो इनको ऐसे न होने दे। बहुरि वाकों पूछिए है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धारचा, सो कहा बिना अवतार धारे शक्ति थी कि नाही। जो थी तो अवतार काहेको धारै अर न थी तो पीछे सामर्थ्य होनेका कारण कहा भया। तब वह कहै है–ऐसैं किए बिना परमेश्वरकी महिमा प्रगट कैसे होय। याको पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तो लक्षण ससारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तो अन्य जीवनिका रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेको दीजिए। बहुरि रागद्वेषके अनुसारि कार्य करना विचारचा सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे बिना होय नाही, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यको छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यको राजा आप आय करै तो किछू राजा की महिमा होती नाही, निन्दा ही होय। तैसें जिस कार्य को राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यको परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तो किछू परमेश्वर की महिमा होती नाही, निंदा ही है। बहुरि महिमा तो कोई और होय ताको दिखाइए है। तू तो अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनको महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावनें का फल तो स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि

तू तो कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तैं हैं अर आपके स्तुति करावनेकी इच्छा है तो सबको अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेकों अन्य कार्य करना परै। तातै महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनै।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिको करता सता भी अकर्त्ता है, वाका निर्द्धार होता नाही। याको कहिए है-तू कहेगा यह मेरी माता भी है अर बाझ भी है तो तेरा कह्या कैसै मानगे। जो काय करै ताको अकर्त्ता कैसे मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाही सो निर्द्धार बिना मानि लेना ठहरया तो आकाश के फूल, गधे के सीग भी मानो, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाही। ऐसै ब्रह्मा, विष्णु महेशका होना कहै है सो मिथ्या जानना।

ब्रह्मा–विष्णु–महेशका सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक और संहारक पने का निराकरण

बहुरि वे कहै है- ब्रह्मा तो सृष्टिको उपजावे है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है सो ऐसा कहना भी न सम्भवै है। जातै इन कायनिको करते कोऊ किछू किया चाहे कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध हाय। अर जो तू कहेगा, ए तो एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेको होय। तो आप ही उपजावें, आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमे कौन फल है। जो सृष्टि आपको अनिष्ट है तो काहेको उपजाई अर इष्ट है तो काहे को क्षपाई। अर जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई,पीछे अनिष्ट लागी तब क्षपाई ऐसै है तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहरया। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है? सो बताय, बिना कारण स्वभाव

की पलटनि काहेको होय । अर द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, वाकों ऐसी काहेकों होने दीनी जो आपकों अनिष्ट लागै ।

बहुरि हम पूछै हैं—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसे उपजावै है । एक तो प्रकार यहु है— जैसै मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकट्ठी करि अकारादि बनावै है तैसै ही ब्रह्मा सामग्री एकट्ठी करि सृष्टि रचना करै है तो ए सामग्री जहाँतै ल्याय एकट्ठी करी सो ठिकाना बताय । अर एक ब्रह्माहो एतो रचना बनाई सो पहिले पीछे बनाई होगी कै अपने शरीरके हस्तादि बहुत किए होगे सो कैसे है सो बताय । जो बतावेगा तिसही मे विचार किए विरुद्ध भासैगा ।

बहुरि एक प्रकार यहु है— जैसै राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैसे ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनको दई । अर जिनको आज्ञा दई वे कहाँतै सामग्री ल्याय कैसे रचना करै है सो बताय ।

बहुरि एक प्रकार यहु है--जैसै ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै । तैसे ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है तो ब्रह्मा तो इच्छाहीका कर्त्ता भया, लोक तो स्वयमेव ही निपज्या । बहुरि इच्छा तो परमब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्माका कर्त्तव्य कहा भया जाते ब्रह्मा को सृष्टिका निपजावनहारा कह्या । बहुरि तू कहेगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं । तहाँ शक्तिहीनपना आया ।

बहुरि हम पूछें हैं—जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तो बनावनहारा तो सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषें तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए हैं, अनिष्ट घने देखिए हैं। जीवनिविषै देवादिक बनाए सो तो रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि इष्ट बनाए अर लट कीडी कूकर सूअर सिंहादिक बनाए सोकिस अर्थि बनाए। ए तो रमणीक नाही, भक्ति करते नाही। सर्व प्रकार अनिष्ट हो है। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकिनिको देखें आपको जुगुप्सा ग्लानि आदि दु ख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेको बनाए। तहाँ वह कहै है—कि जीव अपने पापकरि लट कीडी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै हैं। याकों पूछिए है कि पीछे तो पापहीका फलतें ए पर्याय भए कहो परन्तु पहिले लोकरचना करते ही इनको बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछे जीव पापरूप परिणए सो कैसे परिणए। जो आपही परिणए कहोगे तो जानिए है ब्रह्मा पहलै तो निपजाए पीछे वे याके आधीन न रहे। इस कारणतें ब्रह्माको दु ख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमै हैं तो तिनको पापरूप काहेकों परिणमाए। जीव तो आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातैं ऐसै भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषै सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए सो तो रमणेके अर्थि बनाए,कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दु खदायक बनाए मो किस अर्थि बनाए। इनका दर्शनादिकरि ब्रह्माकै किछू सुख तो नाही उपजता होगा। बहुरि तू कहेगा, पापी जीवनिकों दुःख देने के अर्थि बनाए। तो आपहीके निपजाए जीव तिनस्यों ऐसी दुष्टता काहे को करी जो तिनकों दुःखदायक सामग्री

पहले ही बनाई । बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाही अर दु:खदायक भी नाही, तिनको किस अर्थि बनाए । स्वयमेव तो जैसे तैसे ही होय अर बनावनहारा तो जो बनावै सो प्रयोजन लिए ही बनावै । तातै ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसें कहिए है ?

बहुरि विष्णुको लोकका रक्षक कहै हैं । रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै । एक तो दु:ख उपजावने के कारण न होने दे अर एक विनशने के कारण न होने दे । सो तो लोकविषै दु:खही के उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिए हैं अर तिनकरि जीवनिकों दु:ख ही देखिए है । क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं । शीत उष्णादिक करि दु:ख हो है । जीव परस्पर दु:ख उपजावै हैं, शस्त्रादि दु:ख के कारण बनि रहे हैं । बहुरि विनशनेके कारण अनेक बन रहे हैं । जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है अर अजीवनिकै भी परस्पर विनशनेके कारण देखिए है । सो ऐसै दोय प्रकारहीको रक्षा तो कीन्ही नाही तो विष्णु रक्षक होय कहा किया । वह कहै है— विष्णु रक्षक ही है । देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं । कीडीको कण कुञ्जरको मण पहुचावै है । सकटमे सहाय करै है । मरणके कारण बने टीटोडी कोसी नाईं उबारै है । इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है । याकों कहिए है–ऐसै है तो जहाँ जीवनिकै

❀ एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था । उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दु:खी होकर गरुड पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की, तो उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये । ऐसी पुराणों मे कथा है ।

क्षुधातृषादिक बहुत पीडै अर अन्न जलादिक मिलै नाही, सकट पड़े सहाय न होय किंचित कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णु की शक्ति हीन भई कि वाको ज्ञान ही न भया। लोक-बिषै बहुत तो ऐसै ही दुखी हो है, मरण पावै है, विष्णु रक्षा काहे को न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है। तब वाको कहिए है कि जैसै शक्तिहीन लाभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताको तो कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसै ही तू कहै है कि भला भया तहाँ तो विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका कर्तव्यका फल भया। ऐसै झूठी कल्पना काहेको कीजिए। कै तो बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहो। जो विष्णुका किया भया तो घने जीव दुखी अर शीघ्र मरते देखिए हैं सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसै कहिए? बहुरि अपने कर्तव्य का फल है तो करैगा सो पावैगा, विष्णु कहा रक्षा करेगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त है तिनकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि जो ऐसा है तो कीडी कुन्जर आदि भक्त नाही उनकै अन्नादिक पहुँचावने विषै वा सकट मे सहाय होने विषै वा मरण न होने विषै विष्णु का कर्त्तव्य मानि सर्व का रक्षक काहे को मानैं, भक्तनिही का रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाही जातै अभक्त भी भक्त पुरुषनिको पीडा उपजावते देखिए है। तब वह कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रह्लादादिककी सहाय करी है। याको कहै है—जहाँ सहाय करी तहाँ तो तू तैसे ही मानि परन्तु हम

तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीडित होते देखि वा मन्दिरादिकों विघ्न करते देखि पूछे हैं कि इहाँ सहाय न करै है सो शक्ति ही नाही, कि खबर ही नाही। जो शक्ति नाही तो इनतैंभी हीनशक्तिका धारक भया। खबरही नाही तो जाकों एती भी खबर नाही सो अज्ञान भया। अर जो तू कहेगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसो ही भई, तो फिर भक्तवत्सल काहेकों कहै। ऐसै विष्णुको लोकका रक्षक मानना बनता नाही।

बहुरि वे कहै है—महेश संहार करै है सो वाको पूछिए है। प्रथम तो महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तो जैसै विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसै याको संहार करनेकरि निंदा करो। जातै रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी है। बहुरि यहु संहार कैसै करै है? जैसै पुरुष हस्तादिककरि काहूको मारै वा कहकरि मरावै तैसै महेश अपने अंगनिकरि संहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है। तो क्षण क्षणमे संहार तो घने जीवनिका सर्व लोकमे हो है, यहु कैसे कैसे अंगनिकरि वा कौन कौनको आज्ञा देय युगपत् कैसै संहार करै है। बहुरि महेश तो इच्छा ही करै, याकी इच्छातै स्वयमेव उनका संहार हो है। तो याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणामही रह्या करते होगे अर अनेक जीवनिके युगपत्मारने की इच्छा कैसे होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होते संहार करै है तो परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तो परमब्रह्मके ऐसा क्रोध कैसै भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातै कोई कारण बिना नाश करनेकी

इच्छा होय नाही। अर नाश करनेकी जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है सो कारन बताय। बहुरि तू कहेगा-परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूर किया,कारन किछू भी नाही। तो ख्याल बनावने वालोंको भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूर करै है। जो याको यहुलोक इष्ट अनिष्ट लागै है तो याकै लोकस्यो रागद्वेष तो भया। साक्षीभूत ब्रह्मका स्वरूप काहेको कहो हो,साक्षीभूत तो वाका नाम है जो स्वयमेव जैसै होय तैसै देख्या जान्या करै। जोइष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै ताको साक्षीभूत कैसै कहिए, जातै साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्त्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी है। एककै दोऊ सम्भवै नाही। बहुरि परमब्रह्मके पहिले तो इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हूँ सो बहुत होस्यू' तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मै बहुत हूँ सो एक होस्यू" सो जैसै कोऊ भोलपते कार्यकरि पीछे तिस कार्यको दूर किया चाहै, तैसै परमब्रह्म भी बहुत होय एक होनेकी इच्छाकरी सो जानिये है कि बहुत होने का कार्य किया होय सो भोलपतेहीतै किया, आगामी ज्ञानकरि किया होता तो काहेको ताके दूरि करनेकी इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश सहार करै है तो यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्मका विरोधी भया। बहुरि पूछे हैं यहु महेश लोककों कैसै सहार करैहै। अपने अगनिहीकरि सहार करैहै किइच्छा होते स्वयमेवही सहारहोय है ? जो अपने अगनिकरि सहारकरै है तो सर्वका युगपत् सहार कैसे करै है ? बहुरि याकी इच्छा होते स्वयमेव संहार हो है तो इच्छातो परमब्रह्म कीन्ही थी,याने सहार कहा किया?

बहुरि हम पूछे हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहा गए ? तब वह कहै है--जीवनिविषै भक्ततो ब्रह्म विषै मिले, अन्य मायाविषै मिले । अब याको पूछिये है कि माया ब्रह्मतै जुदी रहै है कि पीछे एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर मायाब्रह्म मे एक होय जाय है तो जे जीव मायामे मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्ममे मिल गए तो महाप्रलय होते सर्वका परमब्रह्ममे मिलना ठहरचा ही तो मोक्षका उपाय काहेको करिए। बहुरि जे जीव मायामे मिले ते बहुरि लोकरचना भए वे ही जीव लोकविषै आवेगे कि वे तो ब्रह्म मे मिल गए थे कि नए उपजेगे। जो वे ही आवेगे तो जानिए है जुदे जुदे रहै है, मिले काहेको कहो। अर नए उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेको मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक है ते मायाविषै मिले हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तो अमूर्त्तीक मे मूर्त्तीक अचेतन कैसे मिलै ? अर मूर्त्तीक अचेतन है तो यहु ब्रह्ममे मिलै है कि नाही। जो मिलै है तो याके मिलनेतै ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तो अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा ए सर्व अमूर्त्तीक अचेतन होइ जाय हैं तो आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु ससारी एकता मानै ही है, याकों अज्ञानी काहेकों कहिए। बहुरि पूछे हैं--लोकका प्रलय होतें महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तो युगपत् हो है कि आगे पीछे हो है। जो युगपत् हो है तो आप नष्ट

होता लोककों नष्ट कैसे करै। अर आगै पीछे हो है तो महेश लोकको नष्टकरि आप कहाँ रह्या,आप भी तो सृष्टिविषै ही था,ऐसें महेशकों सृष्टिका संहारकर्ता मानै है सो असम्भव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकारनिकरि ब्रह्मा विष्णु महेशको सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, संहार करनहारा मानना न बनै तातै लोक कों अनादिनिधन मानना।

इसलोकविषै जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटनि हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिये है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितै ऐसै ही है अर सदाकाल ऐसैं ही रहेगे। कदाचित् तू कहेगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसै भए, सो भए होय तो बनाए ही होय। सो ऐसा नाही है जातै अनादितै ही जे पाइए तहाँ तर्क कहा। जैसैं तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसै ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए है। तू कहेगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसै भए? हम कहेगे परमब्रह्म कैसै भया। तू कहेगा इनकी रचना ऐसी कौनकरी?हम कहेगे परमब्रह्मको ऐसा कौन बनाया?तू कहेगा परमब्रह्म स्वयंसिद्ध है, हम कहै है जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध है,तू कहेगा इनकी अर परब्रह्मकी समानता कैसैं सम्भवै? तो सम्भवनेविषै दूषण बताय। लोकको नवा उपजावना ताका नाश करना तिसविषै तो हम अनैक दोष दिखाये। लोकको अनादि निधन माननेतै कहा दोष है? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदा ही कोई है नाही। ए संसारविषै जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतै सर्वज्ञ

वीतराग हो हैं।

इहां प्रश्न—जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछें तो निराकार हो हैं, तहाँ न्यारे न्यारे कैसें सम्भवै ?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछें सर्वज्ञकों दीसै हैं कि नाही दीसै हैं। जो दीसै हैं तो किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखें कहा देख्या अर न दीसै है तो कै तो वस्तु ही नाही, कै सर्वज्ञ नाही। तातैं इन्द्रियज्ञानगम्य आकार नाही तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातैं आकारवान् है। जब आकारवान् ठहर्‌या तब जुदा जुदा होय तो कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तो हम भी माने हैं। जैसें गेहूँ भिन्न भिन्न है तिनकी जाति एक है ऐसें एक मानै तो किछू दोष है नाही। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषै सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रम-करि सांच झूठ का निर्णय न करै तो तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावेगा।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतैं पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषै राक्षस मनुष्यदेव तिर्यंचनिकै परस्पर प्रसूति भेद बतावैं हैं। तहां देवतैं मनुष्य वा मनुष्यतैं देव वा तिर्यंचतैं मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातैं कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावैं सो कैसें सम्भवै? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूंघने आदिकरि प्रसूति

होनी बतावैं हैं सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसैं होते पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसें रह्या? बहुरि बडे बडे महन्तनिको अन्य अन्य मातापितातैं भए कहैं हैं। सो महत पुरुष कुशीली माता पिताकै कैसें उपजे? यहु तो लोकविषे गालि है। ऐसा कहि उनकी महतता काहेको कहिए है।

अवतार मीमांसा

बहुरि गणेशादिककी मैल आदि करि उत्पत्ति बतावै है वा काहूके अग काहूके जुरे बतावै है। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्धकहै है। बहुरि चौईस अवतार ❀ भए कहै है, तहा केई अवतारनिको पूर्णावतार कहै है। केईनिको अशावतार कहै है। सो पूर्णावतार भए तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापक रह्या कि न रह्या। जो रह्या तो इनअवतारनिको पूर्णावतार काहेको कहो। जो (व्यापक) न रह्या तो एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अशावतार भए तहा ब्रह्म का अश तो सर्वत्र कहो हो, इन विषं कहा अधिकता भई? बहुरि कार्य तो तुच्छ तिसके वास्ते आप ब्रह्म अवतार धारचा कहै सो जानिये है बिना अवतार धारे ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्यके करनेकी न थी। जातै जो काय स्तोक उद्यमतै होइ तहा बहुत उद्यम काहेको करिए? बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप

❀ सनत्कुमार १ शूकरावतार २ दर्वापि नारद ३ नर नारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १०कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

भए, सो कैसे सम्भवै ? बहुरि प्रह्लादके अर्थि नरसिंह अवतार भए सो हरिणाकुशकों ऐसा काहेको होने दिया अर कितेक काल अपने भक्तको काहेको दु:ख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेको धरया। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावै है सो नाभिको पुत्रपनेका सुख उपजावनेको अवतारधारचा। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनको तो किछु साध्य था ही नाही। अर कहेगा जगत्‌के दिखवानेको किया तो कोई अवतार तो तपश्चरण दिखावै, कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसको भला जानि लाग।

बहुरि(वह)कहै है- एक अरहत नामका राजा भया* सो वृषभावतारका मत अगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहत भया नाही। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इन दोउ अवतारनिको मुख्य कहैं हैं सो रामावतार कहा किया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसो लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलें गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति निंद्य चेष्टाकरी ×,पीछे जरासिंधु आदिको मारि राजकिया। सो ऐसे कार्य करनेमे कहा सिद्धिभई। बहुरि रामकृष्णादिकका एक स्वरूप कहै। सो बीचमे इतने काल कहां रहे ? जो ब्रह्मविषै रहे तो जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तो जानिए है, ए ब्रह्मते जुदे रहै हैं। एक रहे तो राम ही कृष्ण भया, सीता ही रुक्मणी

* भागवत स्कंध ५ अ० ६, ७, ११

× विष्णु०पु०अ०१३ श्लोक ४५ से ६० तक

ब्रह्मपुराण अ०१८९ और भागवतस्कध १०, अ० ३०, ४८

भई इत्यादि कैसें कहिए है। बहुरि रामावतारविषे तो सीताकों मुख्य करें अर कृष्णावतारविषें सीताकों रुक्मणी भई कहैं अर ताको तो प्रधान न कहैं, राधिका कुमारी ताको मुख्य करे। बहुरि पूछे तब कहैं राधिका भक्त थी,सो निजस्त्रीको छोरि दासीका मुख्य करना कैसे बनै? बहुरि कृष्णके तो राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी, ऐसे कार्य तो महानिंद्य है। बहुरि रुक्मणी को छोरि राधा को मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनको भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधा विषै ही आसक्त न भया, अन्य गोपिका कुब्जा* आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसेही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहैं–लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककों लक्ष्मी कहैं सो ए तो पृथ्वी आदि विषै जैसे पाषाण धूलि है तैसे ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिकको माया का स्वरूप कहैं सो इन विषै आसक्त भए तब मायाविषै आसक्त कैसे न भया। कहा ताई कहिए जो निरूपण करै सो विरुद्ध करै। परन्तु जीवनिको भोगादिककी वार्ता सुहावै,तातै तिनका कहना वल्लभ लागै है। ऐसे अवतार कहे हैं, इनको ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। बहुरि औरनिको भी ब्रह्मस्वरूप कहे हैं। एक तो महादेवको ब्रह्मस्वरूप मानै हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारै हैं सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरै हैं सो हाडका छीवना भी निंद्य है ताको गलेमे किस अर्थि धारै हैं। सर्पादि सहित है सो यामे कौन

---

* भागवतस्कंध १० अ० ४८ १-११

बडाई है। आक धतूरा खाय है सो यामे कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखै है सो कौनका भय है । बहुरि पार्वती सग लिए है सो योगी होय स्त्रीराखै सो ऐसा विपरीतपना काहेको किया। कामासक्त था तो घरही मे रह्या होता। बहुरि वानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्ही ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाही । बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताको ब्रह्मस्वरूप कहै ।

बहुरि कबहूँ कृष्णको याका सेवक कहैं, कबहू याको कृष्णका सेवक कहैं। कबहूँ दोऊनिको एक ही कहै,किछू ठिकाना नाही। बहुरि सूर्य्यादिकको ब्रह्मका स्वरूप कहै। बहुरि ऐसा कहैं जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषै सुवर्ण, वृक्षनिविषै कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूठ इत्यादि मे मैं ही हूँ सो किछू पूर्वापर विचारै नाही। कोई एक अगकरि केई ससारी जाको महत मानै ताहीको ब्रह्मका स्वरूप कहै। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है तो ऐसा विशेष काहेको किया। अर सूर्यादिविषै वा सुवर्णादिविषै ही ब्रह्म है तो सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिकभी उजाला करै है, सुवणवत् रूपा लोहा आदि भी धन है इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषै भी हैं तिनको भी ब्रह्म मानो। बडा छोटा मानो परन्तु जाति तो एक भई। सो झूठी महतता ठहरावनेके अर्थि अनेक प्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवी तिनको मायाका स्वरूप कहि हिसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं सो माया तो निद्य है ताका पूजना कैसे सम्भवै ? अर हिसादिक करना कैसे भला होय ? बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्य भक्षणादिसहित तिनको पूज्य कहैं।

अग्नि पवन जलादिकको देव ठहराय पूज्य कहैं। वृक्षादिककों युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होंय तिनिविषै ब्रह्मकी कल्पना करै अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होय तिनि विषै मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावै हैं। इनके पूजे कहा होगा सो किछू विचार नाही। झूठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतको भ्रमावै हैं। बहुरि वे कहै है—विधाता शरीरको घडै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवें है, मूए पीछे मार्गविषै बहुत काल लागै है, बहुरि तहा पुण्य पाप का लेखा करै है, बहुरि तहाँ दडादिक दे है। सो ए कल्पित झूठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजै मरै तिनका युगपत ऐसे होना कैसे सम्भवै ? अर ऐसै माननेका कोई कारण भी भासै नाही।

बहुरि मूए पीछे श्राद्धादिककरि वाका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दु खी होता दीसै नाही, मूए पीछे कैसे होइ। ए युक्ति मनुष्यनिको भ्रमाय अपने लोभ साधनेके अर्थि बनाई है। कीडी पतग सिंहादिक जीव भी तो उपजै मरै हैं, उनको तो प्रलय के जीव ठहरावै। सो जैसे मनुष्यादिकके जन्म मरण होते देखिए है, तैसे ही उनके होते देखिए है। झूठी कल्पना किए कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषै कथादिक निरूपै हैं तहाँ विचार किए विरुद्ध भासै।

यज्ञमें पशुहिंसा का प्रतिषेध

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावै हैं। सो तहाँ बडे जीव तिनि का होम करै हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै हैं,तहाँ जीवघात हो

है सो उनहीके शास्त्रविषै वा लोकविषै हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाही। अर कहैं—"यज्ञार्थं पशवः सृष्टा." ए यज्ञ ही के अर्थि पशु बनाए है। तहाँ घात करने का दोष नाही। बहुरि मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकों भ्रमावै। सो कोई विषतै जीवना कहै सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसे हिंसा किए धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनकी हिंसा करनी कही, तिनकी तो किछू शक्ति नाही, उनकी काहूको पीर नाही। जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पडता। बहुरि पाप का भय नाही तातै पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषै तत्पर भए है।

बहुरि ते मोक्षमार्ग भक्तियोग अर ज्ञानयोग करि दोय प्रकार प्ररूपै है। अब भक्तियोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं —

भक्तियोग मीमांसा

तहा भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोय प्रकार कहै हैं। तहाँ अद्वैत परब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसै करै है—तुम निराकार हो, निरजन हो, मन बचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावै हैं। सो इन विषैं केई तो निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनकों सर्वथा माने अभाव ही भासै। जातैं आकारादि बिना वस्तु कैसे होई। बहुरि

केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवी हैं सो तिनिका असम्भवपना पूर्वै दिखाया ही है । बहुरि ऐसा कहैं जो जीव बुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूँ, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूँ, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूँ' सो ए तीनो ही भ्रम हैं । यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड है । जो चेतन है तो यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है । जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूँ ऐसा मानना तो चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरया अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है । तहां दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसे बनै ? दास स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै । बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तो यहु अपनी चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरया तो मैं अंश हूँ वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया । बहुरि जो भक्ति करणहारा जड है तो जडकै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसे भई । तातै 'मैं दास हू' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होय । अर 'तेरा मैं अंश हूँ' ऐसा कहना बनै ही नाही । जातै 'तू' अर 'मैं' ऐसा तो भिन्न होय तब ही बनै,सो अंश अंशी भिन्न कैसे होय ? अंशी तो कोई जुदा वस्तु है नाही, अंशनिका समुदाय सो ही अंशी है । अर तू है सो मैं हूँ, ऐसा वचन ही विरुद्ध है । एक पदार्थविषै आपो भी मानै अर वाको पर भी मानै सो कैसे सम्भवै ? तातै भ्रम छोडि निर्णय करना । बहुरि केई नाम ही जपै हैं सो जाका नाम जपै ताका स्वरूप पहिचाने बिना केवल नामही का जपना कैसे कार्यकारी होय । जो तू कहेगा, नामहीका अतिशय है ; तो जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका धरया, तहाँ दोऊनिका नाम उच्चारणविषै

फलकी समानता होय सो कैसे बने। तातें स्वरूपका निर्णयकरि पीछें भक्ति करने योग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसें निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहाँ काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताको सगुणभक्ति कहै हैं। तहा सगुणभक्तिविषे लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसे नायक नायिकाका करिए तैसें ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै है। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी सयोगवियोगरूप सर्व-व्यवहार तहाँ निरूपै है। बहुरि स्नान करती स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना स्त्रीनिके पगा पडना, स्त्रीनिके आगे नाचना इत्यादि जिन कार्यनिको ससारी जीव भी करते लज्जित होय तिनि कार्यनिका करना ठहरावे हैं। सो ऐसा कार्य अतिकाम पीडित भएही बनै। बहुरि युद्धादिक किए कहैं तो ए क्रोध के कार्य हैं। अपनी महिमा दिखावने के अर्थि उपाय किए कहै सो ए मान के कार्य है। अनेक छल किए कहैं सो मायाके कार्य है। विषय सामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहैं सो ए लोभके कार्य है। कौतूहलादिक किए कहैं सो हास्यादिकके कार्य है। ऐसै ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिको प्रगटकरि कहै, हम स्तुति करै है। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तो निद्य कौन ठहरेगे। जिनकी लोकविषै, शास्त्रविषै अत्यन्त निन्दा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तो हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछे हैं— कोऊ किसीका नाम तो कहै नाही अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहैं कि किसीने ऐसे कार्य किए हैं,तब तुम वाकों भला जानो कि

बुरा जानो। जो भला जानो तो पापी भले भए, बुरा कौन रह्या। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपात रहित न्याय करो। जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निद्यकार्य करनेमे कहा सिद्धी भई ? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किए तो परस्त्री सेवन आदि निद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमे आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातै ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भव नाही। बहुरि जो ठाकुर कार्य न किए तुम ही कहो हो, तो जामे दोष न था ताको दोष लगाया, तातै ऐसा वर्णन करना तो निंदा है, स्तुति नाही। बहुरि स्तुति करतै जिन गुणनिका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनही विषै अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करता आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादि विषै अनुरागी होय तो ऐसे भाव तो भले नाही। जो कहोगे, भक्त ऐसा भाव न करै है तो परिणाम भए बिना वर्णन कैसे किया। तिनका अनुराग भए बिना भक्ति कैसे करी। सो ए भाव ही भले होय तो ब्रह्मचर्यको वा क्षमादिकको भले काहेकों कहिए। इनके तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुणभक्ति करनेके अर्थि राम कृष्णादिककी मूर्ति भी शृंगारादि किए वक्रत्वादिसहित स्त्री आदि संग लिए बनावै हैं, जाको देखते ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै अर महादेवके लिंगहीका आकार बनावै हैं। देखो विडम्बना, जाका नाम लिए लाज आवै, जगत् जिसको ढांक्या राखै ताके आकारका पूजन करावै हैं। कहा अन्य अंग वाके न थे ?

परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नाना प्रकार विषयसामग्री भेली करै। बहुरि नाम तो ठाकुरका करै अर तिनिको आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकों भोग लगाया कहै, पीछे आप ही प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करै। सो इहां पूछिये है, प्रथम तो ठाकुरकै क्षुधा तृषा पोडा होसी। न होइ तो ऐसी कल्पना कैसे सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीडित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुखी भया, औरका दुख कैसे दूरि करै। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तो उनके अर्थि अर्पण करी, सो करी, पीछे प्रसाद तो ठाकुर देवै तब होय, आपही का तो किया न होय। जैसे कोऊ राजाको भेट करि पीछे राजा बक्सै तो वाको ग्रहण करना योग्य अर आप राजा की भेट करै अर राजा तो किछू कहै नाही, आप ही 'राजा मोकू बकसी' ऐसे कहि वाको अंगीकार करै तो यहु ख्याल (खेल) भया। तैसे इहाँ भी ऐसे किए भक्ति तो भई नाही, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हो। दोय हो तो तैनै भेट करी, पीछे ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजे, आप ही तैं ग्रहण काहेको करै है। अर तू कहेगा ठाकुरकी तो मूर्ति है तातै मैं ही कल्पना करू हू, तो ठाकुरका करने का कार्य तै ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो तो भेट करनी, प्रसाद कहना झूठा भया। एक भए यहु व्यवहार सम्भवै नाही तातै भोजनासक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरके अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषै ससारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहां नाम

तो ठाकुर का लेना अर इन्द्रियनिके विषय अपने पोषने सो विषया-सक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की वा सोवना जागना इत्यादिककी कल्पना तहा करै है सो जैसे लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करै, तैसे यहु भी कोतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाही। बहुरि लडके ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावें। ताकरि अपने विषय पोषे अर कहैं यहु भी भक्ति है, इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषे पाईए है। ऐसे दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहै सो ताकों मिथ्या दिखाया।

अब अन्य मत प्ररूपित ज्ञानयोगकरि मोक्षमार्गका स्वरूप बताइये है–

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्म को जानना ताको ज्ञान कहै है सो ताका मिथ्यापना तो पूर्वें कह्या ही है। बहुरि आपको सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिकको भ्रम जानना ताको ज्ञान कहै है सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तो मोक्षका उपाय काहेको करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरया तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए है अर शरीरादिकका सयोग देखिए है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका सद्भाव मानना भ्रम कैसे भया? बहुरि कहै है मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसे जेवरी तो जेवरी ही है ताको सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेटे जेवरी ही है। तैसे आप तो ब्रह्म ही है, आपको अशुद्ध जानै था सो भ्रम था, भ्रम मेटे आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना

मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकों अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जाने भ्रम होइ सो झूठा भ्रम-करि आपको शुद्धब्रह्म माने कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहेगा, ए काम क्रोधादिक तो मनके धर्म हैं, ब्रह्मन्यारा है तो तुझकू पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाही। जो है तो काम क्रोधादिक भी तेरे ही भए। अर नाही है तो तू ज्ञान स्वरूप है कि जड है। जो ज्ञानस्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रिय द्वारा ही होता दीसै है। इनि बिना कोई ज्ञान बतावै तो ताको जुदा तेरा स्वरूप मानै सो भासता नाही। बहुरि 'मन ज्ञाने' धातुतै मन शब्दनिपजै है सो मन तो ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताको बताय सो जुदा कोऊ भासै नाही। बहुरि जो तू जड है तो ज्ञान बिना अपने स्वरूपका विचार कैसे करै है, यहु बनै नाही। बहुरि तू कहै है, ब्रह्मन्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्मतू ही है कि और है। जो तू ही है तो तेरे 'मैं ब्रह्म हू' ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है सो तो मन स्वरूप ही है, मनतै जुदा नाही अर आपा मानना आप ही विषै होय। जाको न्यारा जानै तिसविषै आपा मान्यो जाय नाही। सो मनतै न्यारा ब्रह्म है तो मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषै आपा काहेको मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्मविषै आपा काहेको मानै तातै भ्रम छोडि ऐसा जानि,जैसै स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है सो जड है, याके द्वारि जो जानपनो हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसे ही मन भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो हैं सो सर्व

आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना–जानपना तो निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव है तिसकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय काम क्रोधादि मिटेंगे अर जानपनाकै मन इन्द्रियका आधीन पना मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेने, जातैं मन अर बुद्ध्यादिक एकार्थ है अर अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनिकों आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनको अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितैं इनिका अभाव न होय सकै अर अपनी महतता चाहैं ते जीव इनिको अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तै है। काम क्रोधादिक भावनिको बधाय विषय-सामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषै तत्पर हो हैं। बहुरि अहंकारा-दिक का त्यागको भी अन्यथा मानै है। सर्वको परब्रह्म मानना, कहीं आपो न माननो ताको अहंकारका त्याग बतावै सो मिथ्या है जातैं कोई आप है कि नाहीं। जो है तो आपविषै आपो कैसे न मानिए, जो आप नाहीं है तो सर्वको ब्रह्म कौन मानै है ? तातैं शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहां करता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषै अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वको समान जानना, कोई विषै भेद न करना ताको रागद्वेषका त्याग बतावै है सो भी मिथ्या है। जातैं सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है, कोई कैसा है कोई कैसा है तिनिको समान कैसे मानिए ? तातैं परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जानने मे तो किछू दोष नाहीं। ऐसें

ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकै अन्यथा कल्पना करे हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवै हैं, अभक्ष्य भखै हैं, वर्णादि भेद नाही करैं हैं, हीन क्रिया आचरै है इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्तै है। जब कोऊ पूछै तब कहै हैं, ए तो शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसे हो है अथवा जैसे ईश्वरकी इच्छा हो है तैसे हो है, हमको तो विकल्प न करना। सो देखो झूठ, आप जानि जानि प्रवर्त्तै ताको तो शरीर का धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताको प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताको ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प करै अर कहै हमको तो विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवने, तातै ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तो हम याका कर्त्तव्य न मानै। जैसे आप ध्यान धरे तिष्ठै है, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि गया तहा आप किछू सुखी न भया, तहा तो ताका कर्त्तव्य नाही सो साच अर आप वस्त्रको अगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहाँ जो अपना कर्त्तव्य मानै नाही सो कैसे सभवै। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते ही नाही। तहाँ अपना कर्त्तव्य कैसे न मानिए। तातै जो काम क्रोधादिका अभाव ही भया होय तो तहाँ किसी क्रियानिविषै प्रवृत्ति सम्भवै ही नाही। अर जो कामक्रोधादि पाईए है तो जैसे ए भाव थोरे होंय तैसे प्रवृत्ति करनी। स्वछन्द होय इनिको बधावना युक्त नाही।

पवनादि साधन द्वारा ज्ञानी होने का प्रतिषेध

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपको ज्ञानी मानै हैं तहाँ

इडा पिंगला सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहां वर्णादिक भेदनितै पवन हीकौं पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै हैं। ताका विज्ञानकरि किछू साधनतै निमित्तका ज्ञान होय तातै जगतकौं इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महंत कहावै सो यह तो लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाही। जीवनिको इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग द्वेष बधावै अर अपने मान लोभादिक निपजावै, यामे कहा सिद्धि है? बहुरि प्राणायामादिका साधन करै, पवनको चढाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तो जैसे नट साधनतै हस्तादिक करि क्रिया करै तैसे यहां भी साधनतै पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तो शरीर ही के अंग हैं। इनिके साधनतै आत्महित कैसे सधै? बहुरि तू कहेगा-तहां मनका विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसे निद्राविषै चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है तैसे पवन साधनतै यहा चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहां मनको रोकि राख्या है, किछू वासना तो मिटी नाही। तातै मनका विकल्प मिट्या न कहिए अर चेतना बिना सुख कौन भोगवै है तातै सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तो इस क्षेत्रविषै भए हैं तिन विषै कोई अमर दीसता नाही। अग्नि लगाए ताका भी मरण होता दीसै है तातै यमके वशीभूत नाही, यहु झूठी कल्पना है। बहुरि जहा साधन विषै किछू चेतना रहै अर तहा साधनतै शब्द सुनै, ताकौं अनहद नाद बतावै। सो जैसे वीणादिकके शब्द सुननेतै सुख मानना तैसे तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहा तो विषयपोषण भया, परमार्थतो किछू नाही। बहुरि पवन का निकसने पैठने विषै "सोहं" ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताको 'अजपा जाप' कहै हैं। सो जैसे तीतरके शब्दविषै 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाही। तैसे यहाँ 'सोहं' शब्दकी कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाही। बहुरि शब्दके अपने सुनने ही तै तो किछू फलप्राप्ति नाही, अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो 'सोहं' शब्दका तो अर्थ यहु है 'सो हूँ छू', यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातै वस्तुका निर्णयकरि ताविषै अहबुद्धि धारनेविषै 'सोहं' शब्द बनै। तहाँ भी आपकों आप अनुभवै, तहाँ तो 'सोहं' शब्द सम्भवै नाही। परकौं अपने स्वरूप बतावनेविषै 'सोहं' शब्द सम्भवै है। जैसे पुरुष आपकों आप जानैं, तहाँ 'सो हू छू' ऐसा काहेको विचारै। कोई अन्य जीव आपकों न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाक कहिए 'जो ऐसा है सो मैं हूँ' तैसे ही यहा जानना। बहुरि केई ललाट भोह अर नासिकाके अग्रके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदिका ध्यान भया कहि परमार्थ मानै सो नेत्रकी पूतरी फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी, यामे कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितै किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषै गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषै आरोग्यतादिक होय तो ए तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितै किछू अपना भला तो होता नाही, भला तो विषयकषायकी

वासना मिटें होय। सो ए तो विषयकषायपोषनेके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषैं कष्ट बहुत मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाही। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषै लागै हैं। बहुरि काहूको बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावै हैं। काहूको सुगमपनें ही मोक्ष भया कहैं। उद्धवादिकको परमभक्त कहैं, तिनको तो तपका उपदेश दिया कहै,वेश्यादिककै बिना परिणाम (केवल) नामादिकहीतें तरना बतावै,किछू थल है नाही। ऐसैं मोक्षमार्गको अन्यथा प्ररूपै हैं।

अन्यमत कल्पित मोक्षमार्ग की मीमांसा

बहुरि मोक्षस्वरूपको भी अन्यथा प्ररूपै है। तहाँ मोक्ष अनेक प्रकार बतावै हैं। एक तो मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठधामविषै ठाकुर ठकुराणीसहित नाना भोगविलास करै हैं तहा जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै सो मोक्ष है। सो यहु तो विरुद्धहै। प्रथम तो ठाकुर भी ससारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तो जैसा राजा-दिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षको पाय तहाँ टहल किया करै तो जैसे राजाकी चाकरी करनी तैसे यहु भी चाकरी भई, तहां पराधीन भए सुख कैसे होय? तातैं यहु भी बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—ईश्वरके समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तो बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरेगा? सबही ठपरै तो भिन्न इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तो समानता न भई। न्यून

है ताकै नीचापनेकरि उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसें होय ? जैसे छोटा राजाकै बड़ा राजा संसारविषै हो है तैसें छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषै भी भया सो बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठविषै दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषै ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तो मूर्त्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहाँ कैसे सम्भवै ? बहुरि ज्योतिमे ज्योति मिलें यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तो ज्योति बधती जायसी, तब ज्योतिविषैं हीनाधिकपनो होसी। अर विनशि जाय है तो आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसे मानिए। तातै ऐसै भी बनै नाही।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै है—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु माया का आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यो एक था कि जुदा था। जो एक था तो ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भए ब्रह्मविषै मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाही। जो रहै है तो सर्वज्ञको तो याका अस्तित्व जुदा भासै, तब सयोग होनेतै मिल्या कहो परन्तु परमार्थतै तो मिल्या नाही। बहुरि अस्तित्व नाही रहै है तो आपका अभाव होना कौन चाहै, तातै यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षको ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धिआदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अगभूत मन इन्द्रिय तिनके आधीन ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए ऐसे कहना तो बनै है अर तहाँ चेतनताका भी अभाव भया मानिए तो पाषाणादि समान

जड़ अवस्थाकों कैसें भली मानिए । बहुरि भला साधन करतें तो जानपना बधै है, बहुत भला साधन किए जानपनेका अभाव होना कैसें मानिए ? बहुरि लोकविषै ज्ञानकी महततातै जड़पनाकी तो महतता नाहीं तातै यहु बनै नाही । ऐसें ही अनेक प्रकार कल्पनाकरि मोक्षकों बतावैं सो किछू यथार्थ तो जानै नाही, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषै कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बकै हैं । या प्रकार वेदांतादि मतनिविषै अन्यथा निरूपण करै हैं ।

मुस्लिममत सम्बन्धी विचार

बहुरि ऐसै ही मुसलमानोके मतविषै अन्यथा निरूपण करै हैं । जैसै वे ब्रह्मको सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसें ए खुदाको मानै है । बहुरि जैसे वे अवतार भए मानै हैं तैसें ए पैगम्बर भए मानै है । जैसै वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य दण्डादिक देना ठहरावैं है तैसें ए खुदाकै ठहरावै हैं । बहुरि जैसै वे गऊ आदिको पूज्य कहै हैं तैसें ए सूअर आदिको कहैं हैं, सब तिर्यंच आदिक हैं । बहुरि जैसे वे ईश्वरकी भक्तितै मुक्ति कहै हैं तैसें ए खुदा की भक्तितै कहै है । बहुरि जैसैं वे कही दया पोषैं कही हिंसा पोषैं, तैसें ए भी कही मेहर करनी पोषैं कही कतल करना पोषै । बहुरि जैसें वे कही तपश्चरण करना पोषैं कही विषयसेवन पोषैं तैसे ही ए भी पोषैं हैं । बहुरि जैसें वे कही मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करै, कही उत्तम पुरुषोकरि तिनिका अंगीकार करना बतावैं है तैसें ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावैंहैं । ऐसें अनेक प्रकार करि समानता पाइए है । यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि

प्रयोजनभूत ग्रंथकी एकता पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूल-श्रद्धानकी तो एकता है अर उत्तर श्रद्धानविषै घने ही विशेष हैं। तहाँ उनतै भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादिपापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतै विरुद्ध निरूपण करे हैं। तातै मुसलमानो का मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषैं जिनिमतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहाँ कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तो बडे राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषै कैसें प्रवर्तें है ?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितै है सो इनिविषै मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तै है सो इनि विषै विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनिका वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषैं विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तो लोकनिंद्यपना कों भी उलंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिको किया चाहै तिनि कार्यनिको करते धर्म बतावै तो ऐसे धर्मविषै कौन न लागै। तातै इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनिविषै विरागता दया इत्यादि भी तो कहै हैं, सो जैसै झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाही, तैसे साँच मिलाए बिना झूठ चालै नाही परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषै विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसै गीताविषै उपदेश देय राडि (युद्ध) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषै शुद्ध निरूपणकरि स्वछन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसें ही अन्य

जानने। बहुरि यहु काल तो निकृष्टहै सो इसविषैं तो निकृष्ट धर्मंहीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषै मुसलमान बहुत प्रधान हो गए, हिन्दू घटि गए। हिन्दूनिविषै और बधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसैं इहाँ अबार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाइए है। अब पंडितपनाके बलतैं कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषैं जे तत्त्वादिक मानिए हैं तिनका निरूपण कीजिए है .—

सांख्यमत निराकरण

तहाँ सांख्यमतविषैं पच्चीस तत्त्व मानैं है * सो कहिए हैं - सत्त्व रज: तम: ए तीन गुण कहै हैं। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है, तमोगुणकरि मूढता हो है, इत्यादि लक्षण कहैं हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महत्तत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहां पांच तो ज्ञानइन्द्रिय हो है—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पाँच कर्मइन्द्रिय हो हैं—बचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतैं अग्नि, रसतैं जल, गंधतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसैं भया कहै है। ऐसें चौईस तत्त्व तो प्रकृतिस्वरूप हैं। इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व

---

* प्रकृतेर्महास्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानि ॥ —सांख्य का० १२

कहे हैं सो ए कल्पित हैं जातैं राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसें होंय। इनका आश्रय तो चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहैं सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थ-विषै ए होते देखिए हैं। इनितैं ज्ञान भया कैसें मानिए। कोई कहै— बुद्धि जुदी है,ज्ञान जुदा है तो मन तो आगे षोड़शमात्राविषैं कह्या अब ज्ञान जुदा कहोगे तो बुद्धि किसका नाम ठहरेगा। बहुरि तिसतै अहंकार भया कह्या सो परवस्तु विषै 'मैं करूँ हूँ' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जानने करि तो अहकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसे कहिए है ? बहुरि अहकारकरि षोड़श मात्रा कहीं, तिनि विषै पाच ज्ञानइन्द्रिय कही सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्यैं-न्द्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् जड देखिए है अर वर्णादिकके जाननेरूप भावइन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप हैं,अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूकों देखै है। तहां अहंकारकरि निपजना कैसें सम्भवै? बहुरि मन कह्या सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातै द्रव्य-मन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप हैं। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय कहैं सो ए तो शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं । अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसे मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पांच ही तो नाही। शरीरके सर्व अग कार्यकारी हैं । बहुरि वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है, मनुष्या-श्रित ही तो नाही, तातै सूंडि पूंछ इत्यादि अग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पांचहीकी संख्या काहेकों कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पांच तन्मात्रा कही सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाही, ए तो परमाणूनिस्यों तन्मय गुण हैं। ए जुदे कैसे निपजे ? बहुरि अहंकार तो अमूर्तीक जीवका

परिणाम है। तातैं ए मूर्तीकगुण कैसे निपजे मानिए। बहुरि इनि पाँचनितै अग्नि आदि निपजे कहैं सो प्रत्यक्ष झूठ है। रूपादिक अग्न्यादिककै तो सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न हैं, वस्तुविषैं भेद नाही। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए है। तातै रूपादि करि अग्न्यादि निपजे कैसे कहिए। बहुरि कहनेविषै भी गुणीविषै गुण है, गुणतैं गुणी निपज्या कैसे मानिए ?

बहुरि इनितै भिन्न एक पुरुष कहै है सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तो कहा बूझै नाही। कैसा है, कहा है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है सो बताय। जो बतावेगा ताहीमे विचार किए अन्यथापनों भासेगा। ऐसै साख्यमत करि कल्पित तत्त्व मिथ्या जानने।

बहुरि पुरुषको प्रकृतितै भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहैं हैं। सो प्रथम तो प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाही। बहुरि केवल जानने ही तै तो सिद्धि होती नाही। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय। सो ऐसैं जाने किछू रागादिक घटै नाही। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेको आप रागादि घटावै। तातै यहु मोक्षमार्ग नाही है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं है। सो पच्चीस तत्त्वनिविषै चौईस तत्त्व तो प्रकृति सम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तो जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषै कह्या ही नाही। अर पुरुष ही कों प्रकृति सयोग भए जीव संज्ञा हो है तो पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृति सहित हैं, पीछें साधनकरि

कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया-एक पुरुष न ठहरया।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवकों आनि लागै है। जो याकी भूलि है तो प्रकृतितैं इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसे मानिए ? अर जुदी है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहरया। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाही,तब काहेको उपदेश दीजिए है। ऐसे यहु मोक्ष मानना मिथ्या है। बहुरि तहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ए तीन प्रमाण कहे हैं सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि इस साख्यमतविषै कोई ईश्वरको न मानै हैं। केई एक पुरुषको ईश्वर मानै हैं। केई शिवकों, केई नारायणकों देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै है, किछू निश्चय है नाही। बहुरि इस मतविषै केई जटा धारै है, केई चोटी राखै हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरै हैं, इत्यादि अनेक प्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महत कुहावै है। ऐसै सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत निराकरण

बहुरि शिवमतविषै दोय भेद हैं- नैयायिक, वैशेषिक। तहाँ नैयायिकमत विषै सोलह तत्त्व कहै है। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहा प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकों वादी प्रतिवादी मानैं

सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाकों ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पच अग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतें ठीक होय सो तर्क है। पीछें प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यके पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषै जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है। साचे हेतु नाही, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास है। छललिए बचन सो छल हैं। साचे दूषण नाही ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार सशयादि तत्त्व कहे सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व हैं नाही। ज्ञानके निर्णय करने को वा वादकरि पाडित्य प्रगट करनेकों कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे सो इनितें परमार्थ कार्य कहा होई ? काम क्रोधादि भावकों मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तो इहा प्रयोजन किछू दिखाया ही नाही। पडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है,तातें ये तत्त्व तत्त्वभूत नाही। बहुरि कहोगे इनिकों जाने बिना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकै, तातें ए तत्त्व कहे है। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरणवाले भी कहै हैं। व्याकरण पढे अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै है कि भोजन किए शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेको समर्थ होय सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाही। बहुरि जो कहोगे,व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्त्वज्ञानको कारण नाहीं, लौकिक कार्य साधनेकों भी कारण हैं, सो जैसे ये हैं, तैसें ही तुम तत्त्व कहे,सो भी लौकिक (कार्य) साधनेकों कारण हो हैं। जैसे इन्द्रियादिक

के जाननेकों प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे वा स्थाणु पुरुषादिविषैं संशयादिकका निरूपण किया । तातै जिनिको जानें अवश्यकाम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै,वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं । बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषै आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है । सो प्रमेय तो सर्व ही वस्तु हैं । प्रमितिका विषय नाही, ऐसा कोई भी नाही, तातै प्रमेय तत्त्व काहेको कह्या । आत्मा आदि तत्त्व कहने थे । बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया सो पक्षपातरहित विचार किए भासै है । जैसे आत्माके दोय भेद कहै हैं— परमात्मा,जीवात्मा । तहा परमात्मा कों सर्वका कर्त्ता बतावै हैं । तहाँ ऐसा अनुमान करै हैं जो यह जगत कर्त्ताकरि निपज्या है, जातै यह कार्य है । जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसे घटादिक । सो यह अनुमानाभास हैं । जातै ऐसा अनुमानान्तर सम्भवै है । यह जगत सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाही जातै याविषै कोई अकार्यरूप भी पदार्थ हैं । जो अकार्य हैं सो कर्त्ताकरि निपज्या नाही, जैसे सूर्य्यबिम्बादिक । जातै अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषै कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाही । यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है तातैं ईश्वरकों कर्त्ता मानना मिथ्या है । बहुरि जीवात्माकों प्रति शरीर भिन्न कहैं हैं सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भए पीछे भी भिन्न ही मानना योग्य है । विशेष पूर्व कह्या ही है । ऐसे ही अन्य तत्त्वनिको मिथ्या प्ररूपै हैं । बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं सो जैनग्रन्थनितैं परीक्षा किए भासै है । ऐसें नैयायिकमतविषैं कहे कल्पित तत्त्व जाननें ।

वैशेषिकमत निराकरण

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय। तहां द्रव्य नवप्रकार-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितै विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वे परमाणु जाते रहै हैं, और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षको असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तो ऐसे ही मानै, परन्तु केवल कहे ही तो ऐसे ठहरै नाही। तातै सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्त्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कही जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है। जातै वाका कोई प्रमाण नाही। अर पृथ्वी आदि तो परमाणुपिंड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाही तातै यहु मिथ्या है। बहुरि जहां पदार्थ अटकै नाही, ऐसी जो पोलि ताको आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकों काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू है ही नाहीं। आकाशविषैं खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै हैं

सो पूर्वै निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है सो शरीरका अंग है। ऐसे ए द्रव्य कल्पित जाननें। बहुरि गुण चौईस कहे हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, सख्या, विभाग सयोग, परिणाम, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, धर्म अधर्म, प्रयत्न, सस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषै स्पर्शादिक गुण तो परमाणुनिविषै पाइए है। परन्तु पृथ्वीको गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान ही कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषै गधकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितै विरुद्ध है। बहुरि शब्दको आकाशका गुण कहैं सो मिथ्या है। शब्द तो भीति इत्यादिस्यो रुकै है, तातै मूर्त्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भीतिविषै आकाश रहै शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनै? बहुरि सख्यादिक हैं सो वस्तुविषै तो किछू हैं नाही, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनादिक जानने को अपने ज्ञानविषै सख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं, सो आत्माका परिणमन है। तहाँ बुद्धि नाम ज्ञानका है तो आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तो मन तो द्रव्यनिविषै कह्याही था, यहां गुण काहेको कह्या। बहुरि सुखादिक हैं सो आत्माविषै कदाचित् पाइए हैं, आत्माके लक्षणभूत तो ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तपनेंतै लक्षणाभास हैं; बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषै पाइए हैं सो स्निग्ध गुरुत्व इत्यादि तो स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातै स्पर्शगुणविषै गर्भित भए, जुदे काहेकों कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषै कह्या, सो ऐसे तो

अग्निआदिविषै ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाइए है। कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्यविषै गर्भित करने थे। ऐसें ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांच प्रकार कहै हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तो शरीरकी चेष्टा हैं। इनिको जुदा कहनेंका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नाही, चेष्टा तो घनी ही प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनको तत्त्वसंज्ञा कही; सो कै तो जुदा पदार्थ होय तो ताको जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेको विशेष प्रयोजनभूत होय तो तत्व कहना था, सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसें ही कहि देना तो पाषाणादिककी अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाही। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। तहा पर तो सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादिरूप है। बहुरि नित्य द्रव्यविषे प्रवृत्ति जिनकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तो बहुतनिको एकप्रकारकरि वा एक वस्तुविषै भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषे हो है, कोई जुदे पदार्थ तो नाही। बहुरि इनिके जाने कामक्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजनकी भी सिद्धि नाही तातैं इनको तत्त्व काहेको कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तो प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म है वा सम्बन्ध आधारादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषैं सम्भवै हैं। कै तो सर्व कहने थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातै ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसें वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका

निर्णय जैनन्यायग्रंथनिवैं* जानना।

बहुरि नैयायिक तो कहै हैं—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दु:ख इनिका अभावतें आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं—चौईस गुणनिविषै बुद्धि आदि नवगुण तिनिका अभाव सो मुक्ति है। सो इहां बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तौ ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब ज्ञानका अभाव भए लक्षणका अभाव होतें लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसे रही। अर जो बुद्धि नाम मनका है तो भावमन तो ज्ञानरूप है ही अर द्रव्यमन शरीररूप है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही है सो द्रव्य-मन जड ताका नाम बुद्धि कैसे होय ? बहुरि मनवत् ही इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभावहोय सो स्पर्शादि विषय-निका जानना मिटै है तो ज्ञान काहेका नाम ठहरेगा। अर तिनि विष-यनिका ही अभाव होयगा तो लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कह्या सो सुखहीके अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहाँ अभाव होय सो उपादेय कैसे होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहैं तो यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तो तहाँ सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दु:ख द्वेषादिकका तहाँ अभाव कहैं सो सत्य ही है।

बहुरि शिवमतविषै कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताको देव मानै

---

* देवागम, युक्त्यानुशासन, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिये।

हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि जहां भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो हैं सो आचारादि भेदतें च्यारि प्रकार हैं—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातें सुलिंग नाहीं। ऐसे शिवमत का निरूपण किया।

मीमांसकमत निराकरण

अब मीमासक मतका स्वरूप कहिए हैं। मीमासक दोय प्रकार हैं—ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहां ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाही ऐसा वेदान्तविषें अद्वैत ब्रह्मको निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषै लय होना सो मुक्ति कहै हैं । सो इनिका मिथ्यापना पूर्वे दिखाया है सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्य-पना प्ररूपै हैं सो इन क्रियानिविषै रागादिकका सद्भाव पाइए है, तातें ए कार्य किछू कार्यकारी है नाही। बहुरि तहां 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहां भट्ट तो छह प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनु-मान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पाच ही प्रमाण मानै हैं। सो इनिका सत्यासत्यपना जैनशास्त्रनितें जानना। बहुरि तहा षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रका अन्नादिके त्यागि ते ग्रहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञो-पवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भगवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए है परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनके पाइए है। तातें ए भेष कार्यकारी नाही।

जैमिनीयमत निराकरण

बहुरि यहाँ ही जैमिनीयमत सम्भवे है, सो ऐसैं कहै है—

सर्वज्ञदेव कोई है नाही । नित्य वेद वचन हैं, तिनितैं यथार्थ निर्णय हो है । तातै पहले वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तो नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म,ताका साधन करना। जैसें कहैं हैं "स्वःकामोऽग्निं यजेत्" स्वर्ग अभिलाषी अग्निकों पूजै, इत्यादि निरूपण करे हैं ।

यहाँ पूछिए है–शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सब ही वेदकों मानें हैं, तुम भी मानो हो । तुम्हारै वा उन सबनिकै तत्त्वादि निरूपणविषैं परस्पर विरुद्धता पाईए है सो है कहा ? जो वेदही विषै कहीं किछू कही किछू निरूपण किया है, तो वाकी प्रमाणता कैसें रही ? अर जो मतवाले ही कही किछू कही किछू निरूपण करें हैं तो तुम परस्पर झगरिनिर्णय करि एकको वेदका अनुसारी अन्यकों वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो । सो हमको तो यहु भासै है,वेदहीविषै पूर्वापर विरुद्धतालिए निरूपण है । तिसतै ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहण करि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं । सो ऐसे वेदकों प्रमाण कैसें कीजिए है । बहुरि अग्नि पूजें स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय। ऐसैंही अन्य वेदवचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषैं ब्रह्मा कह्या है, सर्वज्ञ कैसे न मानें हैं। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

बौद्धमत निराकरण

अब बौद्ध मतका स्वरूप कहिए है–

बौद्धमतविषै च्यारिआर्यसत्य+प्ररूपं है। दु ख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहाँ ससारीकै स्कधरूप सो दु ख है। सो पाच प्रकार× है–विज्ञान, वेदना, सज्ञा, सस्कार, रूप। तहा रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दु खका अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो सज्ञा है, पढचा था सो याद करना सो सस्कार है, रूपका धारन सो रूप है॥। सो यहा विज्ञानादिको दु·ख कह्या सो मिथ्या है। दु खा तो काम क्रोधादिक हैं,ज्ञान दु ख नाही। यह तो प्रत्यक्ष देखिएहै। काहू कै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दु खीहै। काहूकै ज्ञान बहुत है,काम क्रोधादि स्तोक है वा नाही है सो सुखी है। तातै विज्ञानादिक दु ख नाही है। बहुरि आयतन बारह कहे है। पाँच तो इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पाँच विषय अर एक मन, एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबको कहै, इनिका कहा प्रयो-

+ दु खमायतन चैव ततः समुदयो मत।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ ३६॥

× दु ख ससारिण· स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिता.।
विज्ञान वेदना सज्ञा सस्कारोरूपमेव च॥ ३७॥ –वि० वि०

॥ रूप पचेन्द्रियाण्यर्था पचाविज्ञाप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादया॥ ७॥
वेदनानुभव: संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कधश्चतुर्भ्योन्ये सस्कारास्त इमे त्रयः॥१५॥
विज्ञान प्रति विज्ञप्ति...।

जन है ? बहुरि जातें रागादिकका गण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मोय है नाम जाका सो समुदाय है । तहां अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक माने इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाही । बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक है, ऐसी वासना सो मार्ग है सो प्रत्यक्ष बहुत काल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए हैं । तू कहैगा एक अवस्था न रहै है तो यहु हम भी मानै है । सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है । बहुरि तिस वस्तु ही का नाश मानै, यहु तो होता न दीसै है, हम कैसे मानें? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषै एक आत्मा का अस्तित्व भासै है । जो एक नाही है तो पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्ता कैसे मानै है । जो तू कहैगा संस्कारतें है तो संस्कार कौनके हैं । जाके हैं सो नित्य है कि क्षणिक है । नित्य है तो सर्व क्षणिक कैसे कहै है । क्षणिक है तो जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परम्परा कैसे कहै है । बहुरि सर्व क्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया । तू ऐसी वासनाको मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलको आप तो पावै ही नाही, काहेको इस मार्ग विषै प्रवर्तै । बहुरि तेरे मत विषै निरर्थक शास्त्र काहेको किए । उपदेश तो किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है । ऐसें यहु मार्ग मिथ्या है । बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताको मोक्ष कहै है । सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है । अर रागादिकका अभाव होना तो हम भी मानै हैं । अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तो आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसें हितकारी होय । हिताहितका विचार करनेवाला तो ज्ञान ही है । सो आपका अभावकों ज्ञान हित

कैसे मानें। बहुरि बौद्धमतविषै दोय प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितै जानना। बहुरि जो ए दोय ही प्रमाण हैं, तो इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही करि लेगे, तुम शास्त्र काहेको किए। बहुरि तहां सुगतकों देव मानै है सो ताका स्वरूप नग्न वा विक्रियारूप स्थापै है सो विडम्बनारूप है। बहुरि कमंडल रक्तांबर के धारी पूर्वान्हि विषै भोजन करै इत्यादि लिंगरूप बौद्धमतके भिक्षुक हैं सो क्षणिकको भेष धरनेका कहा प्रयोजन? परन्तु महतताके अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसे बौद्ध हैं ते च्यारि प्रकार है—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहां वैभाषिक तो ज्ञानसहित पदार्थको मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परै किछू नाही ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम हैं ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीकों मानै हैं। सो अपनी अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी बात नाही। ऐसे बौद्धमतका निरूपण किया।

चार्वाकमत निराकरण

अब चार्वाकमतका स्वरूप कहिये हैं—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाही वा पुण्य पाप का फल है नाही वा परलोक नाही, यह इन्द्रियगोचर जितना है सो ही लोक है, ऐसे चार्वाक कहै हैं सो तहां वाको पूछिए है—सर्वज्ञदेव इस कालक्षेत्र विषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाही। इस कालक्षेत्र

विषै तो हम भी नाही मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषै नाहीं ऐसा सर्वज्ञ बिना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ अर न जानै है तो निषेध कैसे करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक विषै प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तो सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसे होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुखी हो हैं। इनिको कैसे न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषै आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन हैं, काहूकै अधिक हैं तो जानिए है काहूकै इनिकी नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादि गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै हैं, तातै जानिए है काहूक सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसै जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पाप का फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तो भी दरिद्री रहै, कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तो भी रोगी रहै, काहूके बिना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है सो याका कारण कोई तो होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतै भासै है। व्यतरादिक है ते अवलोकिए है। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तो पवन है सो हम तो 'मैं हूँ' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीको आत्मा कहै हैं सो तू वाका नाम पवन कहि परन्तु पवन तो भीति आदिकरि अटकै है, आत्मा मूंद्या (बद) हुआ भी अटकै नाही, तातै पवन कैसे मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै है। सो तेरी इन्द्रियगोचर तो थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत काल

ऐसा क्षेत्र कालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातें परम्परातै सुनिए ही हैं, तातै सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसे कहै है?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै है कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिले चेतना होय आवै है। सो मरते पृथ्वी आदि यहाँ रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषै पृथ्वी आदि तो भिन्न भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड लोहू उश्वासादिककै जुदी जुदी चेतना होय। बहुरि हस्तादिक काटे जैसै वाकी साथि वर्णादिक रहै तैसे चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तो चेतनाकै है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहाँ ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषै पूर्वपर्याय का अहंपना मानना देखिए है सो कैसे हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषै खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसै तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै हैं। तहाँ शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुडावनेके अर्थि उपदेश दिया तो इनि कार्यनि विषै तो कषाय घटनेतै आकुलता घटै है तातै यहा ही सुखी होना हो है, बहुरि यश आदि हो है, तू इनिको छुडाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीवनिको सुहावती बाते कहि अपना

वा औरनिका बुरा करनेका भय नाहीं, स्वच्छन्द होय विषय सेवने के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसें चार्वाकमतका निरूपण किया।

अन्य मत निराकरण उपसंहार

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव है। बाह्य अभ्यतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगे विशेष लिखेंगे सो जानना।

यहाँ कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातै तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतको स्थापो हो, ताको कहिए हैं—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै तो रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है तो अन्यमत बुरे जैनमत भला ऐसा कैसे कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकों समान जानों, मतपक्ष काहेको करो हो।

याको कहिए है—बुराकों बुरा कहैं हैं,भलाको भला कहैं हैं, यामैं रागद्वेष कहा किया ? बहुरि बुरा भलाको समान जानना तो अज्ञान-भाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तो एक ही है तातैं

सर्वकों समान मानना।

ताकों कहिए है—जो प्रयोजन एक होय तो नानामत काहेकों कहिए। एक मतविषै तो एक प्रयोजन लिए अनेक प्रकार व्याख्यान हो है, ताको जुदा मत कौन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है सो दिखाईए है—

अन्य मतों से जैनमतकी तुलना

जैनमतविषै एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथानिविषै वा लोकादिका निरूपण विषै वा आचरणविषै वा तत्त्वनिविषैं जहाँ तहाँ वीतरागताकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषै सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातै कल्पित रचना कषायी जीव ही करै सो अनेक युक्ति बनाय कषायभाव ही को पोषै। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वको ब्रह्म माननेकरि अर सांख्यमति सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपको शुद्ध अकर्त्ता माननेकरि अर शिवमति तत्त्व जाननेहीतै सिद्धि होनी माननेंकरि, मीमांसक कषायजनित आचरणको धर्म माननेकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषै स्वच्छन्द होना ही पोषै हैं। यद्यपि कोई ठिकानै कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करै, तो उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै है। जैसे गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनके आश्रय अपने विषय कषाय पोषै। बहुरि जैनधर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतरागताहीको पोषै हैं सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमति भर्तृहरि

ताकूने वैराग्यप्रकरण विषै* ऐसा कह्या है—

> एको* रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
> नीरोगेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः ।
> दुर्वारस्मरवाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
> शेष कामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ॥१

या विषै सरागीनिविषै महादेवको प्रधान कह्या अर वीतरागी-निविषै जिनदेवको प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभाव-निविषै परस्पर प्रतिपक्षीपना है सो ये दोऊ भले नाहीं। इनिविषैं एक ही हितकारी है सो वीतराग भाव ही हितकारी है, जाके होतें तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना सब कहैं। सरागभाव होते तत्काल आकुलता होय निदनीक होय,आगामी बुरा होना भासै ताते जामे वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमे सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए है ऐसे अन्य-मत अनिष्ट हैं। इनिको समान कैसे मानिए। बहुरि वह कहै है—जो यहु तो साच परन्तु अन्यमतकी निन्दा किए अन्यमती दु:ख पावै, विरोध उपजै, तातैं काहेको निन्दा करिए। तहाँ कहिए है – जो हम

---

* रागी पुरुषो मे तो एक महादेव शोभित होता है,जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीरमे धारण कर रक्खा है और वीतरागियोमे जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोका सग छोडनेवाला दूसरा कोई नहीं है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोंके विषसे मूर्च्छितहुए हैं जो कामकी विडम्बनासे न तो विषयो को भली भाँति भोग ही सकते हैं और न छोड़ ही सकते है।

कषायकरि निन्दा करै वा औरनिकों दु.ख उपजावैं तो हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ होय, तातैं ससारविषै जीव दु खी होय, तातैं करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष दु ख पावै, विरोध उपजावै तो हम कहा करैं। जैसे मदिराकी निन्दाकरते कलाल दु ख पावै, कुशीलकी निन्दा करते वेश्यादिक दु ख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतैं ठग दु:ख पावै तो कहा करिए। ऐसे जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तो जीवनिका भला कैसे होय? ऐसा तो कोई उपदेश नाही, जाकरि सर्व ही चैन पावै। बहुरि वह विरोध उपजावै सो विरोध तो परस्पर हो है। हम लरैं नाही, वे आप ही उपशांत होय जायगे। हमको तो हमारे परिणामोका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किए मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसें मिथ्यादर्शनादिक होय ?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषै विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै तो वीतरागभाव भए ही महतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाही अर अपनी महतता चाहैं, तिनि सरागभाव होते महतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपणकरि जीव अजीवका अर स्वछन्दवृत्ति पोषनेकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका

अयथार्थ श्रद्धानकों पोषै हैं। तातै अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै तो तत्त्वश्रद्धानविषै रुचिवंत होय, उनकी युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्यमतनिका निरूपण किया।

अन्यमत के ग्रन्थोद्धरणोंसे जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकीही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है —

बडा योगवाशिष्ट छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहाँ अहंकार निषेध अध्यायविषै वशिष्ट अर रामका संवादविषै ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा* ॥१॥"

या विषै रामजी जिनसमान होनेकी इच्छा करी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषै कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।"

---

* अर्थात् मै राम नाही हूँ, मेरी कुछ इच्छा नही है और भावो वा पदार्थों मे मेरा मन नही है। मै तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामें ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूँ।

यहाँ भगवत का नाम जैनमार्गविषै रत अर जैन कह्या, सो यामें जैनमार्गको प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि 'वैशपायनसहस्र नाम' विषै कह्या है —

"कालनेमिर्म्महा वीर शूरः शौरिर्जिनेश्वरः।"

यहाँ भगवान्का नाम जिनेश्वर कह्या, तातै जिनेश्वर भगवान हैं। बहुरि दुर्व्वासाऋषिकृत 'महिम्निस्तोत्र' विषै ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिररिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।

कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धःशिवस्त्वं गुरुः॥१॥

यहाँ 'अरहत तुमहो' ऐसैं भगवत की स्तुति करी, तातै अरहतकै भगवतपनो प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषै ऐसे कह्या है—

"य शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः

सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथःप्रभु* ॥१॥'

यहाँ छहो मतनिविषै एक ईश्वर कह्या तहाँ अरहतदेवकै भी ईश्वरपना प्रगट किया।

---

* यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमे बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमासक कर्म कह कर उपासना करते हैं,वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथोको सफल करे।

यहाँ कोऊ कहै, जैसे यहाँ सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसें तुम भी मानो।

ताकों कहिए है-- तुमने यह कह्या है, हम तो न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषै अरहतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषै भी ऐसे ही कहैं तो हम भी शिवादिकको ईश्वर मानै। जैसे कोई व्यापारी साचा रत्न दिखावै, कोई झूठा रत्न दिखावै। तहाँ झूठा रत्नवाला तो रत्ननिको समान मोल लेने के अर्थि समान कहै। साचा रत्न-वाला कैसे समान मानै ? तैसे जैनी साचा देवादिकों निरूपै, अन्यमती झूठा निरूपै। तहाँ अन्यमती अपनो समान महिमाके अर्थि सर्वकों समान कहै—जैनी कैसे मानै ? बहुरि 'रुद्रयामलतन्त्र' विषै भवानी-सहस्रनामविषै ऐसे कह्या है—

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"

यहाँ भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातैं जिनका उत्तम-पना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण' विषै ऐसे कह्या है--

"जैनं पशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषै ऐसा कह्या है--

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति स्याद्वादिन १।"

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषै जैन निरूपण है, तातैं जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषै ऋषभावतार

१—प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिनः' इति खरडा प्रतौ पाठः।

का वर्णन ❀ है। तहाँ यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी **सर्वाश्रम** करि पूजित कह्या है, ताके अनुसारि अरहत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहै है। सो जैसे राम कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत तसै ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसै तुम्हारे मतहीकरि **जैन** प्रमाण भया। यहा इतना विचार और किया चाहिये---कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्तिहो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहा दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्र विषै-- "**बद्ध्वा-पद्मासनं यो नयनयुगमिद न्यस्य नासाग्रदेशे**" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखडविषै देवदास राजाने सम्बोधि राज्य छुडायो। तहाँ नारायण तो विनयकीत्ति यती भया,लक्ष्मीको विनयश्री आर्यिका करी, गरुडको श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहा सम्बोधन करना भया तहा जैनी भेष बनाया। तातै जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है--

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥

❀ भागवत स्कध ५ अ० ५, २९

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्व पापप्रणाशक ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रद ॥३॥"

यहाँ वामनको पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटीयज्ञका फल कह्या सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरचा। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहाँ नेमिनाथको जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानको ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या अर युगादिके स्थानको भी ऐसाही कह्या, तातैं उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषै भवावताररहस्यविषै ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारन्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वत. ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥"

यहाँ 'अर्हं' ऐसे पदकों परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषैं कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रै. यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥१॥"

यहाँ कृतयुगविषै दश ब्राह्मणो को भोजन कराएका जेता फल कह्या,तेता फल कलियुगविषै अर्हंतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातै जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषैं ऐसा कह्या है—

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहन ।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमा ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरक्रम ॥२॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृत ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिन ॥३॥"

यहाँ विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषै कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहा प्रथमजिन युगकी आदिविषै मार्गका दर्शक अर सुरासुरकरि पूजित कह्या, सो ऐसैं ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतै है अर प्रमाणभूत कैसे न कहिए। बहुरि ऋगवेदविषै ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्न येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषै ऐसा कह्या है–

ॐ नमो अर्हंतो ऋषभाय । बहुरि ऐसा कह्या है–

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति । अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु । दीर्घायुस्त्वायुवलायुर्वा शुभजाताय । ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा । वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा *।

सो यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजनादि कह्या। बहुरि यहाँ यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसे अन्यमत के ग्रथनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमतको देखें वे मत कल्पित ही भासै। तातैं जो अपना हित का इच्छुक होय सो पक्षपात छोरि सांचा जैनधर्मकों अंगीकार करो। बहुरि अन्यमतनिविषै पूर्वापर विरोध भासै है। पहले अवतार वेदका उद्धार किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धावतार यज्ञ का निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्री रमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया। सो अब यह संसारी कौनका कह्या करे, कौनके

* यजुर्वेद अ० २५ म० १६ अष्ठ १६ अ० ६ वर्ग १

अनुसारि प्रवर्त्तें अर इन सब अवतारनिकों एक बतावै सो एक ही कदाचित् कैसे कदाचित् कैसे कहै वा प्रवर्त्तें तो याकै उनके कहने की वा प्रवर्त्तने की प्रतीति कैसे आवै ? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करें, कहीं लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहाँ प्रारब्ध बतावें सो बिना क्रोधादि भए आपही तैं लरना आदि कार्य होय तो यहु भी मानिए सो तो होय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य करते क्रोधादि भए न मानिए तो जुदे ही क्रोधादि कौन हैं जिनका निषेध किया। तातें बनै नाहीं, पूर्वापर विरोध है। गीतानिविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश दिया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावै, सो ऐसा क्रोध किए निंद्यपना कैसे न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिनास्ति" ऐसा भी कहै अर भारत विषै ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥१॥

यहां कुमार ब्रह्मचारीनिकों स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥१॥
वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरे।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥

चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत् चान्द्रायणशतैरपि ॥३॥

इन विषै मद्य मासादिकका वा रात्रिभोजन का वा चौमासे में विशेषपने रात्रिभोजनका वा कदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बडे पुरुषनिकै मद्यमासादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादि विषैं रात्रि-भोजन स्थापै वा कदादि भक्षण स्थापै, ऐसै विरुद्ध निरूपै हैं । ऐसै ही अनेक पूर्वापर विरुद्ध वचन अन्यमत के शास्त्र विषे हैं । सो करे कहा । कही तो पूर्वपरम्परा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कही विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या । सो जहाँ पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसै करिए । इहा जो अन्यमत-निविषै क्षमा शील सन्तोषादिकको पोषते वचन हैं सो तो जैनमत-विषै पाइए हैं अर विपरीत वचन है सो उनका कल्पित है । जिनमत अनुसारि वचननिका विश्वासतै उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातै अन्यमतका कोऊ अग भला देखि भी तहा श्रद्धाना-दिक न करना । जैसै विषमिश्रित भोजन हितकारी नाही तैसे जानना । बहुरि जो कोई उत्तम धर्मका अग जिनमतविषै न पाईए अर अन्यमत में पाईए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अग जैनमत विषै पाईए अर अन्यत्र न पाईए, तो अन्यमतको आदरो सो सर्वथा होय नाही । जातै सर्वज्ञका ज्ञानतें किछू छिपा नाही है । तातै अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ श्रद्धानादिक करना । बहुरि कालदोषतें कषायी जीवनिकरि जिनमतविषै भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाईए है—

श्वेताम्बर मत निराकरण

श्वेताम्बरमतवाले काहूने सूत्र बनाए,तिनको गणधरके किए कहैं हैं। सो उनकों पूछिए है–गणधरने आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थ कि घना प्रमाण लिए किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तो तुम्हारे शास्त्रनि विषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा ? जो विभक्ति का अंतको पद कहोगे, तो कहे प्रमाणतै बहुत पद होय जायगे अर जो प्रमाणपद कहोगे, तो तिस एकपद के साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र है, सो बनै नाही। बहुरि आचारांगादिकतै दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसे बनै ? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बडे थे, कालदोष जानि तिनहीमेसो केतेक सूत्र काढि ए शास्त्र बनाए हैं। तो प्रथम तो टूटकग्रन्थ प्रमाण नाही। बहुरि यह प्रबन्ध है, जो बडा ग्रंथ बनावै तो वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिए करै अर छोटा ग्रन्थ बनावै तो तहाँ सक्षेप वर्णन करै परन्तु सम्बन्ध टूटै नाही। अर कोई बडा ग्रन्थ मे थोरासा कथन काढि लीजिए, तो तहाँ सम्बन्ध मिलै नाही–कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तो कथादिकका भी सम्बन्ध मिलता भासै है–टूटकपना भासै नाही। बहुरि अन्य कवीनितैं गणधरकी तो बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमें थोरे शब्द में बहुत अर्थ चाहिए सो तो अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसे धरैं नाही 'जो

अमुक कहै है', 'मैं कहूँ हूँ' ऐसा कहै । सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गौतम' वा 'गौतम कहै है' ऐसे वचन हैं। सो ऐसे वचन तो तब ही सम्भवें जब और कोई कर्त्ता होय। तातैं यह सूत्र गणधरकृत नाहीं, और के किए हैं। गणधर का नामकरि कल्पितरचना को प्रमाण कराया चाहै है। सो विवेकी तो परीक्षाकरि मानै, कह्या ही तो न मानै।

बहुरि वह ऐसा भी कहै है—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ए सूत्र बनाए हैं । तहाँ पूछिए है—जो नए ग्रन्थ बनाए है तो नवा नाम धरना था, अगादिकके नाम काहेको धरे। जैसें कोई बडा साहूकारकी कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसे यह कार्य भया। सांचेको तो जैसें दिगम्बर-विषेग्रन्थनिके और नाम धरे अर अनुसारी पूर्व ग्रन्थनिका कह्या, तैसें कहना योग्य था। अगादिकका नाम धरि गणधर कृत का भ्रम काहे को उपजाया। तातै गणधर के पूर्वाधारी के वचन नाही। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास अनावनेके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तो साच है ही, दिगम्बर भी तैसं ही कहैं हैं । बहुरि जो कल्पित रचना करी है तामे पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमें विरुद्ध-पनो भासै है, सो ही दिखाईए है—

अन्य लिंग से मुक्ति का निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चाडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिकी प्राप्ति होनी मानै हैं सो बनै नाही । सम्यग्दर्शन

ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो ऐसा कहै हैं—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥

सो अन्य लिंगीकै अरहन्तदेव, साधु, गुरु, जिन प्रणीततत्त्व का मानना कैसै सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसे होय। जो कहोगे अंतरंग विषै श्रद्धान होनेतैं सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारककी प्रशमादिक किए भी सम्यक्त्वको अतीचार कह्या है सो साचा श्रद्धान भए पीछे आप विपरीत लिंगका धारक कैसे रहै। श्रद्धान भए पीछे महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंग विषै कैसे बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तो जैन लिंग अन्य लिंग समान भया तातैं अन्य लिंगीको मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थको मोक्ष कहै सो हिंसादिक सर्व सावद्ययोगका त्याग किए सामायिकचारित्र होय सो सर्वसावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनो कैसे सम्भवै? जो कहोगे—अंतरंग त्याग भया है तो यहाँ तो तीनों योगकरि त्याग करै है, कायकरि त्याग कैसे भया? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखे भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषै तो बाह्य त्याग करनेकी ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय। महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न हो है, तो तब मोक्ष कैसे होय? तातैं गृहस्थका मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

स्त्री मुक्ति का निषेध

बहुरि स्त्रीको मोक्ष कहै, सो जाकरि सप्तम नरक गमन योग्य पाप

न होय सकै, ताकरि मोक्ष का कारण शुद्ध भाव कैसें होय ? जातें जाके भाव दृढ होंय,सोही उत्कृष्ट पाप वा धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकांतविषै ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाही। जो कहोगे,एक समयविषै पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीको सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीकों मोक्ष मानिए है। सो यहां ए भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानैं ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुषस्त्रीवेदी तो लोकविषैं प्रचुर दीसैं है, नपुंसक तो कोई विरला दीसै है। एक समयविषै मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवैं ? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनैं नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवम गुणस्थानताई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदहवां गुण-स्थान पर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्र मुक्ति का निषेध

बहुरि शूद्रनिको मोक्ष कहैं। सो चांडालादिककों गृहस्थ सन्माना-दिककरि दानादिक कैसे दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंके उत्तम परिणाम न होय सकै। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढे बिना मोक्ष कैसैं होय। जो कहोगे-संयम धारे पीछै वाकै उच्चगोत्रही का उदय कहिए, तो संयम धारने न धारने की अपेक्षातैं नीच उच्च गोत्र का उदय ठहरया। ऐसे होते असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिनकै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय

कहोगे तो बांडालादिकके भी कुल अपेक्षा ही नीच गोत्र का उदय कहो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमे पूर्वापर विरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसे तिनहूने सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही,सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पित-मतको प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरों का निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै हैं। सो कहैं है—हुण्डावसर्प्पिणीके निमित्ततै भए हैं, इनको छेडने नाही। सो काल-दोषतै केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तो न होय। जो प्रमाण विरुद्ध भी होय, तो आकाशके फूल, गधे के सीग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाही। वे अछेरा कहै है सो प्रमाण विरुद्ध है। काहेतै सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषै रहे,पीछै क्षत्रियाणी के गर्भ विषै बधे,ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरथा प्रत्यक्ष भासै नाही, उन्मानादिकमे आवै नाही। बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तो गर्भकल्याणक काहूके घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके घरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्टयादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भए। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहूकै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तो दोय भई अर पिता तो एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया,अन्य

कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाहीं। बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै। तो वैष्णव जैसे अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावै हैं, तैसे यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट काल विषै तो ऐसे होय ही नाही, तहाँ होना कैसे सम्भवै? तातै यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लि तीर्थंकरको कन्या कहै हैं। सो मुनि देवादिककी सभा विषै स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भव, वा स्त्रीपर्याय हीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै। बहुरि तीर्थंकरकै नग्न लिंग ही कहै हैं सो स्त्रीकै नग्नपनो न सम्भवै। इत्यादि विचार किए असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियांको नरक गया कहैं। सो बंध वर्णन विषै तो भोगभूमियांकै देवगति देवायुहीका बंध कहैं, नरक कैसे गया? सिद्धान्त विषै तो अनन्तकाल विषै जो बात होय, सो भी कहैं। जैसे तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियाकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूले तो नाही। तातै यहु मिथ्या है। ऐसे सर्व अछेरे असम्भव जानने। बहुरि वे कहै है इनकों छेड़ने नाही सो झूठ कहनेवाला ऐसे ही कहै।

बहुरि जो कहोगे—दिगम्बरविषै जैसे तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मान भंग इत्यादि कार्य कालदोषतै भया कहै हैं, तैसे ए भी भए। सो ये कार्य तो प्रमाण विरुद्ध नाही। अन्यकै होते थे सो महतनिकै भए

तातैं काल दोष कह्या है । गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितै विरुद्ध, तिनका होना कैसे सम्भवै ? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं। जैसे कहै हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मन ही ते प्रश्न करै हैं, केवली मनहीतै उत्तर दे हैं। सो सामान्य जीव के मन की बात मन पर्ययज्ञानी विना जानि सकै नाही । केवलीके मन की सर्वार्थसिद्धिके देव कैसे जानै ? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया । तातै मिथ्या है । ऐसै अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए है, तातै तिनके आगम कल्पित जानने ।

केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि ते श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपै है । तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहै । सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतै, क्षुधादिक दोष होते आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसे बनै ? बहुरि जो कहोगे, शरीरको क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तो क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेको ग्रहण किया कहो हो । क्षुधादिकरि पीडित होय, तब ही आहार ग्रहण करै । बहुरि कहोगे, जैसै कर्मोदयतै विहार हो है, तैसै ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय ते हो है अर पीडाका उपाय नाही अर बिना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतै नाही, क्षुधाकरि पीडित भए ही ग्रहण करै है । बहुरि आत्मा पवनादिकको प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातै विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे—

सातावेदनीयके उदयतें आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाही। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछें आहारादिक ग्रहणतें सुख मानै, ताकै आहारादिक साताके उदयतें कहिए। आहारादिकका ग्रहण साता वेदनीयका उदयतै स्वयमेव होय,ऐसै तो है नाही। जो ऐसें होय तो सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है,ते निरन्तर आहार क्यो न करें। बहुरि महामुनि उपवासादि करें, तिनकै साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालो कै असाताका भी उदय सम्भवै। तातें जैसें बिना इच्छा विहायोगतिके उदयतें विहार सम्भवै, तैसै बिना इच्छा केवल सातावेदनीय ही के उदयतें आहारका ग्रहण सम्भवै नाहीं।

बहुरि वे कहै है सिद्धान्त विषे केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै है, तातै तिनकै क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक बिना तिनकी उपशातता कैसै होय,तातै तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान—कर्मप्रकृतिनिका उदय मद तीव्र भेद लिए हो है। तहाँ अतिमद उदय होते तिस उदयजनित कार्यको व्यक्तता भासै नाही। तातें मुख्यपने अभाव कहिए, तारतम्यविषै सद्भाव कहिए। जैसें नवम गुणस्थान विषै वेदादिकका उदय मन्द है, तहा मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाही, तातें तहाँ ब्रह्मचर्य्य हो कह्या। तारतम्य विषैं मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसे केवलीकै असाताका उदय अति मद है। जातें एक एक काडकविषै अनन्तवें भाग अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभागकांडकनि करि वा गुणसक्रमणादिककरि सत्ता विषैं असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मद भया, ताका उदय विषै क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै। अर मोहके अभावतें

क्षुधादिक जनित दुःख भी नाही, तातैं क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषै तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तै कह्या—आहारादिक बिना तिनकी उपशातता कैसे होय, सो आहारादिकरि उपशात होने योग्य क्षुधा लागै तो मन्द उदय काहेका रह्या? देव भोगभूमिया आदिकक किंचित् मद उदय होतैं ही बहुत काल पीछै किंचित् आहार ग्रहण हो है तो इनकै तो अतिमद उदय भया है, तातै इनकै आहारका अभाव सम्भवै है।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोका तो शरीर ही वसा है जाकों भूख थोरी वा घने काल पोछे लागै, इनिका तो शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातै इनिका शरीर आहार विना देशोनकोडि पूर्व-पर्यन्त उत्कृष्टपने कैसे रहै?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मके ही निमित्तै है। यहां केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकी भूख प्रगट होती ही नाही। जैसे केवलज्ञान भए पहले केश नख बधै थे, अब बधै (बढे) नाही। छाया होती थी सो होती नाही। शरीर विषै निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसे शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसे आहार बिना ही शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। प्रत्यक्ष देखो, औरनिको जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातै अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाही। बहुरि जो तू कहैगा—देवादिकके आहार ही ऐसा है जाकरि बहुत कालकी भूख मिटै, इनिकै

भूख काहे तै मिटी अर शरीर पुष्ट कैसे रह्या ? तो सुनि, असाताका उदय मंद होनेतै मिटी अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण हो है सो वह नो कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाही वा शरीर शिथिल होय नाही। सिद्धान्तविषै याहीकी अपेक्षा केवलीको आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तो शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाही। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय, कोऊ बहुत आहार ग्रहै, शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत काल ताई आहार न ले, शरीर पुष्ट रह्या करै वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करै, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तो सर्वोत्कृष्टपना है, उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तो कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसै आहारको जांय, कैसै याचै।

बहुरि वे आहारको जांय, तब समवशरण खाली कैसे रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहराओगे तो कौन ल्याय दें, उनके मन की कौन जानै। पूर्वं उपवासादिकको प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसे निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वप्रतिभासै, कैसे आहार ग्रहै ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वे कहै हैं—आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकों दीसै नाही। सो आहार ग्रहणको निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषै लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या अर और न देखै हैं तो कहा भया। ऐसै अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो—केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादिक भया कहै हैं अर कहैं, काहूने तेजो लेश्या छोरी, ताकरि

वर्द्धमानस्वामीकै पेटूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा । सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तो इन्द्रादिकरि पूज्यपना कैसैं शोभै । बहुरि नीहार कैसे करै, कहाँ करै, कोऊ सभवती बातै नाही । बहुरि जैसे रागादि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसे केवलीकै क्रिया ठहरावे हैं । वर्द्धमान स्वामीका उपदेश विषै 'हे गौतम' ऐसा बारबार कहना ठहरावे है, सो उनकै तो अपना कालविषै सहज दिव्यध्वनि हो है, तहाँ सर्वको उपदेश हो है, गौतमको सबोधन कैसे बनै ? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावे हैं, सो अनुराग बिना वदना सभवै नाही । बहुरि गुणाधिकको वदना सभवै, उन सेती कोई गुणा धिक रह्या नाही । सो कैसे बनै ? बहुरि हाटिविषै समवसरण उतरया कहै, सो इन्द्रकृत समवसरण हाटिविषै कैसे रहै ? इतनी रचना तहाँ कैसे समावै । बहुरि हाटि विषै काहेको रहै ? कहा इन्द्र हाटि सारिखी रचना करनेको भी समर्थ नाही, जातै हाटिका आश्रय लीजिए । बहुरि कहैं—केवली उपदेश देनेको गए । सो घरि जाय उपदेश देना अति रागतै होय, सो मुनिकै भी सभवै नाही । केवलीकै कैसे बनै ? ऐसै ही अनेक विपरीतता तहा प्ररूपै है । केवली शुद्ध केवलज्ञानदर्शनमय रागादि रहित भए है, तिनकै अघातिनिके उदयतै सभवती क्रिया कोई हो है । केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है तातै उपयोग मिले जो क्रिया होय सकै, सो सभवै नाही । पाप प्रकृतिका अनुभाग अत्यत मद भया है । ऐसा मद अनुभाग अन्य कोईकै नाही । तातै अन्यजीवनिकै पापउदयतै जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै

न होय। ऐसे केवली भगवानके सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्भाव कहि देवका स्वरूपको अन्यथा प्ररूपै हैं।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरूका स्वरूपको अन्यथा प्ररूपै हैं। मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण ❀ कहै हैं। सो हम पूछे है, मुनिको निर्ग्रंथ कहै अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करें, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह है कि नाही। जो है तो त्याग किए पीछे काहेको राखे अर नाही हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखे ताको भी परिग्रह मति कहो। सुवर्णादिकहीको परिग्रह कहो। बहुरि जो कहोगे, जैसे क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसे शीत उष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अंगीकार करतें आहारका त्याग किया नाही, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तो सग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाइये सो परिग्रह नाही। अर वस्त्रादिकका सग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीरको स्थितिके अर्थि वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाही है, तातें इनिको परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषै तो जब सम्यग्दृष्टि भया तबही समस्त परद्रव्यविषै ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षाते चौथा गुणस्थान ही परिग्रह

❀ पात्र १ पात्रबन्ध २ पात्र वसरिकर ३ पटलिकाएं ४—५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपडे १०—११ एक ऊनी कपडा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो बृहत्क० सु० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

रहित कहो। अर प्रवृत्तिविषै ममत्व नाही तो कैसें ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटेगा, तब ही नि परिग्रह होगा। बहुरि कहोगे – वस्त्रादिककों कोई लेय जाय तो क्रोध न करै वा क्षुधादिक लागै तो वे बेचै नाही वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करै नाही, परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधै हैं तातैं ममत्व नाही। सो बाह्य क्रोध मति करो परन्तु जाका ग्रहण विषैं इष्ट बुद्धि होय तो ताका वियोगविषैं अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई तो ताके अर्थि याचना काहेको करिए है ? बहुरि बेचते नाही, सो धातु राखनेतं अपनी हीनता जानि नाही बेचिए है। जैसे धनादि राखने तैसे ही वस्त्रादि राखने। लोकविषैं परिग्रहके चाहक जीवनिकै दोउनिकी इच्छा है। तातैं चोरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनही तै परिग्रहपना न होय। जो काहूको बहुत शीत लागेगा सो सोडि राखि परिणामनिकी थिरता करेगा अर धर्मसाधेगा तो वाको भी नि परिग्रह कहो। ऐसै गृहस्थधर्म मुनिधर्म विषै विशेष कहा रहेगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसे न होय। सो व्याकुलता तो मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषै तीन चौकडीका उदय नाहीं अर सज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाही, देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाही।

जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकै सम्यक्मोहनीय का उदय है सो सम्यक्त्वकों घात न करि सकै तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकों व्याकुल करि सकै नाही। अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाही। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है। तातै औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित् न होंय। तातै जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करै। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखै नाही। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषै चौदह उपकरणमुनि राखैं, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषै कह्या है, दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषै तो कहे नाही। तहाँ तो लंगोटमात्र परिग्रह रहे भी ग्यारही प्रतिमा का धारकको श्रावक ही कह्या। सो अब यहा विचारो, दोऊनिमे कल्पित वचन कौन है? प्रथम तो कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनो प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बरविषै वस्त्रादि राखें धर्म होय ही नाही, ऐसा तो न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बर विषै मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जाने नीची क्रिया होतें उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेकरि आपकों वस्त्रादि राखते भी लोक मुनि मानने लागे, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिको सुगमक्रियाविषै उच्चपद का होना दिखाया, तातै घनें लोक लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसें ही भए हैं। तातें कषायी होइ वस्त्रादि होतें मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त

युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातै ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे—दिगम्बरविषै भी शास्त्र पीछी आदि उपकरण मुनिके कहे हैं, तैसै हमारै चौदह उपकरण कहे है।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहाँ शीतादिककी वेदना दूरि करनेतै उपकरण ठहराईए, तो सर्व-परिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषै इनिका कहा प्रयोजन? ए तो पापके कारण है। धर्मविषै तो धर्मका उपकारी जे होंय तिनका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानको कारण, पीछी दयाकौं कारण, कमंडलु शौचको कारण, सो ए तो धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसै धर्मके उपकारी होय? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनो जो शास्त्र राखि महतता दिखावै, पीछीकरि बुहारी दे, कमडलुकरि जलादिक पीवै वा मैल उतारै, तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही है। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाही। तातै धर्मके साधनको परिग्रह सज्ञा नाही। भोगके साधनको परिग्रह सज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे—कमडलुतै तो शरीरहीका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमडलु नाही राखै है। शास्त्र बाचना आदि कार्य करै अर मललिप्त होय तो तिनका अविनय होय, लोकनिद्य होय, तातै इस धर्मके अर्थि कमडलु राखिए हैं। ऐसे पीछी आदि उपकरण सम्भवै, वस्त्रादिकों उपकरण सज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतै विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जाय तातैं विकार ढांकनेकों वा शीतादि मिटावनेकों वस्त्रादिक राखै अर मानके उदयते अपनी महंतता भी चाहैं तातैं

कल्पितयुक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावे हैं। सो प्रथम तो यह पूछिए है, याचना धर्म का अंग है कि पापका अंग है। जो धर्मका अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है तो मुनिकै कैसे सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचैं तो पाप होय, यहु तो धर्म साधनके अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै हैं तातै आहारादिक याचै है।

ताका समाधान—आहारादिककरि धम होता नाही, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अति लोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेको मागता। वे ही देते तो देते, न देते तो न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहाँ ही पाप भया, तब मुनि-धर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधेगा। अब वह कहै है—मनविषै तो आहारकी इच्छा होय अर याचै नाही तो मायाकषाय भया अर याचनेमे हीनता आवै है सो गर्वकरि याचै नाही तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मागि लिया। यामे अति लोभ कहा भया अर यातै मुनिधर्म कैसे नष्ट भया सो कहो। याको कहिए है—

जैसे काहू व्यापारीकै कुमावनेकी इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तो बैठे अर मनविषै व्यापारकरनेकी इच्छा भी है परन्तु काहू-को वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाही करै है। स्वयमेव कोई आवै तो अपनी विधि मिले व्यापार करै है तो ताकै लोभकी मदता है, माया वा मान नाही है। माया मानकषाय तो तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो

जैसे व्यापारीके ऐसा प्रयोजन नाहीं तातैं वाकै माया मान न कहिए। तैसैं मुनिनकै आहारादिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेको आवैं अर मनविषैं आहार लेनेकी इच्छा भी है परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै हैं। स्वयमेव कोई दे तो अपनी विधि मिले आहार ले हैं तो उनकै लोभकी मदता है, माया वा मान नाही है। माया मान तो तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महतताके अर्थि ऐसा स्वांग करैं। सो मुनिनकै ऐसे प्रयोजन हैं नाही तातै इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसे ही माया मान होय तो जे मनहीकरि पाप करैं वचनकायकरि न करे, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति अंगीकार नाही करै हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसैं अनर्थ होय! बहुरि तै कह्या—"आहार मागनेमें अतिलोभ कहा भया? सो अतिकषाय होय तब लोकनिद्य कार्य अगीकारकरिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मागना लोकनिद्य है, ताकों भी अगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातै यहाँ अति लोभ भया। बहुरि तै कह्या-"मुनि धर्म कैसे नष्ट भया" सो मुनि धर्म विषैं ऐसी तीव्र कषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहार देनेका परिणाम न था, यानै वाका घर में जाय याचना करी। तहाँ वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होनेका भय भया तातै वाकों आहार दिया। सो वाका अन्तरग प्राण पीडनेतैं हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमे न जाते, उसही के देने का उपाय होता तो देता, वाकै हर्ष होता। यहु तो दबाय करि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है सो

पापरूप है । सो यहां असत्य वचन भी भया । बहुरि वाकै देनेकी इच्छा न थी, वानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातैं दिया नाहीं—संकुचिकरि दिया । तातै अदत्त-ग्रहण भी भया । बहुरि गृहस्थके घर में स्त्री जैसे तैसैं तिष्ठै थी,यहु चल्या गया । तहाँ ब्रह्मचर्यकी वाड़िका भंग भया । बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या । आहारादि के राखनेकों पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया । ऐसे पाँच महाव्रतनिका भग होनेतै मुनिधर्म नष्ट हो है तातै याचनाकरि आहार लेना मुनिका युक्त नाही ।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचना परीषह कही है, सो मागे बिना तिस परीषहका सहना कैसें होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचना परीषह नाहीं है । याचना न करनी, ताका नाम याचनापरीषह है । जातै अरति करनेका नाम अरति परीषह नाही, अरति न करनेका नाम अरति परीषह है, तैसे जानना । जो याचना करना परीषह ठहरै, तो रंकादि घनी याचना करै हैं,तिनकै घना धर्म होय । अर कहोगे, मान घटावनेतै याकों परीषह कहें हैं तो कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरै भी पापी ही होय । जैसै कोई लोभके अर्थि अपना अपमानकों भी न गिनै, तो वाकै लोभकी तीव्रता है । उस अपमान करावनेतै भी महा-पाप होय है । अर आपकै इच्छा किछू नाहीं, कोई स्वयमेव अपमान करै है तो वाकै महाधर्म है । सो यहां तो भोजनका लोभके अर्थि याचना करि अपमान कराया तातैं पाप ही है, धर्म नाही । बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग

नाहीं है, शरीर सुखका कारण है । तातै पूर्वोक्त प्रकार ताका निषेध जानना। देखो अपना धर्मरूप उच्चपदको याचना करि नीचा करै हैं सो यामें धर्मकी हीनता हो है। इत्यादि अनेक प्रकार करि मुनि धर्म विषैं याचना आदि नाही सम्भवै है। सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरू कहै हैं। तातै गुरूका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्म का अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है, सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपै हैं। सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तो प्रधानता नाही। आप जैसै अरहत देव साधु गुरू दया धर्मको निरूपै है, तिनका श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै है। सो प्रथम तो अरहतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं। बहुरि इतने ही श्रद्धानतै तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व कैसै होय, तातै मिथ्या कहै है। बहुरि तत्त्वनिका भी श्रद्धानको सम्यक्त्व कहै हैं तो प्रयोजन लिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाही कहै हैं। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीव का, अणुस्कधादिरूप अजीवका, पाप पुण्यके स्थाननिका, अविरति आदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होने के लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसें उनके शास्त्र विषैं कह्या है, तैसै सीखि लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसै तत्त्वार्थश्रद्धानकरि सम्यक्त्व भया मानै हैं। सो हम पूछे है, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तो वाकों

मिथ्यादृष्टी काहेको कहिए। अर न हो है, तो वानैं तो जैनलिंग धर्मं बुद्धि करि धरया है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसे नाही भई ? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है,सो वानैं जीवादिके भेद कैसें न जानें। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमें नाही, ताकै अरहंत वचनकी कैसें प्रतीति नाही भई। तातै वाकै ऐसा श्रद्धान तो होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियां तिर्यंच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाही अर तिनिकै बहुत कालपर्यंत सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाही हो है, तौ भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाही। साँचा स्वरूप है, सो आगे वर्णन करेंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकों सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कह्या, असयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकों सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाही, साचा स्वरूप आगे कहेंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने करि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तो व्रतादिका स्वरूप अन्यथा कहै, सो किछू पूर्वै गुरू वर्णन विषै कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै महाव्रत होते भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतकै अनुसारि गृहस्थादिककै महाव्रत आदि बिना अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है,तातै यह स्वरूप नाही। सांचा स्वरूप अन्य है,सो आगे कहेंगे।

यहां वे कहै हैं—द्रव्यलिंगीकै अंतरंग विषै पूर्वोक्त श्रद्धानादिक

न भए, बाह्य ही भए, तातैं सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अंतरंग नाही अर बाह्य धारै, सो तो कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसें जाय, नरकादि विषैं जाय। बंध तो अंतरग परिणामनितै ही है। सो अतरग जिनधर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाही। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतै देवका बध मानै अर याहीको मोक्षमार्ग मानै, सो बंध-मार्ग मोक्षमार्गकों एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहार धर्म विषैं अनेक विपरीति निरूपैं हैं। निंदकको मारनेमे पाप नाही, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके होते भी भए, तिनको इन्द्रादिक मारे नाही। सो पाप न होता, तो इन्द्रादिक क्यो न मारे। बहुरि प्रतिमाजीकै आभरणादि बनावै हैं, सो प्रतिबिम्ब तो वीतराग भाव बधावनेकों कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्य मतकी मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ ताँई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करैं हैं। या प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शन आदिकका अन्यथा निरूपणतै मिथ्यादर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातैं याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढक मत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषै ही ढूंढिए प्रगट भए हैं, ते आपकों सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतै सो कहिए है—

केई तो भेष धारि साधु कहावै हैं, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाही भासै है। बहुरि देखो मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग

करनेकी प्रतिज्ञा करैं, पीछें पालैं नाहीं । बालककों वा भोलाकों वा शूद्रादिककों ही दीक्षा दें । सो ऐसे त्याग करैं अर त्याग करतें ही किछू विचार न करे, जो कहा त्याग करू हूं । पीछे पालैं भी नाहीं अर ताकों सर्व साधु मानें । बहुरि यह कहै—पीछे धर्म बुद्धि हो जाय, तब तो याका भला हो है । सो पहले ही दीक्षा देनेवालेने प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञा कराई, बहुरि यानै प्रतिज्ञा अंगीकार करि भंग करी, सो यहु पाप कौनकों लाग्या । पीछे धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा । बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकार करि यथार्थ न पालै, ताकों साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए,तो जे साधु मुनि नाम धरावै हैं अर भ्रष्ट हैं,तिन सबनिको साधु मानो । न मानिए,तो इनकै साधु-पना न रह्या । तुम जैसे आचरणते साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ बिरलाकै पाईए है । सबनिकों साधु काहेको मानो हो ।

यहां कोऊ कहै—हम तो जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकों साधु मानेंगे, औरकों न मानेंगे । ताको पूछिए है—

एक संघ विषे बहुत भेषी हैं । तहां जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो वह औरनिको साधु मानै है कि न मानै है । जो मानै है, तो तुमते भी अश्रद्धानी भया, ताको पूज्य कैसे मानो हो । अर न मानै है, तो उस सेती साधुका व्यवहार काहेकों वर्त्तै है । बहुरि आप तो उनकों साधु न मानै अर अपने संघविषै राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकों अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकों करै । बहुरि तुम जाकों साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकों भी ऐसा ही उपदेश

करोगे, इनकों साधु मति मानों, ऐसे धर्म्मपद्धति विषै विरुद्ध होय। अर जाकों तुम साधु मानो हो तिसतै भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातैं वह वाकों साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो, वह भी यथार्थ मुनि धर्म्म नाही पालै है।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितै तो घने अच्छे हैं तातै हम मानैं हैं। सो अन्यमतीनि विषै तो नाना प्रकार भेष सम्भवे, जातै तहां रागभावका निषेध नाही। इस जैनमतविषै तो जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु सज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै—शील सयमादि पालै है,तपश्चरणादि करै हैं, सो जेता करै तितना ही भला है।

ताका समाधान—यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला ही है। परन्तु प्रतिज्ञा तो बडे धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तो तहाँ प्रतिज्ञाभगतै महापाप हो है। जैसे कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तो वाकै बहुत बार भोजनका सयम होते भी प्रतिज्ञाभगतै पापी कहिए। तैसै मुनिधर्मकी प्रतिज्ञाकरि कोई किंचित् धर्म्म न पालै,तो वाको शीलसयमादि होते भी पापी ही कहिए। अर जैसे एकतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एक बार भोजन करै, तो धर्मात्मा ही है तैसे अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै तो धर्मात्मा ही है। यहाँ तो ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतैं पापीपना सम्भवे है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करते तो पापी-पना होता नाही। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहा कोऊ कहै—पचमकालका अन्तर्यपन्त चतुर्विधि सघका सद्भाव

कह्या है। इनिकों साधु न मानिए, तो किसको मानिए ?

ताका उत्तर—जैसे इस कालविषे हसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषे हम नाही दीसै हैं, तो औरनिको तो हंस माने जाते नाही, हसका लक्षण मिले ही हस माने जांय। तैसे इस कालविषैं साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविषे साधु न दीसै हैं, तो औरनिकों तो साधु माने जाते नाही, साधु लक्षण मिले ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषे दीसै है, तहांते परे क्षेत्रविषैं साधुका सद्भाव कैसे मानै ? जो लक्षण मिलें मानै, तो यहा भी ऐसें ही मानो। अर बिना लक्षण मिले ही मानै, तो तहां अन्य कुलिगी हैं तिनहीको साधु मानो। ऐसै विपरीति होय, तातै बनै नाही। कोऊ कहै—इस पचमकालमे ऐसै भी साधुपद हो है, तो ऐसा सिद्धांतका वचन बताओ। बिना ही सिद्धात तुम मानो हो, तो पापी होगा। ऐसै अनेक युक्तिकरि इनिकै साधुपना बनै नाही है। अर साधुपना बिना साधु मानि गुरु माने मिथ्यादर्शन हो है, जातै भले साधुकों गुरू माने ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता का निषेध

बहुरि श्रावक धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै हैं॥ त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होते भी जाका किछू प्रयोजन नाही, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकों देशव्रती भया कहै। सो वह त्रसघातादिक जामैं होय ऐसा कार्य करैं। सो देशव्रत गुणस्थानविषैं तो ग्यारह अविरति कहे हैं,तहां त्रसघात कैसे सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावकके हैं, तिन विषैं दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तो कोई होता ही

नाहीं अर साधु होय। पूछै, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम—ऐसा विरुद्ध भाषैं हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारकके थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावै, सो सम्भवता वचन नाही। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तो थोरे ही काल पालि छोडि दीजिए हैं। सो ए कार्य उत्तम हैं तो धर्म्म बुद्धि ऊँची क्रियाको काहेको छोरै अर नीचे कार्य हैं तो काहेको अगीकार करै। यहु सम्भवै ही नाही। बहुरि कुदेव कुगुरुकों नमस्कारादिक करते भी श्रावकपना बतावे। कहैं, धर्म्मबुद्धि-करि तौ नाही बदे हैं,लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धातविषै तो तिनि-की प्रशसा स्तवनको भी सम्यक्त्वका अतिचार कहै अर गृहस्थनिका भला मनावनेके अर्थि बदना करते भी किछू न कहैं। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बदे हैं, तो इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करते भी पाप मति कहो, अतरग विषै पापजान्या चाहिए। ऐसे सर्व आचारनविषैविरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापाप की प्रवृत्ति छुडावनेकी तो मुख्यता नाही अर पवनकायकी हिंसा ठह-राय उघारे मुख बोलना छुडावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अंग अनेक हैं, तिनविषै एक परजीवकी दया ताको मुख्य कहैं हैं, ताका भी विवेक नाही। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अगनिकी तो मुख्यता नाही।

मुंहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करैं हैं। सो मलयुक्त पाटीके थूकका सम्बन्धतैं जीव उपजैं तिनका तौ यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावैं। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तो यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तो सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं—भूलि जाइए। तो इतनी भी याद न रहै, तो अन्य धर्मसाधन कैसें होगा? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तो मुनि भी करै है। तातै गृहस्थकों अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेतैं अविनय, बिक्षिप्तता-आदि करि पाप उपजै। ऐसें जिनकी मुख्यता करै, तिनका भी ठिकाना नाही अर केई दयाके अंग योग्य पालै हैं, हरितकायका त्याग आदि करै, जल थोरा नाखै, इनका हम निषेध करते नाही।

मूर्तिपूजा निषेध का निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकात पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै है। सो उनहीके शास्त्रनिविषै प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताको आग्रहकरि लोपैं हैं। भगवतीसूत्रविषै ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहां मेरुगिरि आदिविषै जाय "तत्थ चेययाइं वंदइ" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहां चैत्यनिकों वंदै हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ हैं, प्रतिमाका अर्थ नाही। याकों पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषैं जाय जाय तहां चैत्यवंदना करी, सो वहां ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे

सम्भवै ? ज्ञानादिक की वदना तो सर्वत्र सम्भवै। जो वदने योग्य चैत्य वहाँ सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवै, ताको तहाँ वदनाकरनेका विशेष सम्भवै, सो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम सम्भवै है। याको हठकरि काहेको लोपिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषै जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करै है, ताका व्याख्यान उनकै जहाँ तहाँ पाइए है। बहुरि लोकविषै जहा तहाँ अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है सो यह रचना भोग कुतूहलादिकके अर्थ तो है नाही। अर इन्द्रादिक-निके स्थाननिविषै नि प्रयोजन रचना सम्भवै नाही। सो इन्द्रादिक तिनको देखि कहा करै है। कै तो अपने मदिरनिविषै नि.प्रयोजन रचना देखि उसतै उदासीन होते होगे, तहा दु खी होते होगे, सो सम्भवै नाही। कै आछी रचना देखि विषय पोपते होगे, सो अर्हत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यह भी सम्भवै नाही। तातै तहा तिनकी भक्तिआदिक ही करै है, यहु ही सम्भवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहा प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याको गोपनेके अर्थि कहै है, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो साच, परन्तु कर्तव्यका तो फल होय ही होय। सो तहाँ धर्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म हो है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहा धर्म भया। याको औरनिके सदृश कैसे कहिए ? यहु तो योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तो तहां '**णमोत्थुणं**'का पाठ पढ्या, सो पापके ठिकानें ऐसा पाठ काहेको पढ्या। बहुरि एक विचार यहाँ यहु आया, जो

'णमोत्थुणं' के पाठ विषें तो अरहंतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजीके आगें जाय यहु पाठ पढ़्या,तातें प्रतिमाजीके आगे जो अरहंतभक्तिकी क्रिया है सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वे ऐसा कहै—देवनिकै ऐसा कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं, जातैं मनुष्यनिकै प्रतिमा आदि बनावने विषें हिंसा हो है। तौ उनहीके शास्त्रनिविषें ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसें सूर्याभदेव किया,तैसें करती भई। तातें मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहां एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तौ द्रोपदी कैसें प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी,तौ बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तौ गृहस्थनिकौ ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे तौ तहां भोगादिकका प्रयोजन तो था नाहीं, काहेकौं बनाया। बहुरि द्रोपदी तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया तौ महापापिणी भई। धर्मविषें कुतूहल कहा। अर धर्म किया तौ औरनिको भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है। बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै है—जैसें इन्द्रकी स्थापनातें इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसें अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाहीं। सो अरहंत आप काहूको भक्त मानि भला करते होय तौ तो ऐसें भी मानें। सो तो वे वीतराग है। यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितें शुभफल पावै है। जैसें स्त्री का आकार रूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहां विकाररूप होय अनुराग करै, तौ ताके पाप बंध होय। तैसें अरहंत का आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म बुद्धितें तहां

अनुराग करै, तौ शुभकी प्राप्ति कैसे न होइ। तहां वे कहैं हैं, बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषैं अनुरागकरि शुभ उपजावेंगे। तौ इनिकों कहिए है—आकार देखें जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए होय नाही। याहीतैं लोकविषै भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावैं हैं। तातैं प्रतिमाका आलबनिकरि भक्ति विशेष होनेतैं विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाको देखो, परन्तु पूजनादिक करने का कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर—जैसे कोऊ किसी जीव का आकार बनाय घात करै तो वाकै उस जीवकी हिंसा किए कासा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेष बुद्धितैं वाकी बुरी अवस्था करै तो जाका आकार बनाया वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै। तैसे अरहतका आकार बनाय राग बुद्धितैं पूजनादि करै तो अरहतके पूजनादि किए का सा शुभ (भाव) निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतें आकार बनाय पूजनादि करिए है। इस धर्मानुरागतैं महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै हैं—जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय ताके आगे तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातैं बदनादिकरि अरहतका पूजन युक्त नाही।

ताका समाधान—मुनिपद लेतें ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछें तीर्थंकरदेवकै समवशरणादि बनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इन्द्र

महापापी भया, सो बनै नाहीं । भक्ति करी जो पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थके आगे त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातै वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाके आगै अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरनै का दोष नाही। उनकै विक्षिप्तता होय नाही। धर्मानुरागतै जीवका भला होय।

बहुरि वे कहै है—प्रतिमा बनावने विषै, चैत्यालयादि करावनै विषै, पूजनादि करावने विषै हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है। तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतै महापाप हो है, तातै हम इन कार्यनिको निषेधै हैं।

ताका उत्तर—उनही के शास्त्रविषै ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर ॥१॥

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिलें होय सो ऐसा कार्यका भी होना ठहरचा। तहां पूछिए है—केवल धर्म्मतै तो उभय घाटि है ही अर केवल पापतै उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तो यामें तो किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतै बुरा कैसे कहिए। भला है तो केवल पाप छोड ऐसा कार्य करना ठहरचा। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसें ही सम्भवै है। कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाही करावै है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है। ताकों तो छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावै, तिसतैं तो चैत्यालयादि

करावनेवाला हीन नाही। हिंसा तो भई परन्तु वाकै तो लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई, याकै लोभ छूटया, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतै तो पूजनादि कार्य करना हीन नाही। वहा तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसै जे त्यागी न होय, अपने धनको पापविषैं खरचते होय तिनको चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषै उपयोगको नाही लगाय सकै, तिनको पूजनादि करना निषेध नाही।

बहुरि तुम कहोगे, निरवद्य सामायिक आदि कार्य ही क्यो न करै, धर्म विषै काल गमावना तहाँ ऐसे कार्य काहेको करै ?

ताका उत्तर—जो शरीरकरि पाप छोरे ही निरवद्यपना होय, तो ऐसै ही करै परन्तु परिणामनिविषै पाप छूटे निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषै जाका परिणाम लागै नाही सो पूजनादिकरि तहाँ अपना उपयोग लगावै है। तहाँ नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहा उपयोग को न लगावै, तो पापकार्यनिविषैं उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातै तहा प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो-धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तो महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तो सिद्धान्तका वचन नाही अर युक्तितै भी मिलै नाही। जातै ऐसैं मानें इन्द्र जन्मकल्याणकविषै बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषै देव पुष्पवृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं,सो ये महापापी

होंय। जो तुम कहोगे, इनका ऐसा ही व्यवहार है, तो क्रियाका फल तो भए बिना रहता नाही। जो पाप है तो इन्द्रादिक तो सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेको करे अर धर्म्म है तो काहेको निषेध करो हो। बहुरि भला तुमहीको पूछें हैं—तीर्थंकर की वदनाको राजादिक गए, साधुकी वदनाको दूरि भी जाईए है, सिद्धान्त सुनने आदि कार्य करने को गमनादि करिये है, तहा मार्गविषे हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका सस्कार करिये है, साधु होतें उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहा भी हिंसा हो है। सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहा महापाप उपजे है, तो पूर्वे ऐसे कार्य किये तिनका निषेध करो। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करें हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजे है तो धर्मके अर्थि हिंसाविषे महापाप बताय काहेको भ्रमावो हो। तातै ऐसे मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाए बहुत धनका लाभ होय तो वह कार्य करना, तैसे थोरा हिंसादिक पाप भये बहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तो मूर्ख है। तैसे थोरी हिंसाका भयतें बड़ा धर्म्म छोरै तो पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसे बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्मविषै थोरा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तो वह पापी ही है। बहुरि जैसें बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतें ठिगावै तो मूर्ख है। तैसे निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतें सावद्य धर्मविषे उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसे अपने परिणाम-

निकी अवस्था देखि भला होय सो करना । एकांतपक्ष कार्यकारी नाहीं । बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्मका अंग नाही है । रागादिकनिका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है । तातैं जैसें परिणामनिविषे रागादिक घटै सो कार्य करना ।

बहुरि गृहस्थनिकों अणुव्रतादिकका साधन भए बिना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावै हैं। सो सामायिक तो रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठ मात्र पढे वा उठना बैठना किए ही तो होइ नाही । बहुरि कहोगे—अन्य कार्य करता तातैं तो भला है । सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषै प्रतिज्ञा तो ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यको न करूँगा, न कराऊँगा अर मनविषै तो विकल्प हुआ ही करै । अर वचनकायविषै भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहा प्रतिज्ञाभग होय । सो प्रतिज्ञाभग करनेतै न करनी भली । जातैं प्रतिज्ञाभगका महापाप है ।

बहुरि हम पूछे है—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढै है, ताका अर्थ जानि तिसविषै उपयोग राखै है । कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकों तो नीके पालै नाही अर प्राकृतादिकका पाठ पढै, ताके अर्थका आपको ज्ञान नाही, बिना अर्थ जाने तहा उपयोग रहै नाही, तब उपयोग अन्यत्र भटकै । ऐसैं इन दोऊनिविषै विशेष धर्मात्मा कौन ? जो पहलेको कहोगे, तो ऐसा ही उपदेश क्यो न दीजिए । दूसरेकों कहोगे, तो प्रतिज्ञा भगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहरया । पाठादि करनेके अनुसारि ठहरया । तातैं अपना उपयोग जैसै निर्मल होय सो कार्य करना । सधै सो प्रतिज्ञा

करनी। जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना। पद्धति करि नाम धरावनेमें नफा नाही। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहे ही तो दुष्कृत मिथ्या न होय, किया दुष्कृत मिथ्या होने योग्य परिणाम भए दुःकृत मिथ्या होय। ताते पाठ ही कार्यकारो नाही। बहुरि पडिकमणाका पाठ विषैं ऐसा अर्थ है,जो बारह व्रतादिकविषै जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रत धारे बिना हो तिनका पडिकमणा करना कैसे सम्भवे ? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषै लाग्या दोषका निराकरण करै तो असम्भवपना होय। तातैं यह पाठ पढना कौन प्रकार बनै? बहुरि पोसहविषै भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाही पालै हैं। तातै पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तो पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछे पोसहधारी होय। सो जेते काल बनै तेते काल साधन करनेका तो दोष नाही। परन्तु पोसहका नाम करिए सो युक्त नाही। सम्पूर्ण पर्वविषै निरवद्य रहे ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतें पोसह नाम होय तो सामायिककों भी पोसह कहो, नाही शास्त्र विषै प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सो बडा नाम धराय लोगनिकों भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासै है। बहुरि आखडी लेनेका पाठ तो और पढै, अंगीकार और करै। सो पाठविषै तो "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है, तातै जो त्याग करै सो ही पाठ पढै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै तो भाषा हीतें कहै। परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करावनेकी तो मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा

भाव निर्मल होने का विवेक नाही। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादि करै, तहाँ धर्म्म मानै। सो फल तो परिणामनितै हो है। इत्यादि अनेक कल्पित बातै करै हैं, सो जैनधर्म्म विषैं सम्भवै नाही। ऐसै यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातै मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है। साचा जिनधर्म्म का स्वरूप आगै कहै हैं। ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है। तहाँ प्रवर्त्तें तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै अन्यमत निरूपण पांचवाँ अधिकार समाप्त भया ॥ ५ ॥

ॐ नमः

छठा अधिकार

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध

दोहा

मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव ।
तज तिनकों सांचे भजो, यह हितहेतु उपाव ।।१।।

अर्थ—अनादितें जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताको कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषै प्रवृत्ति होय। तातें इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

तहाँ जे हितका कर्त्ता नाही अर तिनको भ्रमतें हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव है। तिनका सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कही तो मोक्षका प्रयोजन है। कही परलोकका प्रयोजन है। कही इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तो सिद्ध होय नाही। किछू विशेष हानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है—

अन्यमतनिविषै जिनके सेवनते मुक्ति होनी कही है, तिनको केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करे हैं, सो मोक्ष होय नाही। तिनका वर्णन पूर्वे अन्यमत अधिकारविषे कह्या ही है, बहुरि अन्यमत विषै कहे देव, तिनकों केई परलोकविषै सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए

सेवें हैं। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है। सो आप तो पाप उपजावै है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा, तो तहां अन्याय ठहरया। काहूको पापका फल दे, काहूकों न दे, सो ऐसें तो है नाही। जैसा अपना परिणाम करेगा,तैसा ही फल पावेगा। काहूका बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाही। बहुरि तिन देवनिका सेवन करते तिन देवनिका तो नाम करै अर अन्य जीवनिकी हिंसा करै वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषैं, सो पाप परिणामनिका फल तो लागे बिना रहने का नाही। हिंसा विषय कषायनिकों सर्व पाप कहैं हैं। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानै हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषै हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातै कुदेवनिका सेवनतै परलोकविषै भला न हो है।

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिककी प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिएं कुदेवनिका सेवन करै हैं। बहुरि हनुमानादिको पूजें हैं। बहुरि देवीनिको पूजें हैं। बहुरि गणगौर साझी आदि बनाय पूजे हैं। चौथि शीतला दिहाडी आदिको पूजें हैं। बहुरि अऊत पितर व्यतरादिकको पूजें हैं। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिको पूजे है। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिको पूजे है। बहुरि गऊ घोटकादि तिर्यंचनिको पूजें हैं। अग्नि जलादिकको पूजें हैं। शस्त्रादिककों पूजे हैं। बहुत कहा कहिए, रोडी इत्यादिककों भी पूजे हैं। सो ऐसे कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितै हो है। काहेतें, प्रथम तो जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पना

मात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसे होय। बहुरि केई व्यतरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेकों समर्थ नाही । जो वे ही समर्थ होय, तो वे ही कर्त्ता ठहरे । सो तो उनका किया किछू होता दीसता नाही। प्रसन्न होय धनादिक देय सकें नाही। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाही।

इहा कोऊ कहै—दु ख तो देते देखिए हैं, मानेतैं दु ख देते रहि जाय हैं ।

ताका उत्तर—याकै पापका उदय होय, तब ऐसी ही उनकै कुतूहल बुद्धि होय, ताकरि वे चेस्टा करै, चेष्टा करतें यहु दु खी होय। बहुरि वे कुतूहलतै किछू कहैं, यहु कह्या करै तब वे चेष्टा करनेत रहि जांय । बहुरि याको शिथिल जानि कुतूहल किया करैं। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तो किछू कर सकते नाही। सो भी देखिए है—कोऊ जीव उनकों पूजे नाही वा उनकी निन्दा करै वा वे भी उसतै द्वेष करै परन्तु ताको दु ख देई सकै नाही । वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमको मानै नाही परन्तु उसतै किछू हमारा वश नाही । तातै व्यन्तरादिक किछू करनेको समर्थ नाही । याका पुण्य पापहीतै सुख दु ख हो है। उनके माने पूजे उलटा रोग लागै है, किछू कार्य सिद्धि नाही । बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कही अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यंतरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषै उनका सेवक था, पीछै मरि व्यन्तरादि भया, तहाँ ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषै तिनिके सेवनें की प्रवृत्ति करावनेके अर्थि कोई चमत्कार

दिखावै है । जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषैं लग जाय है। जैसैं जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए है सो जिनकृत नाही, जैनी व्यतरादिकृत हो है। तैसैं ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यतरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना । बहुरि अन्यमतविषै भक्तनिकौ सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहै हैं । तहा केई तो कल्पित बातें कही है । केई उनके अनुचरी व्यन्तरादिककरि किए कार्यनिको परमेश्वरके किए कहै हैं । जो परमेश्वरके किए होय तो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ छै । सर्व प्रकार समर्थ छै । भक्तको दुख काहेको होने दे । बहुरि अबहू देखिए है । म्लेच्छ आय भक्तनिको उपद्रव करै है, धर्म विध्वस करै हैं, मूर्तिको विघ्न करै है, सो परमेश्वरको ऐसे कार्यका ज्ञान न होय तो सर्वज्ञपनो रहै नाही। जाने पीछे सहाय न करै तो भक्त वत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया । बहुरि साक्षीभूत रहै है तो आगे भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे– वैसी भक्ति नाही है । तो म्लेच्छनितै तो भले हैं वा मूर्ति आदि तो उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तो न होने देना था । बहुरि म्लेच्छपापीनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाही । जो परमेश्वरका किया है, तो निदकनिको सुखी करै, भक्तनिकों दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या ? अर परमेश्वरका किया न हो है, तो परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया । तातै परमेश्वरकृत कार्य नाही। कोई अनुचरी व्यतरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही

निश्चय करना।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यंतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकों बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप बचन कहै वा औरनिकों अन्यथा परिणमावै, औरनिको दुःखदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है ?

ताका उत्तर—व्यंतरनिविषै प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषै वासादिक बताय हीनता दिखावै हैं सो तो कुतूहलतै वचन कहै है। व्यंतर बालकवत् कुतूहल किया करै। सो जैसैं बालक कुतूहलकरि आपको हीन दिखावै, चिडावै, गाली सुनै, बार पाडै (ऊचे स्वरसे रोवै) पीछे हँसने लगि जाय, तैसैं ही व्यंतर चेष्टा करै हैं। जो कुस्थानहीके वासी होय, तो उत्तम स्थानविषै आवै हैं तहाँ कौनके ल्याए आवैं हैं। आपहीतै आवै हैं, तो अपनी शक्ति होते कुस्थानविषै काहेकों रहैं ? तातै इनिका ठिकाना तो जहाँ उपजै हैं, तहां इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिये चाहै सो कहै है। बहुरि जो इनको पीडा होती होय तो रोवते-रोवते हंसने कैसै लगि जांय हैं। इतना है, मन्त्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई साचा मन्त्रके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो वाकै किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाकों मनै करै तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि नाही है। मन्त्र वाला जलाया कहै, बहुरि वह प्रगट होय जाय, जातै वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि सम्भवै नाही। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोक क्षेत्र

काल जाननेका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्षको पूछे ताका उत्तर दें तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तो अन्य महत्ज्ञानीको पूछि आय करि जवाब दें। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तो पूछे ताका उत्तर न दे, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिकके उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछै ताका स्मरण मात्र रहै है तातै तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तो करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातै कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछे तो अवधि तो थोरा, बिना जाने कैसै कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकै वा इच्छा न होय, तहाँ मान कुतूहलादिकतै उत्तर न दे वा झूंठ बोलै, ऐसा जानना। बहुरि देवनिमे ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरको वा पुद्गल स्कंधको जैसी इच्छा होय तैसे परिणमावै। तातै नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीर को रोगादियुक्त करै। यहा इतना है—अपने शरीरको वा अन्य पुद्गल स्कंधनिको तो जेती शक्ति होय तितने ही परिणमाय सकै, तातै सर्व कार्य करने की शक्ति नाही। बहुरि अन्य जीवके शरीरादिकको वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकै। वाकै पुण्य उदय होय तो आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै अर पाप उदय होय तो वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसैं व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए, तिनके माननें पूजनें में दोष कहा ?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतें सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतें दुःख न देय सकै; बहुरि तिनके पूजनेतें कोई पुण्यबंध होय नाही, रागादिककी वृद्धि होतें पाप ही हो है। तातें तिनका मानना पूजना कार्यकारी नाही—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यंतरादिक मनावें हैं, पुजावें हैं, सो कुतूहल करें हैं, किछू विशेष प्रयोजन नाहीं राखे हैं। जो उनकों मानें पूजें, तिस सेती कोतूहल किया करें। जो न मानें पूजें, तासो किछू न कहै। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तो न मानने पूजनेवालेको घना दुःखी करें। सो तो जिनकै न मानने पूजनेका अवगाढ है, तासों किछू भी कहते दीसते नाही। बहुरि प्रयोजन तो क्षुधादिककी पीडा होय तो होय, सो उनकै व्यक्त होय नाही। जो होय, तो उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताकों भी ग्रहण क्यों न करें वा औरनिके जिमावने आदि करनेहीको काहेकों कहैं। तातें उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकों उनके कुतूहलका ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातें उनको मानना पूजना योग्य नाही।

बहुरि कोऊ पूछे कि व्यंतर ऐसे कहैं हैं—गया आदि विषै पिंड-प्रदान करो तो हमारी गति होय, हम बहुरि न आवें, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तो रहै ही है। व्यंतरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतें विशेष संस्कार है। तातें पूर्व-भवके विषै ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषैं पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातें ऐसे कार्य करनेको कहैं हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यंतर हो हैं, ते तो ऐसे कहैं नाहीं, वे तो अपने संस्कार रूप ही वचन

कहैं। तातै सर्व व्यंतरनिकी गति तैसै ही होती होय तो सर्व ही समान प्रार्थना करै सो है नाही, ऐसै जानना। ऐसे व्यंतरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि ग्रह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनकौं पूजे हैं सो भी भ्रम है। सूर्यादिकको परमेश्वरका अंश मानि पूजे है। सो वाकै तो एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्नादिकभी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाही, जातै वाको परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिकको धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजे हैं। सो उसके पूजनेतैं ही धन होता होय, तो सर्व दरिद्री इस कार्यको करै। तातै ए मिथ्याभाव है। बहुरि ज्योतिषके विचारतै खोटा ग्रहादिक आए तिनिका पूजनादि करै हैं, वाके अर्थ दानादिक दे है। सो जैसै हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै है, पुरुषके दाहिणे बावे आए सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानको कारण हो है, किछू सुख दुःख देनेको समर्थ नाही। तैसै ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करै हैं। प्राणीकै यथासम्भव योगको प्राप्त होते सुख दुःख होने का आगामी ज्ञानको कारण हो है, किछू सुख दुख देनेको समर्थ नाही। कोई तो उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय, तातै तिनिका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहाँ कोऊ कहै—देना तो पुण्य है, सो भला हो है।

ताका उत्तर—धर्मके अर्थिदेना पुण्य है। यहु तो दुःखका भयकरि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातै पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकार

ज्योतिषी देवनिको पूजैं हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तो व्यतरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करै है। केई कल्पित हैं, सो तिनको कल्पनाकरि पूजनादि करै हैं। ऐसे व्यतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहाँ कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाडी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतको अनुसरै है, तिनके पूजनादि करने मे तो दोष नाही।

ताका उत्तर—जिनमतविषै सयम धारे पूज्यपनों हो है। सो देवनिकै सयम होता ही नाही। बहुरि इनको सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमें सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाही। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिए तो सर्वार्थसिद्धिके देव, लौकातिकदेव तिनकोही क्यो न पूजिए। बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रके है, वह सम्यग्दृष्टी भी है। वाको छोरि इनको काहेको पूजिए। बहुरि जो कहोगे, जैसे राजाकै प्रतीहारादिक हैं, तैसे तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादि-विषै इनिका अधिकार नाही। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसें प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यो मिलिए,तैसे ये तीर्थंकरकों मिला-वते नाही। वहाँ तो जाकै भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करो, किछू किसीके आधीन नाही। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिए रौद्रस्वरूप जिनका, तिनकी गाय गाय भक्ति करै। सो जिनमतविषैं भी रौद्ररूप पूज्य भया, तो यहु भी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र

मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषैं ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसैं क्षेत्रपालादिककों भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजा का निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतै हीन भासै हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनकी निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतै अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त देखिये हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष भासै है, पूज्यपनेका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तातैं इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनको पूजे प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि किछू भी फल प्राप्ति नाहीं भासै है तातैं इनको पूजना योग्य नाहीं। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोक विषै तो आपतैं नीचेको नमते आपको निंद्य मानैं अर मोहित होय रोडी पर्यंतकों पूजता भी निंद्यपनो न मानैं। बहुरि लोकविषै तो जातैं प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करै अर मोहित होय कुदेवनितैं मेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा, ऐसा बिना विचारे ही कुदेवनिका सेवन करै। बहुरि कुदेवनिका सेवन करते हजारो विघ्न होंय ताकों तो गिनै नाहीं अर कोई पुण्यके उदयतैं इष्ट कार्य होय जाय ताको कहै,इसके सेवनतै यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवादिकका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होंय, तिनकों तो गिनै नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तो कहैं, याका सेवन न किया तातैं अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है,जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तो जे पूजे तिनकै इष्ट होइ, न

पूजै तिनकै अनिष्ट होय। सो तो दीसता नाही। जैसे काहूकै शीतलाकों बहुत माने भी पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना माने भी जीवते देखिए है। तातैं शीतला का मानना किछू कार्यकारी नाही। ऐसे ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाही।

इहाँ कोऊ कहै—कार्यकारी नाही तो मति होहु, किछू तिनके माननेते बिगार भी तो होता नाही।

ताका उत्तर—जो बिगार न होय, तो हम काहेको निषेध करैं। परन्तु एक तो मिथ्यात्वादि दृढ होनेतैं मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बडा बिगार है। एक पापबंध होनेते आगामी दुःख पाईए है, यहु बिगार है।

यहाँ पूछै कि मिथ्यात्वादिभाव तो अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबंध खोटे कार्य किए होय है, सो तिनके माननेतैं मिथ्यात्वादिक वा पापबंध कैसे होय?

ताका उत्तर— प्रथम तो परद्रव्यनिको इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, जातै कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाही। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तो ताका कारण पुण्य पाप है। तातै जैसे पुण्यबंध होय, पापबंध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै, सो कुदेवके माननेतै इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाही, केवल वृद्धिको प्राप्त हो है। बहुरि पुण्यबंध भी होता नाहीं, पाप बंध हो है। बहुरि कुदेवकाहूको धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातै ए बाह्य कारण भी नाही। इनका मानना किसै अर्थि कीजिए है। जब

अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनकों भी इष्ट अनिष्टका कारण माने। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

आगै कुगुरुके श्रद्धानादिकको निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तो परिणमै अर मानादिकतैं आपको धर्म्मात्मा मनावै, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावैं अथवा किंचित् धर्म्मका कोई अंग धारि बडे धर्म्मात्मा कहावै, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावै, ऐसै धर्म्म का आश्रयकरि आपको बडा मनावै, ते सर्व कुगुरु जानने। जातै धर्म्मपद्धतिविषै तो विषयकषायादि छूटें जैसा धर्म्मकों धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहाँ केई तो कुलकरि आपको गुरु मानै हैं। तिनविषै केई ब्राह्मणादिक तो कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातै हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तो धर्म्म साधनतै है। जो उच्च कुलविषै उपजि हीन आचरन करै, तो वाको उच्च कैसे मानिए। जो कुलविषै उपजनेहीतै उच्चपना रहै, तो मांसभक्षणादि किए भी वाकों उच्च ही मानों सो बनै नाहीं। भारतविषै भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे हैं। तहाँ "जो ब्राह्मण होय चांडाल कार्य करै, ताको चांडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतै उच्चपना होय तो ऐसी हीनसंज्ञा काहेकों दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषैं ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतै उपजे। तहाँ कुलका अनुक्रम कैसे रह्या? बहुरि मूलउत्पत्ति तो ब्रह्मातै कहै हैं। तातै सर्वका एक कुल है, भिन्न कुल कैसे रह्या? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतै वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतै संगम होते संतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसे रह्या? जो कदाचित् कहोगे, ऐसे है, तो उच्च नीच कुलका विभाग काहेको मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषै असत्य भी प्रवृत्ति संभवै, धर्म्मकार्य्यविषै तो असत्यता संभवै नाही। तातै धर्म्मपद्धतिविषै कुलअपेक्षा महंतपना नाही संभवै है। धर्म्मसाधनहीतै महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महंतता है, सो धर्म्मप्रवृत्तितै है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति को छोडि हिंसादिक पापविषै प्रवर्त्तै महंतपना कैसे रहै? बहुरि केई कहै – जो हमारे बड़े भक्त भए हैं, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषै हैं, तातै हम गुरु है। सो उन बड़ेनिके बड़े तो ऐसे उत्तम थे नाही। तिनकी संततिविषै उत्तमकार्य किये उत्तम मानो हो तो उत्तमपुरुषकी संततिविषै जो उत्तमकार्य न करै, ताको उत्तम काहेको मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषै वा लोकविषै यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदको पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदको पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदको पावै, पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदको पावै। तातै बडेनिकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नाही। ऐसे कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनो मानै हैं। कोई पूर्वै महंत पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहा तिन विषै

तिस महतपुरुष केसे गुण न होते भी गुरुपनो मानिए, सो जो ऐसे ही होय तो उस पाटविषै कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करैगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिको प्राप्त होगा, सो संभवै नाही। अर वह पापी है, तो पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपद योग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलै तो स्त्री आदिके त्यागी थे,पीछे भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतति आपकौं गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछे गुरुपना कैसे रह्या ? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनकौं मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसें मानै ? बहुरि केई अन्य तो सर्व पाप कार्य करैं, एक स्त्री परणैं नाही, इसही अंगकरि गुरुपनो मानैं हैं। सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाही, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकौं करते धर्मात्मा गुरु कैसे मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितैं विवाहादिकका त्यागी नाही भयाहै। कोई,आजीविका वा लज्जा आदि प्रयोजनकौं लिए विवाह न करै है। जो धर्म्म बुद्धि होती, तो हिंसादिकको काहेको बधावता। बहुरि जाकै धर्म्मबुद्धि नाही, ताकै शीलकी भी दृढता रहै नाही। अर विवाह करै नाही, तब परस्त्रीगमनादि महापापकौं उपजावै। ऐसी क्रिया होते गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकार का भेषधारनेतै गुरुपनो मानै है। सो भेष धारे कौन धर्म्म भया, जातै धर्म्मात्मा गुरु मानै। तहा केई टोपी दे है,केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै है, केई चादर ओढै है, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै है, केई भगवा राखै है, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै है, इत्यादि अनेक स्वांग बनावैं हैं।

सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटे थी, तो पाग-जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेको किया ? उनको छोरि ऐसे स्वाँग बनावने मे कौन धर्मका अंग भयो। गृहस्थनिकों ठिगनेके अर्थि ऐसे भेष जानने। जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वाग राखै, तो गृहस्थ कैसे ठिगावे। अर याको उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना,तातै ऐसे स्वाग बनावे हैं। जगत भोला, तिस स्वागको देखि ठिगावे अर धर्म्म भया मानं, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ॥१॥

(उपदेश सि० र० ५)

याका अर्थ—जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिकको मुसावता हुवा भी हर्ष मानै है, तैसे मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म धन को नाही जानै हैं। भावार्थ–यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रुषा आदितै अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाही, मिथ्या-बुद्धि ते हर्ष करे है। तहां केई तो मिथ्याशास्त्रनिविषे भेष निरूपण किये हैं, तिनको धारे है। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगम क्रिया कियेतै उच्चपद प्ररूपणतै मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्ग विषे बहुत लागै, इस अभिप्रायतै मिथ्या उपदेश दिया। ताकी परंपराकरि विचार रहित जीव इतना तो विचारै नाही, जो सुगम क्रियाते उच्चपद होना बतावे हैं, सो इहा किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषे प्रवर्त्तै हैं। बहुरि केई शास्त्रनिविषे तो मार्ग

कठिन निरूपण किया सो तो सधै नाही अर अपना ऊँचा नाम धराए बिना लोक मानैं नाही, इस अभिप्रायतै यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तो ऊँचा धरावैं हैं अर इनिका आचारनिकों नाही साधि सकै हैं तातै इच्छानुसारि नाना भेष बनावै हैं । बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तो नवीन नाम धरावै हैं अर इच्छानुसारि ही भेष बनावै हैं । ऐसैं अनेक भेष धारनेतै गुरुपनो मानै हैं, सो यहु मिथ्या है ।

इहा कोऊ पूछै कि भेष तो बहुत प्रकारके दीसै, तिन विषै सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसे होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषै विषयकषायका किछू लगाव नाही, ते भेष साचे हैं । सो साचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं । सो ही षट्पाहुडविषै कुन्दकुन्दाचार्य करि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि ।।
(द० पा० १८)

याका अर्थ—एक तो जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगबर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसई ग्यारही प्रतिमाका धारक श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिकालिंग, ऐसे ए तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक है । बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाही है । भावार्थ—यहु इन तीनलिंग बिना अन्यलिंगकों मानै सो श्रद्धानी नाही, मिथ्यादृष्टी है । बहुरि इन भेषीनिविषैं केई भेषी अपनें भेष की प्रतीति करावनेके अर्थि किंचित् धर्मका अंगकों भी

पावैं हैं। जैसें खोटा रुपैया चलावनेंवाला तिस विषैं किछू रूपा का भी अंश राखै है, तैसें धर्म्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै हैं।

इहाँ कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तो फल होगा।

ताका उत्तर—जैसे उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै तो पापी है अर एकंत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तो भी धर्म्मात्मा है। तैसें उच्चपदवीका नाम धराय तामें किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तो महापापी है। अर नीचोपदवीका नाम धराय किछू भी धर्म्म साधन करै, तो धर्म्मात्मा है। तातैं धर्म्मसाधन तो जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाही। परन्तु ऊचा धर्म्मात्मा नाम धराय नोची क्रिया किए महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुडविषै कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

> जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
> जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥
>
> —(सूत्र पा० १८)

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होते था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषै तिलका तुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि जो कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तो तिसतै निगोद जाय। सो इहां देखो, गृहस्थपनेमें बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै तो भी स्वर्ग मोक्षका अधिकारी हो है अर मुनिपनेमे किंचित् परिग्रह अगीकार किएं भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं।

देखो, हुडावसर्प्पिणी कालविषै यहु कलिकाल प्रवर्त्ते है। ताका दोष-करि जिनमतविषै मुनिका स्वरूप तो ऐसा जहा बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाही, केवल अपने आत्माको आपो अनुभवते शुभाशुभभावनितै उदासीन रहै है अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारै, तहा सर्वसावद्यका त्यागी होय पचमहाव्रतादि अगीकार करै। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिको ग्रहै वा भोजनादिविषै लोलुपी होय वा अपनी पद्धति बधावनेके उद्यमी होय वा केई धनादिक भी राखै वा हिसादिक करै वा नाना आरम्भ करै। सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तो ऐसे पापनिका फल तो अनत ससार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भग करै, ताको तो पापी कहै अर ऐसी बडी प्रतिज्ञाभग करते देखे बहुरि तिनको गुरु मानै, मुनिवत् तिनका सन्मानादि करै। सो शास्त्रविषै कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है तातै इनको भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तो क्रम यह है—पहलै तत्त्वज्ञान होय, पीछै उदासीन परिणाम होय, परिषहादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अगीकार करावै। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञानरहित विषयकषायासक्त जीव तिनको मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछै अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बडा अन्याय है। ऐसै कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया। अब इस कथन के दृढ करनेकौं शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहाँ उपदेशसिद्धान्त रत्नमाला विषै ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि बुड्ढंति ॥३१॥

कालदोषतें गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकै दानादि ग्रहै है । सो इस दुखमा कालविषै दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषै डूबे है। बहुरि तहाँ कह्या है—

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ॥३६॥

याका अर्थ—सर्पको देखि कोऊ भागै, ताको तो लोक किछू भी कहै नाही। हाय हाय देखो, जो कुगुरु सर्पको छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहैं, बुरा बोलैं।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ॥३७॥

अहो सर्पकरि तो एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनंतमरण दे है—अनंतबार जन्ममरण करावै है। तातै हे भद्र, साँपका ग्रहण तो भला अर कुगुरुका सेवन भला नाही। और भी गाथा तहाँ इस श्रद्धान दृढ़ करनेको कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लेनी। बहुरि संघपट्टविषै ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति ।

याका अर्थ – देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषे दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदको प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषे अपने गृहवत् प्रवर्त्तै है, निजगच्छविषे कुटुम्बवत् प्रवर्त्तै है, आपको इन्द्रवत् महान् मानै है, ज्ञानीनिको बालकवत् अज्ञानी मानै है,सर्वगृहस्थनिको रंकवत् मानै है सो यहु बडा आश्चर्य भया है। बहुरि **'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो'** इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है – जिन-करि जन्म न भया, वध्या नाही, मोल लिया नाही, देणदार भया नाही, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाही अर गृहस्थनिको वृषभवत् बहावै, जोरावरी दानादिक ले, सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नाही। ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहां काव्य है सो तिस ग्रथ ते जानना।

यहा कोऊ कहै, ए तो श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेको दई ?

ताका उत्तर—जैसे नीचा पुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तम-पुरुषकै तो सहज ही निषेध भया। तैसे जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करै, तो दिगम्बरधर्म्म विषे तो ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगम्बर ग्रन्थनिविषे भी इस श्रद्धान के पोषक वचन है। तहा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुडविषे (दर्शन-पाहुडमे) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेंहि सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताकों सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानों—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसे होंय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म बिना वंदने योग्य कैसे होय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टाय।
एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति॥ ८॥

जे दर्शनविषै भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषै भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टते भ्रष्ट हैं, और भी जीव जो उनका उपदेश मानै हैं, तिस जीव का नाश करै है, बुरा करै हैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं॥१२॥

जे आप तो सम्यक्तते भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिको अपने पगो पडाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो है, भाव यहु—स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधि की प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं॥१३॥
—(द० पा०)

जो जानता हुवा भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किए तिस पापकी अनु-मोदनाका फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड में) कहैं हैं—

जस्स परिग्गहगहणं अप्प बहुयं च हवइ लिंगस्स ।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९॥
--(सूत्र पा०)

जिस लिंगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अंगीकार होय सो जिन वचनविषै निंदा योग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है । बहुरि (भावपाहुडमें) कहै है--

धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो ।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१॥
(भाव पा०)

याका अर्थ--जो धर्म्मविषै निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है, भांडवत् भेषधारी है । सो नग्न भए भांडका दृष्टांत संभवै है । परिग्रह राखै तो यह भी दृष्टांत बनै नाहीं ।

जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं ।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥
--(मो० पा०)

याका अर्थ--पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिंग धारि पाप करै है, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषै भ्रष्ट जानने । बहुरि ऐसा कह्या है--

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला ।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७९॥
--(मो० पा०)

याका अर्थ---जे पचप्रकार वस्त्रविषै आसक्त हैं, परिग्रहके ग्रहण-हारे हैं, याचनासहित हैं, अध कर्म्म दोषनिविषै रत हैं, ते मोक्ष-मार्गविषै भ्रष्ट जानने। और भी गाथा सूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ करनेको कारण कहे है ते तहाते जाननें। बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिगपाहुड है, तिसविषै मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरभ यत्रमत्रादि करै है, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानु-शासन विषै ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगा ।
वनाद्वसन्त्युग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ---कलिकालविषै तपस्वी मृगवत् इधर उधरतैं भयवान् होय बनते नगरके समीप बसै है, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तो नगरविषै रहना तो निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मन ।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥ २०० ॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनतससार जातै ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप,प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्ष-रूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य सपदा जाकी,ऐसा है। बहुरि योगी-न्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषै ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्ली पुत्थयहि, तूसइ मूढ णिभतु ।
एयहि लज्जइ णाणियउ, बंधहहेउ मुणतु ॥२१४॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है। भ्रान्ति रहित ऐसा ज्ञानी उसे बंधका कारण जानता सता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुंचि वि छारेण।
सयलु वि संग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ॥२१६॥

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन ? जिहिं जीव जिनवरका लिंग धारया अर राखकरि माथाका लोचकरि समस्तपरि-ग्रह छांड्या नाहीं।

जे जिणलिंग धरेवि मुणिइट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय,सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥

याका अर्थ—हे जीव! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्ट परिग्रहको ग्रहैं हैं, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकू बहुरि भखे है। भाव यहु—निंद-नीय हैं इत्यादि तहाँ कहे हैं। ऐसें शास्त्रनिविषै कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूतआदि छयालीस दोष आहारादिविषै कहे हैं, तहा गृहस्थनिके बालकनिको प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषतें इनही दोषनिको लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिन हीका लक्षणनिकों धरै हैं। इतना विशेष—वे द्रव्या तो नग्न रहै हैं, ए नाना परिग्रह राखै हैं। बहुरि तहां मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार

लेनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहैं हैं। बहुरि ग्रहस्थधर्म्मविषैं भी उचित नाही वा अन्याय लोकनिद्य पापरूप कार्य तिनको करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तो अविनय करै हैं। बहुरि आप तिनतै भी महतता राखि ऊचा बैठना आदि प्रवृत्तिको धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपको मुनि मानै, मूल-गुणादिकके धारक कहावै। ऐसै ही अपनी महिमा करावै। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करैं नाही। उनकी भक्ति विषै तत्पर हो है। सो बडे पापकों बड़ा धर्म्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसै अनतससार न होय। एक जिनवचन को अन्यथा माने महापापी होना शास्त्रविषै कह्या है। यहा तो जिन-वचनकी किछू बात ही राखी नाही। इस समान और पाप कौन है?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै हैं, तिनका निराकरण कीजिए है। तहाँ वह कहै है,-गुरू विना तो निगुरा होय अर वैसे गुरु अबार दीसै नाही। तातै इनहीको गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तो वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाही। बहुरि जो गुरु को तो मानै अर इस क्षत्रविषै गुरुका लक्षण न देखि काहूको गुरु न मानै, तो इस श्रद्धानतै तो निगुरा होता नाही। जैसै नास्तिक्य तो वाका नाम है, जो परमेश्वरको मानै ही नाही। बहुरि जो परमेश्वरको तो मानै अर इस क्षेत्रविषै परमेश्वरका लक्षण न देखि काहू को परमेश्वर न मानै, तो नास्तिक्य तो होता नाही। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि वह कहै है, जैनशास्त्रनिविषै अबार केवलीका तो अभाव कह्या है, मुनिका तो अभाव कह्या नाही।

ताका उत्तर—ऐसा तो कह्या नाही, इनि देशनिविषै सद्भाव रहेगा। भरत क्षेत्रविषै कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बडा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहा हो तिस ही क्षेत्र विषै सद्भाव मानोगे, तो जहा ऐसे भी गुरु न पावोगे, तहा जावोगे तब किसको गुरु मानोगे। जैसे हंसनिका सदभाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाही, तो और पक्षीनिको तो हंस मान्या जाता नाही। तैसे मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाही, तो औरनिको तो मुनि मान्या जाय नाही।

बहुरि वह कहै है, एकअक्षर के दाता को गुरु मानै है। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनको गुरु कैसै न मानिए ?

ताका उत्तर—गुरु नाम बडेका है। सो जिस प्रकार की महतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताको गुरुसंज्ञा संभवै। जैसे कुल अपेक्षा मातापिताको गुरु संज्ञा है, तैसे ही विद्या पढावनेवालेको विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहाँ तो धर्मका अधिकार है। तातैं जाकै धर्म अपेक्षा महतता संभवै, सो गुरु जानना। सो धर्म नाम चारित्रका है। **'चारित्तं खलु धम्मो'** ऐसा शास्त्रविषै कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीको गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसे भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहाँ देवका श्रद्धानविषै अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसे औरनिका भी नाम गुरु है, तथापि इहाँ श्रद्धानविषै निर्ग्रंथही का ग्रहण

❀ प्रवचनसार १—७

है। सो जिनधर्म्म विषै अरहृत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथ बिना और गुरु न मानिए सो कारण कहा?

ताका उत्तर—निर्ग्रंथबिना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महतता नाहीं धरे हैं। जैसे लोभी शास्त्रव्याख्यान करै, तहाँ वह वाकों शास्त्र सुनावनेतें महत भया। वह वाकों धनवस्त्रादि देनेतें महत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महत रहै तथापि अन्तरग लोभी होय सो सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तो आहार ले हैं।

ताका उत्तर—लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातैं आहार न ले हैं। तातैं महतता घटै नाही। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसे ही अन्य जीव जानने। तातै निर्ग्रंथ ही सर्वप्रकार महततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाही। तातैं गुरुनिकी अपेक्षा महतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब नि.शक स्तुति करी जाय नाही। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव जैसा धर्म्म साधन करै, तैसा वा तिसतै अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकै। तहाँ गुरु सज्ञा किसको होय? तातै बाह्य अभ्यतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ऐसे गुरु तो अबार यहाँ नाही, तातै जैसे अरहृत की स्थापना प्रतिमा है, तैसे गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी है—

ताका उत्तर—जैसैं राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै तो राजा का प्रतिपक्षी नाही अर कोई सामान्य मनुष्य आपको राजा मनावै तो राजाका प्रतिपक्षी हो है। तैसे अरहृतादिककी पाषाणादि विषैं स्थापना बनावै तो तिनका प्रतिपक्षी नाही अर कोई सामान्य

मनुष्य आपकों मुनि मनावै तो वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया । ऐसैं भी स्थापना होती होय तो आपको अरहत भी मनावो । बहुरि जो उनको स्थापना भए है तो बाह्य तो वैसे ही भए चाहिए। वे निर्ग्रंथ, ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कसे बने ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाही। तातै जैसे श्रावक तसे मुनि।

ताका उत्तर–श्रावकसज्ञा तो शास्त्रविषै सर्व गृहस्थ जैनीकों है। श्रेणिक भी असयमी था, ताको उत्तरपुराणविषै श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषै श्रावक कहे, तहाँ सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधारी होते, तो असयत मनुष्यनिकी जुदी सख्या कहते, सो कही नाही। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है। अर मुनिसंज्ञा तो निर्ग्रन्थ बिना कहीं कही नाही। बहुरि श्रावककै तो आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य मांस मधु पचउदबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाही, तातै काहू प्रकारकरि श्रावकपना तो सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाही। तातै मुनिपनो काहू प्रकार सम्भवै नाही। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषै तो पूर्वै जम्बूकुमारादिक बहुत हिंसादि कार्य किए सुनिए हैं। मुनि होयकरि तो काहूने हिंसा दिक कार्य किए नाही, परिग्रह राखे नाही, तातै ऐसी युक्ति कारजकारी नाही। बहुरि देखो, आदिनाथजीके साथ च्यारि हजार राजा दोक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनको कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तो हम दड देगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानो। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै, ते तो दड योग्य हैं। बदनादि योग्य कैसे होय ? अब बहुत कहा कहिए, जिन-

मत विषैं कुभेष धारैं हैं ते महापाप उपजावै हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करैं हैं, ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषैं यह कथा है—जो श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनिनिको भ्रमतें भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तो प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनको दानादिक देना कैसे सम्भवै ?

यहा कोऊ कहै, हमारै अंतरंग विषे श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करे है, सो फल तो अंतरंग का होगा ?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषे लज्जादिकरि वन्दनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वं ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुडावे, तब तो यह सम्भवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतै नमस्कारादि करै, तहाँ अन्तरंग कैसें न कहिए। जैसे कोई अंतरंग विषे तो माँसको बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेको मास भक्षण करै, तो वाको व्रती कैसें मानिए ? तैसें अंतरंगविषे तो कुगुरुसेवनको बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेको सेवन करै, तो श्रद्धानी कैसे कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग सम्भवै है। तातै जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकों काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाही। या प्रकार कुगुरुसेवनका निषेध किया।

यहा कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीको कुगुरु सेवनतें मिथ्यात्व कैसे भया ?

ताका उत्तर—जैसें शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत रमण क्रिया सर्वथा करै नाही, तैसे तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाही। काहेतै, यह तो जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहां रागादिकको निषिद्ध श्रद्दहै है, वीतराग

मान को श्रेष्ठ माने है। तातें जिनकै वीतरागता पाईए, वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाईए, तिनकों निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाही।

कोऊ कहै—जैसें राजादिकको करै, तैसें इनको भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्म्मपद्धति विषै नाही। गुरुका सेवन धर्म्म पद्धतिविषै है। सो राजादिकका सेवन तो लोभादिकतैं हो है। तहाँ चारित्रमोह ही का उदय सम्भवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकों सेए, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के कारण गुरु थे, तिनतै प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतै जानै कारणविषै विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषै दृढता कैसे सम्भवै? तातै तहाँ दर्शनमोहका उदय सम्भवै है। ऐसें कुगुरुनिका निरूपण किया।

कुधर्म का निरूपण और उसके श्रद्धानादिकका निषेध

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है--

जहाँ हिंसादि पाप उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहाँ यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावै, बडे जीवनिका घात करै अर तहाँ इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषै दुष्ट बुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्र-लोभतै औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहाँ धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषै वा अन्यत्र स्नानादि कार्य करै, तहां बडे छोटे घने जीवनिकी हिंसा होय, शरीरकों चैन उपजै, तातै विषयपोषण होय, तातै कामादिक बधै, कुतूहलादिक करि तहाँ कषाय भाव बधावै, बहुरि तहा धर्म मानै सो यह कुधर्म है।

बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतीपातादिक विषै दान दे वा खोटा ग्रहादिक के अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकों दान दे, बहुरि दान देनेविषे सुवर्ण हस्ती घोडा तिल आदि वस्तुनिकों दे, सो संक्रांति आदि पर्व धर्मरूप नाही । ज्योतिषी सचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है । बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहाँ भय लोभादिकका आधिक्य भया । तातै तहाँ दान देनेमें धर्म नाहीं । बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाही । जातै लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं । किछू भला करते नाही । भला तो तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै । सो वह तो उलटा पापरूप प्रवर्त्तै । पापका सहाईका भला कैसे होय ? सो ही रयणसार शास्त्रविषै कह्या है—

> सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाणं सोहं वा ।
> लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥२६॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिको दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है बहुरि लोभी पुरुषनिको दान देना जो होय, सो शव जो मरथा ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभा समान जानहु । शोभा तो होय परन्तु धनीकों परम दुःखदायक हो है । तातै लोभी पुरुषनिकों दान देनेमें धर्म नाहीं बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए, जाकरि वाकै धर्म बधै । सुवर्ण हस्तीआदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजै वा मान लोभादि बधै । ताकरि महापाप होय । ऐसी वस्तुनिका देने वाला कों पुन्य कैसें होय । बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषै पुन्य ठहरावैं हैं । सो प्रत्यक्ष कुशी-लादिक पाप जहाँ होय, तहाँ पुण्य कैसें होय । अर युक्ति मिलावनेकों कहै

जो वह स्त्री सन्तोष पावै है। तो स्त्री तो विषय सेवन किए सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेको दिया। रतिसमय बिना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्ते दु.ख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसें ही दयादान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

बहुरि व्रतादिककरिकै तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है। सो व्रतादिक तो तिनको घटावनेके अर्थि कीजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तो त्याग करै अर कदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहा हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवस विषैं तो भोजन करै नाहीं अर रात्रिविषै करै। सो प्रत्यक्ष दिवस भोजनतें रात्रि भोजनविषै हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिकरि नाना शृङ्गार बनावै, कुतूहल करै, जूवा आदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकों चाहै, तहा कषायनिकी तीव्रता विशेष भई। ऐसें व्रतादिकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषै हिंसादिक पाप बधावै वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिको पोषै, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तै। तहाँ पाप तो बहुत उपजावै अर धर्मका किछू साधन नाहीं, तहा धर्म मानै सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकों तो क्लेश उपजावै अर तहा हिंसादिक निपजावै वा कषायादिरूप प्रवर्त्तै। जैसें पचाग्नि तापै, सो अग्निकरि बडे छोटे जीव जलैं, हिंसादिक बधै, यामैं धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख झूलै, ऊर्ध्व बाहु राखैं, इत्यादि साधन करै तहा क्लेश ही

होय; किछू ए धर्म के अंग नाहीं। बहुरि पवन साधन करें, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषै जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातैं मानादिक बधै, किछू तहां धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करै, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करै नाहीं। अंतरंग विषै क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि केई इस लोक विषै दुःख सह्या न जाय वा परलोकविषैं इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढावने के अर्थि वा कोई क्रोधादिकरि अपघात करै। जैसे पतिवियोगतै अग्निविषै जलकरि सती कहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित माही ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै हैं। सो अपघातका तो बडा पाप है। जो शरीरादिकतै अनुराग घटचा था तो तपश्चरणादि किया होता, मरि जाने में कौन धर्म का अंग भया। तातै अपघात करना कुधर्म है। ऐसै ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग हैं। कहां ताईं कहिए, जहां विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने।

देखो कालका दोष, जैनधर्म विषै भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषै जे धर्मपर्व कहे है, तहाँ तो विषय कषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताको तो आदरै नाही अर व्रतादिकका नाम धराय तहाँ नाना शृङ्गार बनावै वा इष्ट भोजनादि करै वा कुतूहलादि करै वा कषाय बधावनेके कार्य करै, जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तै।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषै उपदेश तो यहु था—'सावद्यलेशो

बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं'* पापका अंश बहुत पुण्य समूहविषै दोषके अर्थ नाही। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषै रात्रि विषै दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिकरूप पाप तो बहुत उपजावै अर स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामनिविषै प्रवर्त्तै नाही वा थोरे प्रवर्त्तै, सो टोटा घना नफा थोरा वा नफा किछू नाही। ऐसा कार्य करनेमैं तो बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तो धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तै वा तहाँ बाग बाडी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषै। बहुरि लोभी पुरुषनिकों गुरु मानि दानादिक दे वा तिनकी असत्य स्तुतिकरि महतपनों मानै, इत्यादि प्रकार करि विषयकषायनिको तो बधावै अर धर्म मानै। सो जिन-धर्म तो वीतरागभावरूप है। तिस विषै ऐसी विपरीत प्रवृत्ति काल दोषतै ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव–

अब इस विषै मिथ्यात्वभाव कैसे भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धान करनेविषै प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोडना। इस ही भाव का नाम धर्म्म है। जो रागादिक भावनिकों बधाय धर्म्म मानै, तहाँ तत्व श्रद्धान कैसे रह्या ? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली भया। बहुरि रागादिक भाव तो पाप है तिनको धर्म्म मान्या, सो

* "पूज्य जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

यह झूठ श्रद्धान भया । तातें कुधर्म्म सेवनविषें मिथ्यात्व भाव है। ऐसें कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषें मिथ्यात्व भावकी पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुड(मोक्खपा०)विषें कह्या है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु ।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु ॥ ९२ ॥

याका अर्थ—जो लज्जातें वा भयतें वा बडाईतें भी कुत्सित् देवको वा कुत्सित् धर्म्मको वा कुत्सित् लिंगकों वंदै हैं सो मिथ्यादृष्टी हो हैं। तातें जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहैं, सो पहले कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होय। सम्यक्त्व के पच्चीस मलनिके त्याग विषें भी अमूढ़दृष्टि विषें वा षडायतनविषें इनहीका त्याग कराया है । तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतें जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिंसादिक पापनितें बडा पाप है। याके फलतें निगोद नरकादि पर्याय पाईए है । तहाँ अनंतकाल पर्यंत महासंकट पाईए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़ विषें (भाव पाहुडमे) कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ,कुच्छिय पासंडि भत्तिसंजुत्तो ।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥१४०॥

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्म्म विषें रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि संयुक्त है, कुत्सित तपको करता है, सो जीव कुत्सित जो खोटी गति ताको भोगनहारा हो है । सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्र लोभतें वा भयतें कुदेवादिकका सेवनकरि जातें अनन्तकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं । जिनधर्म्म

विषैं यह तो आम्नाय है, पहलें बडा पाप छुडाय पीछैं छोटा पाप छुडाया। सो इस मिथ्यात्वकों सप्तव्यसनादिकतें भी बडा पाप जानि पहलें छुडाया है। तातें जे पापके फलतें डरे हैं, अपने आत्माकों दुःख समुद्रमें न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वको अवश्य छोडो। निन्दा प्रशसादिकके विचारतें शिथिल होना योग्य नाही। जातें नीति विषै भी ऐसा कह्या है—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वास्तु मरण तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥१॥ (नीतिशतक ८४)

जे निन्दे हैं ते निन्दो अर स्तवें है तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जहां तहा जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगातर विषै होहु परन्तु नीतिविषै निपुण पुरुष न्यायमार्गतैं पैडहू चलै नाही। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशसादिकका भयतैं लोभादिकतैं अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाही। अहो! देव गुरु धर्म्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। इनके आधारि धर्म है। इन विषै शिथिलता राखे अन्य धर्म कैसे होइ तातें बहुत कहनेकरि कहा, सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट हो हे। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातें इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकों जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषै कुदेव कुगुरु कुधर्म-निषेध वर्णन रूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥ ६ ॥

ॐ नम

सातवां अधिकार

जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टिका स्वरूप

दोहा।

इस भव तरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी है, जिन आज्ञाको मानै हैं अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है - जातै इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है, तातै सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगम विषै निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिन विषै यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकों न जानते अन्यथा प्रवर्त्तै हैं, सोई कहिए है—

केवल निश्चयनयावलम्बी जैनाभासका निरूपण

केई जीव निश्चयको न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकों मोक्षमार्गी मानै है। अपने आत्माकों सिद्ध समान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्ष ससारी हैं। भ्रमकरि आपकों सिद्ध मानै सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविषै जो सिद्ध समान आत्माको कह्या है सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाही हैं। जैसें राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसैं सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना

संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाही। यहु जैसे सिद्ध शुद्ध हैं,तैसें ही आपको शुद्ध माने। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए,सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानै सो आपकै तो क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तो कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतै कर्म्मका क्षय भए विना ही क्षायिकभाव मानै। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषै सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है,सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषै केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।

कोऊ ऐसा मानै है—आत्माके प्रदेशनिविषैं तो केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतै प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो बज्रपटलादि आडे होते भी वस्तुको जानै। कर्मको आड़े आए कैसें अटकै। तातै कर्मके निमित्ततै केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है तो याको पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तो क्षायिकभाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाही। तातै केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषै सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना,जैसै मेघपटल होते सूर्य प्रकाश प्रगट न हो है, तैसै कर्मउदय होते केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसे सूर्यविषैं प्रकाश रहै है, तैसे आत्म विषै केवलज्ञान रहै है। जातैं दृष्टांत सर्व प्रकार मिलै नाही। जैसैं पुद्गल विषैं वर्ण गुण है, ताकी

हरित पीतादि अवस्था हैं । सो वर्तमान विषै कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है । तैसे आत्मा विषै चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था हैं । सो वर्तमान कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है ।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाही है तो केवलज्ञानावरण काहेकों कहो हो ?

ताका उत्तर—यहा शक्ति है ताको व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है । जैसे देशचारित्रका अभाव होते शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या तैसे जानना । बहुरि ऐसे जानो—वस्तु विषै जो परनिमित्ततै भाव होय ताका नाम औपाधिक-भाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय ताका नाम स्वभाव भाव है । सो जैसे जलकै अग्निका निमित्त होते उष्णपनो भयो, तहां शीतलपनाका अभाव ही है । परन्तु अग्निका निमित्त मिटे शीतलता ही होय जाय तातै सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए,जातै ऐसी शक्ति सदा पाइए है । बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । कदाचित् व्यक्तरूप हो है । तैसै आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतें अन्य रूप भयो, तहाँ केवलज्ञानका अभाव ही है । परन्तु कर्म्म का निमित्त मिटे सर्वदा केवलज्ञान होय जाय । तातै सदा काल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है । जातै ऐसी शक्ति सदा पाईए है । व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए । बहुरि जैसे शीतल स्वभावकरि उष्णजलकों शीतल मानि पानादि करै, तो दाझना ही होय । तैसें केवल

ज्ञानस्वभावकरि अशुद्ध आत्माकों केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तो दुःखी ही होय। ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकों अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतें भ्रमकरि आत्माको रागादिरहित मानै। सो पूछिए हैं—ए रागादिक तो होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषै है। जो शरीर वा कर्मरूप-पुद्गलके अस्तित्वविषै होय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक होय। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिए अमूर्त्तीक भाव भासै हैं। तातै ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषै कह्या है—

कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृते स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात् कृतिः।
नैकस्या प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत् पुद्गल.॥

(सर्ववि० अधिकार कलश २०३)

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि न किया, ऐसा नही है, जातै यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इन दोऊनिका भी कर्तव्य नाही जातै ऐसै होय तो अचेतन कर्म्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ, सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाही, जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातै इस रागादिकका जीवही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है। जातै भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाही।

ऐसें रागादिकभाव जीव के अस्तित्वविषैं हैं। अब जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्मही को मानि आपकों रागादिकका अकर्त्ता मानैं हैं, सो कर्त्ता तो आप अर आपको निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातैं कर्म्म हीका दोष ठहरावै हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशा विषै कह्या है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥

(सर्व वि० अधिकार कलश २२१)

याका अर्थ—जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषै परद्रव्यहीकों निमित्तपनो मानै है, ते जीव शुद्ध ज्ञानकरि रहित है अंधबुद्धि जिनकी ऐसे होत सते मोहनदीको नाही उतरै हैं। बहुरि समयसारका 'सर्वविशुद्धिअधिकार' विषै जो आत्मा को अकर्त्ता मानै है अरयहु कहै है—कर्म ही जगावै सुवावै है, परघात कर्मतै हिंसा है, वेदकर्मतै अब्रह्म है, तातै कर्म ही कर्त्ता है; तिस जैनीको साख्यमती कह्या है। जैसें साख्यमती आत्माको शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसे ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतै यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं आपको अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाही, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बाधि अनतससारविषै रुलै है।

यहां प्रश्न—जो समयसारविषै ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा

भिन्नाभावा. सर्व्व एवास्य पुंस.✽।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातें भिन्न हैं। बहुरि तहाँ ही रागादिकको पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषै भी रागादिकतै भिन्न आत्माकों कह्या है, सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्य के निमित्ततै औपाधिकभाव हो हैं अर यहु जीव तिनिको स्वभाव जानै है। जाको स्वभाव जानै, ताको बुरा कैसे मानै वा ताके नाशका उद्यम काहेको करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुडावनेको स्वभावकी अपेक्षा रागादिक कों भिन्न कहे है अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसे वैद्य रोग मेटया चाहै है, जो शीतका आधिक्य देखै तो उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै। तैसें श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहै हैं। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय निरुद्यमी होय, ताको उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाही करै है ताको निमित्तकारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव हैं, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतै रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानै— ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तो नाही हैं, कर्म के निमित्ततैं

✽ वर्णाद्यावा राग मोहादयो वा भिन्ना भावा सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वत· पश्यतोऽमीनो दृष्टा स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्॥
(जीवाजी० कलश ३७)

आत्मा के अस्तित्वविषै विभावपर्याय निपजे हैं। निमित्त मिटे इनका नाश होतै स्वभावभाव रहि जाय है। तातै इनिके नाशका उद्यम करना।

यहाँ प्रश्न—जो कर्मका निमित्त तैं ए हो हैं, तो कर्मका उदय रहै तावत् ए विभाव दूरि कैसैं होंय ? तातै याका उद्यम करना तो निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषै अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषै जे कारण बुद्धिपूर्वक होय, तिनको तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलै तब कार्यसिद्धि होय। जैसैं पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहाँ पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसै विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तो तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म का उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तो उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहा ऐसा कहै हैं कि जैसे विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं तैसै तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिकके आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तो क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरे भया है। याहीतै उपयोगकों यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असंज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाही है, तो उनकों काहेकों

उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय तो तहाँ उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है तो सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तो उद्यम करै अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहाँ नाहीं। मानादिक करि ऐसी भूठी बातै बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होते तिन करि रहित आत्माको मानै हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होते आत्माको निर्बन्ध मानै, सो प्रत्यक्ष इनिका बधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतै ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बधन कैसे नाहीं। जो बधन न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेको करै।

यहा कोऊ कहै—शास्त्रनिविषैं आत्माको कर्म नोकर्मतै भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसे कह्या है ?

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार है। तहाँ तादात्म्य सबध अपेक्षा आत्माकों कर्म नोकर्मतै भिन्न कह्या है। जातै द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्ध स्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षा बन्धन है ही। उनके निमित्ततै आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातै सर्वथा निर्बन्ध आपकों मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहा कोऊ कहै—हमको तो बध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं,

जाते शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु ।"

याका अर्थ—जो जीव बध्या अर मुक्त भया मानै है,सो निःसन्देह बधै है ताको कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बध मुक्त अवस्था ही को मानै हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाही करै हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्य स्वभावको न जानता जीव बध्या मुक्त भया मानै, सो बधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बन्ध मुक्ति न होय, तो सो जीव बधै है, ऐसा काहेको कहै । अर बन्ध के नाश का, मुक्त होने का उद्यम काहेको करिए है। काहेको आत्मानुभव करिये है। तातै द्रव्यदृष्टि करि एक दशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है।

ऐसे ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतै विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवाणीविषै तो नाना नय अपेक्षा कही कैसा कही कैसा निरूपण किया है । यह अपने अभिप्रायतै निश्चयनय की मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीको ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिको धारै है। बहुरि जिनवाणीविषै तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषै सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाही। अर चारित्रविषै रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाही । एक अपने आत्माकों शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है । ताका अभ्यास करनेकों अंतरंगविषै ऐसा चिंतवन किया करै है—मैं सिद्ध समान शुद्ध हूं, केवलज्ञानादि सहित हूं, द्रव्यकर्म

नोकर्म रहित हूँ, परमानन्दमय हूँ, जन्म मरणादि दुःख मेरै नाहीं, इत्यादि चितवन करै है। सो यहाँ पूछिए है—यहु चितवन जो द्रव्य-दृष्टिकरि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहेको करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो, तो तुम्हारै तो वर्त्तमान अशुद्ध पर्याय है। तुम आपाको शुद्ध कैसे मानो हो ? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूँ ऐसा मानो। मैं ऐसा हूँ ऐसे काहेको मानो हो। तातैं आपको शुद्धरूप चितवन करना भ्रम है। काहेतैं—तुम आपको सिद्ध-समान मान्या, तो यहु संसार अवस्था कौनकी है। अर तुम्हारै केवल-ज्ञानादिक हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्म-रहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नही ? परमानन्दमय हो, तो अब कर्त्तव्य कहा रह्या ? जन्म मरणादि दुःख ही नाही, तो दुःखी कैसे होते हो ? तातैं अन्य अवस्थाविषै अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहा कोऊ कहै—शास्त्रविषै शुद्ध चितवन करनेका उपदेश कैसैं दिया है।

ताका उत्तर—एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा-शुद्धपना है। तहाँ द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यतैं भिन्नपनो वा अपने भाव-नितैं अभिन्नपनों ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा औपा-धिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्ध चिंतवनविषै द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसारव्याख्या-विषैं कह्या है—

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते । (समयसार आत्मख्याति टीका गाथा० ६)

याका अर्थ–जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है । सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितैं भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है । बहुरि तहाँ ही ऐसा कह्या है ।

सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्ध ।
(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा ७३)

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातैं पारगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है, तातैं शुद्ध है । तातैं ऐसे शुद्ध शब्द का अर्थ जानना । बहुरि ऐसै ही केवल शब्द का अर्थ जानना । जो परभावतैं भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है । ऐसै ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना । पर्याय अपेक्षा शुद्धपनो मानें वा केवली आपको मानें महाविपरीत होय । तातैं आपको द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना । द्रव्यकरि सामान्य-स्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना । ऐसै ही चिंतवन किए सम्यग्दृष्टी हो है । जातैं सांचा अवलोके बिना सम्य-ग्दृष्टी कैसे नाम पावै ।

बहुरि मोक्षमार्गविषै तो रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है सो तो विचार ही नाहीं । आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपको सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है, शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारको विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण

करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमे परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकों शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्व साधनकों उठाय प्रमादी होय परिणमैं है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिनकै भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषै उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषै उपयोगकू लगावै है, अन्य ठिकाना बीच मे उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्र अभ्यासकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतै सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मन्द रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसे कार्यको निरर्थक कैसें मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषै अध्यात्म उपदेश है, तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं।

ताको कहिए है—जो तेरै साची दृष्टि भई है, तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्यकारी हैं। तहा भी मुख्यपने अध्यात्म शास्त्रनिविषै तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तो निर्णय होय चुकै, तब तो ज्ञान की निर्मलता के अर्थि वा उपयोग को मंद-कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए परन्तु अन्य शास्त्रनिविषै अरुचि तो न चाहिए। जाकै अन्य शास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि साची नाहीं। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो

विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितें सुनै वा विषयके विशेषकों भी जानै वा विषयके आचरनविषै जो साधन होय ताकों भी हितरूप मानै वा विषका स्वरूपकों भी पहिचानै। तैसें जाकै आत्मरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानै। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकों गुणस्थानादिकको भी जानै। बहुरि आत्मा-चरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनको भी हितरूप मानै। बहुरि आत्माके स्वरूपको भी पहिचानै। तातैं च्यारघो ही अनुयोग कार्य-कारी हैं। बहुरि तिनका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्द न्यायशास्त्रा-दिकको भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषै ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतैं निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तो आत्माकी है, ताकों छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिणी भई, ताकों व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसे स्त्री शीलवती रहै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो उत्तम पुरुषको छोरि चाडालादिकका सेवन किए तो अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसें बुद्धि आत्मस्वरूपविषै प्रवर्त्तै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकों छोरि अप्रशस्त विषयादिविषै लगै तो महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषै बहुत काल बुद्धि रहै नाही तो तेरी कैसें रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषै उपयोग लगावना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिक-

का वा गुणस्थानादिकका विचारको विकल्प ठहरावै है,सो विकल्प तो है परतु निर्विकल्प उपयोग न रहे तब इनि विकल्पनिको न करै तो अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादि गर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाही। जातै छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तो अन्तर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा–मैं आत्मस्वरूपही का चिंतवन अनेक प्रकार किया करूँगा, सो सामान्य चितवनविषैं तो अनेक प्रकार बनै नाही। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतै तो मोक्षमार्ग होइ नाही। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। सो सप्त तत्व-निका विशेष जाननेको जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातै सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछे रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनको छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होय तहां उपयोगको लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेको कारण है। इन विषै कोई रागादिकका निमित्त नाही। तातै सम्यग्दृष्टी भए पीछेंभी इहाँही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है— रागादि मिटावनेको कारण होय तिनविषै तो उपयोग लगावना परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिका गति आदि विचार करना वा कर्मका बध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्य-कारी है।

ताका उत्तर—इनिकों भी विचारतें रागादिक बधते नाही। जातें ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातें वर्तमान रागादिककों कारण नाही। बहुरि इनको विशेष जाने तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातें आगामी रागादिक घटावनेको ही कारण हैं। तातें कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिकको जाने तहाँ रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तो ऐसी बुद्धि होइ नाही, अज्ञानीकै होय। तहा पाप छोरि पुण्यकार्यविषै लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही है।

बहुरि वह कहै है-शास्त्रविषै ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातें बहुत विकल्प काहेको कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानै अर प्रयोजनभूतको न जानै अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाही, तिनको यहु उपदेश दिया है। बहुरि जाकी बहुत जाननेकी शक्ति होय, ताको तो यहु कह्या नाही जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। जातेंशास्त्रविषै ऐसा कह्या है—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतें विशेष बलवान है। विशेषहीतें नीके निर्णय हो है। तातें विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणको वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्गी भए तो ससारी जीवनितें उलटी परणति चाहिए। ससारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतें रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेके अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है अर द्वेष छोडनेके अर्थि अनिष्ट

सामग्री अनशनादिक ताका अंगीकार करै है। स्वाधीनपनें ऐसा साधन होय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलें भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसे अर तेरै अनशनादितै द्वेष भया, तातैं ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहरचा, तहा राग आया, तो ऐसी परिणति तो ससारीनिकै पाईएही है, ते मोक्षमार्गी होय कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाही करें हैं।

ताका उत्तर--यहु कारण विशेषतै तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषै तो तपको भला जानै हैं। ताके साधनका उद्यम राखें हैं। तेरै तो श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाही, तातै तेरै सम्यग्दृष्टी कैसे होय ?

बहुरि वह कहै है--शास्त्रविषै ऐसा कह्या है–तप आदिका क्लेश करै है तो करो, ज्ञान बिना सिद्धि नाही।

ताका उत्तर---यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतै तो परान्मुख हैं, तपहीतैं मोक्ष मानै हैं, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान बिना केवल तपहीतै मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तपकरनेका तो निषेध है नाही। जो निषेध होय तो गणधरादिक तप काहेको करें। तातै अपनी शक्ति अनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिकको बधन मानै है। सो स्वच्छन्दवृत्तितो अज्ञान-अवस्थाही विषै थी, ज्ञान पाए तो परिणतिको रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकनेके अर्थि बाह्य हिसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है-हमारे परिणाम तो शुद्ध हैं, बाह्य त्याग न किया तो न किया।

ताका उत्तर-जे ए हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होंय, तो हम ऐसे मानैं। बहुरि जो तू अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषय सेवनादि क्रिया वा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसे होय। सो क्रिया तो आपउद्यमी होय तू करै अर तहाँ हिंसादिक होय ताको तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानैं। सो ऐसी मानितैं तेरे परिणाम अशुद्ध ही रहेगे।

बहुरि वह कहै है-परिणामनिको रोकिए वा बाह्य हिंसादिक भी घटाईए, परन्तु प्रतिज्ञा करने मे बन्धन हो है, तातैं प्रतिज्ञारूप व्रत नाही अगीकार करना।

ताका समाधान—जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतैं राग रहै है। तिस रागभावतैं बिना कार्य किए भी अविरतितैं कर्मका बन्ध हुवा करै। तातैं प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। अर कार्य करनेका बधन भए बिना परिणाम कैसे रुकेगे, प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा बिना प्रयोजन पडे ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछैं प्रतिज्ञाभंग होय तो महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनैं सो बनौ, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करत जाका निर्वाह होता न

जाने, तिस प्रतिज्ञाको तो करै नाही। प्रतिज्ञा लेतें हो यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पडे छोडदूंगा, तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करते तो यहु परिणाम है, मरणात भए भी न छोडूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। बिना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बध मिटै नाही। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयको विचारे सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसे आपको पचाता जानै, तितना भोजन करै, कदाचित् काहूकै भोजनतें अजीर्ण भया होय तो तिस भयतें भोजन करना छांडै तो मरण ही होय। तैसे आपकै निर्वाह होता जानै तितनी प्रतिज्ञा करै, कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातें भ्रष्टपना भया होय, तो तिस भयतें प्रतिज्ञा करनी छाडै तो असयम ही होय। तातें बनै सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेको करै है। जो तहा उद्यम करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेगे। तातैं काहेको स्वछन्द होनेकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

बहुरि वह पूजनादि कार्यको शुभास्रव जानि हेय मानै है सो यहु सत्य ही है। परन्तु जो इनि कार्यनिको छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तो भले ही है अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै तो अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतें स्वर्गादि होय वा भली वासनातें वा भला निमित्ततें कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय तो सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति

होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतैं नरक निगोदादि होय वा बुरी वासनातैं वा बुरा निमित्ततैं कर्मका स्थिति अनुभाग बधि जाय, तो सम्यक्तादिक महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होते कषाय मंद हो है, अशुभोपयोगहोते तीव्र हो है। सो मंदकषायका कार्य छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है, जैसे कड़वी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्र विषै शुभ अशुभकों समान कह्या है, तातैं हमको तो विशेष जानना युक्त नाही।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकों मोक्षका कारण मानि उपादेय मानै है, शुद्धोपयोगकों नाही पहिचानै हैं, तिनकों शुभ अशुभ दोऊनिको अशुद्धताकी अपेक्षा वा बंधकारणकी अपेक्षा समान दिखाए हैं। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तो शुभ भावनि विषै कषायमंद हो है, तातैं बंध हीन हो है। अशुभभावनिविषै कषायतीव्र हो है, तातैं बंध बहुत हो है। ऐसें विचार किएं अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषै शुभको भला भी कहिए है। जैसे रोग तो थोरा वा बहुत बुरा ही है परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगको भला भी कहिए है। तातैं शुद्धोपयोग नाही होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषै प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभको छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाही।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकों अशुभरूप प्रवृत्ति तो भए विना रहती नाहीं अर शुभप्रवृत्ति चाहिकरि करनी परै है, ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं; तातैं शुभका उद्यम नाहीं

करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषै उपयोग लागनेकरि वा ताके निमित्ततै विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषैं भी संक्लेश थोरा हो है। तातै शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडै हैं तो ताके अर्थि जैसे थोरा पाप लागै सो करना। बहुरि शुभोपयोगको छोडि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तो युक्त नाही। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाहि नाही अर शुभोपयोग चाहि किए हो है सो जैसे पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाही परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानै, तहाँ चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसे ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाही परन्तु जहाँ बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानै तहाँ चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभ कार्य करनेका उद्यम करै है। ऐसे यहु बात सिद्ध भई—जहाँ शुद्धोपयोग होता जानै, तहाँ तो शुभ कार्यका निषेध ही है अर जहां अशुभोपयोग होता जानै, तहाँ शुभकों उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यको उथापि स्वच्छन्दपनाको स्थापै है, ताका निषेध किया।

अब तिस ही केवल निश्चयावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—

एक शुद्धात्माको जानै ज्ञानी हो है, अन्य किछू चाहिए नाही। ऐसा जानि कबहू एकांत तिष्ठिकरि ध्यानमुद्रा धारि मैं सर्वकर्म उपाधिरहित सिद्ध समान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसे संभवै, ऐसा विचार नाही। अथवा अचल

अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकों ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषै भी सम्भवै हैं । बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा हैं, सो विचार नाही । बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषै ऐसा विचार राखि आपको ज्ञानी मानै है। बहुरि ज्ञानी कै आस्रव बध नाही ऐसा आगमविषै कह्या है तातै कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहां बध होनेका भय नाही है, स्वच्छन्द भया रागादिरूप प्रवर्त्तै है । सो आपा परको जाननेका तो चिन्ह वैराग्य-भाव है सो समयसारविषै कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्ति ।"*

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसो ज्ञानवैराग्य शक्ति होय । बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टि स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व रिक्ताः।।१३७।।

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मै सम्यग्दृष्टी हूँ, मेरै कदाचित् बध नाही, ऐसैं ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसे रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै है तो करो, बहुरि पचसमितिकी सावधानीको

* सम्यग्दृष्टेर्भवति नियत ज्ञानवैराग्यशक्ति., स्व वस्तुत्व कलयितुमयं स्वान्य रूपाप्तिमुक्त्या । यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिद तत्त्वत: स्व पर च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ।। निर्जरा० कलश १३६ ।।

अवलम्बे हैं तो अवलम्बो, जातैं वे ज्ञान शक्ति बिना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परको पर जान्या, तो परद्रव्यविषै रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहाँ वह कहै है-मोहके उदयतैं रागादि हो है। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय कषाय रूप कार्य भया सुनिये है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं—यहु सत्य परन्तु बुद्धि पूर्वक रागादिक होते नाही। सो विशेष वर्णन आगैं करेंगे। बहुरि जाकै रागादिक होनेका किछू विषाद नाही, तिनके नाशका उपाय नाही, ताकै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाही सम्भवै है। ऐसैं श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टी कैसे होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तो इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायकी प्रवृत्ति जैसैं हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वछन्द होगा तो तेरै तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

मग्ना ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमा.*।

---

* मग्ना. कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यन्।
मग्ना' ज्ञाननयैषिणोपि यदिति स्वच्छन्दमन्दोद्यमा: ॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्त स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥
—समयसार कलश १११

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो है, ते ससारविषैं डूबे और भी तहा "**ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्तु नुचितं**" —इत्यादि कलशाविषै वा "**तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिन**"—इत्यादि कलशा विषै स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय सो कर्मबन्धका कारण नाही। अभिप्रायतै कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तो बनै नाही; इत्यादि निरूपण किया है। तातै रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषै पहलै तीव्ररागादि छोडनेके अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभ विषै लागना, पीछै मदरागादि भी छोडनेके अर्थि शुभको भी छोरि शुद्धोपयोग रूप होना।

बहुरि केई जीव अशुभविषै क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिको भी घटावै हैं। बहुरि शुभको हेय जानि शास्त्राभ्यासादि कार्यनिविषै नाही प्रवर्त्तै है। वीतराग भावरूप शुद्धोपयोगको प्राप्त भए नाही, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतै रहित होते सते आलसी निरुद्यमी हो है। तिनकी निन्दा पचास्तिकायकी व्याख्या विषै कीनी है। तिनको दृष्टात दिया है—जैसे बहुत खीर खाड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसे वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसें ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनको पूछिए है—तुम बाह्य तो शुभ अशुभकार्यनिको घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बन बिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहाँ रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चितवन करै है, तो

शास्त्रादि करि अनेक प्रकारके आत्माका विचारको तो तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमे बहुतकाल लागै नाहीं बारम्बार एकरूप चितवनविषै छद्मस्थका उपयोग लगता नाही। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसें न रहि सकै, तातै वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तै हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतै भी कैसे शुद्ध भया मानिए। तातै तेरा कहना प्रमाण नाही। जैसै कोऊ व्यापारादिविषै निरुद्यमी होय ठाला जैसे तैसे काल गुमावै, तैसे तू धर्म्म विषै निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँही काल गमावै है। कबहू किछू चितवनसा करै, कबहूँ बातै बनावै, कबहूँ भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेको शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्ति आदि कार्यनिविषै प्रवर्त्तता नाही। सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहा क्लेश थोरा होनेतै जैसै कोई आलसी होय परचा रहने मे सुख मानै, तैसे आनन्द मानै है। अथवा जैसे सुपने विषै आपको राजा मानि सुखी होय, तसे आपको भ्रमतै सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसे कही रति मानि सुखी हो है, तैसे किछू विचार करने विषै रति मानि सुखी होय, ताको अनुभवजनित आनन्द कहै है। बहुरि जैसे कही अरति मानि उदास होय, तैसे व्यापारादिक पुत्रादिकको खेदका कारण जानि तिनतै उदास रहै है, ताको वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषै निराकुलता होय, सो साचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्र मोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोडि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा

प्रवर्त्ते है । आपको तहाँ कषायरहित मानै है, सो ऐसै आनन्दरूप भए तो रौद्रध्यान हो है । जहा सुख सामग्री छोडि दुख सामग्री का सयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै, तब नि कषाय भाव हो हैं। ऐसैं भ्रमरूप तिनको प्रवृत्ति पाईए है । या प्रकार जे जीव केवल निश्चयाभासके अवलम्बी है, ते मिथ्यादृष्टी जानने । जैसैं वेदाती वा साँख्यमतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसे ए भी जानने । जातै श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनको इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनको इष्ट लागै है ।

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है–जो केवल शुद्धात्मा का चितवनतै तो सवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अश तहाँ प्रगट हो है । बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चितवन किए आस्रव बन्ध हो है । तातै अन्य विचारतै पराङ्मुख रहै है । सो यहु भी सत्य श्रद्धान नाही, जातै शुद्ध स्वद्रव्यका चितवन करो वा अन्य चितवन करो, जो वीतरागता लिए भाव होय, तो तहाँ सवर निर्जरा ही है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बध ही है । जो परद्रव्यके जानने-होतै आस्रव बन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्यको जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बन्ध होय। बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै पर-द्रव्य चितवन होते आस्रव बन्ध हो है । सो भी नाही, जातै शुक्ल ध्यानविषै भी मुनिनिकै छहो द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायका चितवन होना निरूपण किया है वा अवधिमन· पर्यायादिविषै परद्रव्यके जाननेही को विशेषता हो है । बहुरि चौथा गुणस्थानविषै कोई अपने

स्वरूपका चिंतवन करै है, ताकै भी आस्रव बन्ध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाही है। पंचम षष्टम गुणस्थानविषै आहार,विहारादि क्रिया होते परद्रव्य चिंतवनतै भी आस्रव बन्ध थोरा हो है वा गुण-श्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातै स्वद्रव्य परद्रव्यका चिंतवनतै निर्जरा बंध नाही। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बन्ध है। ताकौं रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाही, तातै अन्यथा मानै है।

तहाँ वह पूछै है कि ऐसैं है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषै नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प का निषेध किया है, सो कैसैं है?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषै लगि रहे हैं, अभेद-रूप एक आपको अनुभवै नाही है, तिनको ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करनेको कारण हैं। वस्तु का निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाही। तातै इन विकल्पनिको भी छोडि अभेदरूप एक आत्माका अनुभवन करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाही। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछें ऐसा नाही, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यहीका चितवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिए होय,तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहाँ वह पूछै है-यहाँ तो बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसें सम्भवै?

ताका उत्तर—निर्विचार होनेका नाम निर्विकल्प नाही है। जातैं छद्मस्थके जानना विचार लिए है। ताका अभाव मानें ज्ञानका अभाव

होय, तब जड़पना भया सो आत्माके होता नाही । तातै विचार तो रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाही। तो सामान्यका विचार तो बहुत काल रहता नाही वा विशेष की अपेक्षा बिना सामान्यका स्वरूप भासता नाही। बहुरि कहिए— आपहीका विचार रहता है परका नाही, तो परविषै पर बुद्धि भए बिना आपविषै निजबुद्धि कैसे आवै ? तहाँ वह कहै है, समयसारविषै ऐसा कह्या है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ।।

(कलश १३०–संवर अधिकार)

याका अर्थ यहु–भेद विज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतै छूटे ज्ञान है सो ज्ञानविषै स्थित होय। तातै भेद विज्ञान छूट पर का जानना मिटि जाय है। केवल आपहीको आप जान्या करै है।

सो यहाँ तो यहु कह्या है—पूर्वै आपा परको एक जानै था, पीछै जुदा जाननेको भेद विज्ञानको तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपको भिन्न जानि अपने ज्ञानस्वरूपही विषै निश्चित होय। पीछै भेदविज्ञान करनेका प्रयोजन रह्या नाही। स्वयमेव परको पररूप आपको आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाही, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। तातै परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जाननेका नाम विकल्प नाही है। तो कैसे है ? सो कहिए है– राग द्वेषके वशतै किसी ज्ञेयके जानने विषै उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके

जाननेतै छुडावना, ऐसे बार बार उपयोगको भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है । बहुरि जहाँ वीतरागरूप होय जाकों जानै है, ताकों यथार्थ जानै है । अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगको नाही भ्रमावै है, तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहा कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तो नाना ज्ञेय विषै भ्रमै ही भ्रमै। तहाँ निर्विकल्पता कैसे सम्भवै है ?

ताका उत्तर–जेते काल एक जानने रूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै । सिद्धान्तविषै ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है–
"एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम् ।"❀

एकका मुख्य चितवन होय अर अन्य चिना रुकै,ताका नाम ध्यान है। **सर्वार्थसिद्धि** सूत्रकी टोका विषै यहु विशेष कह्या है–जो सर्व चिता रुकनेका नाम ध्यान होय तो अचेतनपनो होय जाय । बहुरि ऐसो भी विविक्षा है जो सतान अपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगको भ्रमावै नाही, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै–ऐसे है तो परद्रव्यतै छुडाय स्वरूपविषै उपयोग लगावने का उपदेश काहेको दिया है ?

ताका समाधान—जो शुभ अशुभ भावनिको कारण पर द्रव्य है, तिनविषै उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवै है अर स्वरूप-

❀ "उत्तम महननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तमुहूर्तात् ।"
(तत्त्वार्थसूत्र ६-२७)

चितवन करै तो राग द्वेष घटै हैं, ऐसे नीचली अवस्थावारे जीवनिकों पूर्वोक्त उपदेश है । जैसे कोऊ स्त्री विकारभावकरि पर घर जाती थी, ताको मनै करी—पर घर मति जाय, घर मे बैठि रहो । बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तो किछू दोष है नाही । तैसे उपयोगरूप परणति राग-द्वेष भावकरि पर द्रव्यनिविषै प्रवर्त्तै थी, ताकों मनै करी—परद्रव्यनिविषै मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषै मग्न रहो । बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीतरागभावकरि परद्रव्यको जानि यथायोग्य प्रवर्त्तै, तो किछू दोष है नाही ।

बहुरि वह कहै है—ऐसें है तो महामुनि परिग्रहादिक चितवनका त्याग काहेकों करै हैं ।

ताका समाधान—जैसे विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसे वीतराग परणति रागद्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है । बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाही, ऐसे परघर जानेका त्याग है नाही । तैसे जे राग द्वेषको कारण नाही,ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाही ॥

बहुरि वह कहै है-जैसे जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तो जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाही । तैसे परणतिको प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना, बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाही ।

ताका समाधान-जैसे स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसे परणति तत्त्वनिका विशेष जाननेंको कारण

गुणस्थानादिक वा कर्म्मादिककों भी जानै। बहुरि तहाँ ऐसा जानना–जैसे शीलवती स्त्री उद्यमकरि तो विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहाँ जाना बनि जाय, तहाँ कुशील न सेवै तो स्त्री शीलवती ही है। तैसे वीतराग परणति उपायकरि तो रागादिकके कारण पर-द्रव्यनिविषै न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहा रागादिक न कर तो परणति शुद्ध ही है। तातै स्त्री आदिका परीषह मुनिनकै होय, तिनिको जानै ही नाही, अपन स्वरूप ही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तो है परन्तु रागादिक नाही करै है। या प्रकार परद्रव्यको जानत भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै–ऐसै है तो शास्त्रविषै ऐसै कैसे कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है?

ताका समाधान—अनादितै परद्रव्यविषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुडावनेको यहु उपदेश है। आपही विषै आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषै रागद्वेषादि परणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका ,परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेते सम्यग्दर्शनादि न होते होय, तो केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहा परद्रव्यको बुरा जानना, निज द्रव्यको भला जानना, तहाँ तो रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपको आपरूप परको पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसे ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो हैं, ऐसे जानना। तातैं बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही

श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसें रागादि मिटावनेका जानना होय सोही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसें रागादि मिटै सोही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्व का निरूपण किया।

केवल व्यवहारावलम्बी जैनाभास का निरूपण

अब व्यवहाराभास पक्षके धारक जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है–जिनआगम विषै जहा व्यवहारकी मुख्यताकरि उपदेश है, ताकौ मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनकै सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावको प्राप्त होय है सो विशेष कहिए हैं। यहा ऐसा जानि लेना, व्यवहारधर्मकी प्रवृत्तितै पुण्यबंध होय है, तातै पापप्रवृत्ति अपेक्षा तो याका निषेध है नाही। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति ही करि सन्तुष्ट होय, साचा मोक्षमार्गविषै उद्यमी न होय है, ताको मोक्षमार्गविषै सन्मुख करनेकों तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताको सुनि जो शुभ प्रवृत्ति छोडि अशुभविषै प्रवृत्ति करोगे तो तो तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्तोगे तो तुम्हारा भला होगा। जैसे कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोडि कुपथ्य करेगा तो वह मरेगा, वैद्यका किछू दोष नाही। तैसे कोउ ससारी पुण्यरूप-धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोडि विषयकषायरूप प्रवर्त्तेगा, तो वह ही नरकादिविषै दुःख पावेगा। उपदेश दाताका तो दोष है

नाही। उपदेश देनेवालेका तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुडाय मोक्षमार्गविषै लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतै इहाँ निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म मानने का निषेध

तहाँ कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी है, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाही। परन्तु कुलविषै जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसै प्रवर्त्तैं हैं। सो जैसै अन्यमती अपने कुलधर्मविषै प्रवर्त्तैं है, तैसै ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहोतै धर्म होय, तो मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या ? सोई कह्या है।

लोयम्मि रायणीई णाय ण कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥

(उप मि र. गा ७)

याका अर्थ—लोकविषै यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रमकरि न्याय नाही होय है। जाका कुल चोर होय, ताको चोरी करता पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोडै नाही, दंड ही दे। तो त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषै कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहाँ तो कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाही, तो धर्मविषै कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहाँ कुलक्रम कैसे रह्या ? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय। तातै धर्मविषै कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाही। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोष तै जिनधर्म विषै भी पापी पुरुषनिकरि

कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्यागकरि जिनआज्ञा अनुसारि प्रवर्त्तना योग्य है।

इहा कोऊ कहै—परम्परा छोडि नवीन मार्गविषै प्रवर्तना युक्त नाही। ताको कहिए है—

जो अपनी बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै तो युक्त नाही। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषै लिख्या है, ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमे पापी पुरुषाँ अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तो ताकों परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताको छोडि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था तैसे प्रवर्त्त, तो ताकों नवीन मार्ग कैसें कहिए। बहुरि जो कुलविषै जैसै जिनदेवकी आज्ञा है, तैसें ही धर्म्म की प्रवृत्ति है, तो आपको भी तैसें ही प्रवर्त्तना योग्य है। परन्तु ताकों कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अगीकार करना। जो साचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्त्तै है तो वाको धर्मात्मा न कहिए, जातै सर्व कुलके उस आचरणको छाडै तो आप भी छोडि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है सो कुल का भयकरि करै है, किछू धर्म बुद्धितै नाही करै है; तातै वह धर्मात्मा नाही। तातै विवाहादि कुल सम्बन्धी कार्यनिविषै तो कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बन्धी कार्यविषै कुलका विचार न करना। जैसें धर्ममार्ग साँचा है, तैसे प्रवर्त्तना योग्य है।

परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्व का प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो हैं। जैसें शास्त्रविषै आज्ञा है

तस मानें है परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाही । सो आज्ञा ही मानना धर्म होय तो सर्व मतवाले अपने अपने शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होय । तातै परीक्षाकरि जिनवचननिको सत्यपनो पहिचानि जिन आज्ञा माननी योग्य है । बिना परीक्षा किए सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय ? अर बिना निणय किए जैसे अन्यमती अपने शास्त्रनिकी आज्ञा माने है, तैसे यान जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी । यहु तो पक्षकार आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषै दश प्रकार सम्यक्त्वविषै आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है वा आज्ञाविचय धर्म ध्यानका भद कह्या ह वा निःशंकित अंगविषै जिनवचनविषै सशय करना निषेध्या है, सो कसे है ?

ताका समाधान–शास्त्रनिविषै कथन केइ तो ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है । बहुरि केई कथन ऐसे है, जो प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर नाही । तातै आज्ञा ही करि प्रमाण हाय है । तहाँ नाना शास्त्रनिविषै जे कथन समान होय, तिन-का ता परीक्षा करनका प्रयोजन ही नाही । बहुरि जा कथन परस्पर विरुद्ध होइ, तिनिविषै जा कथन प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होय, तिनका तो परीक्षा करनी । तहा जिनशास्त्र क कथन की प्रमाणता ठहरै तिनि शास्त्रविषै जे प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाही ऐसे कथन किए होय, तिनका भी प्रमाणता करनी । बहुरि जिनशास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमणता माननी ।

इहा कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषै प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषै अप्रमाण भासै तो कहा करिए ?

ताका समाधान–जे आप्तके भासे शास्त्र हैं, तिनिविषै कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातै कै तो जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय तो असत्य कहै । सो आप्त ऐसा होय नाही, तातै परीक्षानी की नाही करी है, तातै भ्रम है ।

बहुरि वह कहै है– छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय तो कहा करै ?

ताका समाधान—साची झूठी दोऊ वस्तुनिको मीडे अर प्रमाद छोडि परीक्षा किए तो साची ही परीक्षा होय । जहा पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै तहा ही अन्यथा परीक्षा हो है ।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध कथन तो घने, कौन-कौनकी परीक्षा करिए ।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषै देव गुरू धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी । जिन शास्त्रनिविषै ए साचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी । जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी । जैसे लोकविषै जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूट न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषै कैसे झूठ बोलेगा । तैसे जिस शास्त्रविषै प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिस विषै प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसे होय ? जातै देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं ।

इहा प्रश्न—देवादिकका कथन तो अन्यथा विषयकषायतै किया, तिनि ही शास्त्रनिविषै अन्य कथन अन्यथा काहेको किया ।

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथा-पना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाही। तातै घने कथन अन्यथा करनेतै जुदी पद्धति ठहरै। तहा तुच्छ बुद्धि भ्रममे पडि जाय—यहु भी मत है। तातै प्रयोजनभूतका अन्यथापना का भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भो अन्यथा कथन घने किए। बहुरि प्रतीति अनावने के अर्थि कोई२ साचा भा कथन किया। परन्तु स्यान होय सो भ्रम मे परै नाही। प्रयोजनभून कथनकी परीक्षाकरि जहाँ सांच भासै, तिस मत की सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही साचा भासै है, अन्य नाही। जातै याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूठ काहेको कहै। ऐसै जिन आज्ञा माने जो साचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि तहा एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसै न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसे रह्या ? तातै किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय है। लोकविषै भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तै कह्या—जिनवचनविषै सशय करनेतै सम्यक्त्वका शका नामा दोष हो है, सो 'न जानै यह कैसे है', ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहा शका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनेको विचार करते ही सम्यक्त्वको दोष लागै, तो अष्टसहस्रीविषै आज्ञाप्रधानतै परीक्षा प्रधानको उत्तम काहेको कह्या ? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अग कैसे

कहे । प्रमाण नयतैं पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेको दिया । तातैं परीक्षा करि आज्ञा मानना योग्य है । बहुरि केई पापी पुरुषाँ अपना कल्पित कथन किया है अर तिनको जिनवचन ठहराया है, तिनको जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना । तहाँ भी प्रमाणादिकतैं परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितैं विधि मिलाय वा ऐसे सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थको मिथ्या ही जानना । जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामे लिखनेवालेका नाम किसी साहूकार का धरया, तिस नामके भ्रमत धनको ठिगावै तो दरिद्री ही होय । तैसे पापी आप ग्रन्थादि बनाय,तहा कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतैं झूठा श्रद्धान करै तो मिथ्यादृष्टी ही होय ।

बहुरि वब कहै है— **गोम्मटसार*** विषै ऐसा कह्या है— सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञान गुरुके निमित्ततैं झूठ भी श्रद्धान करै तो आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि ही है । सो यहु कथन कैसे किया है ?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाही, सूक्ष्मपनेतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है । मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाही, यहु निश्चय करना । तातैं बिना परीक्षा किए केवल आज्ञा ही करि जैनी है, ते भी मिथ्यादृष्टि जानने । बहुरि केई परीक्षा भी करि जैनी हो हैं परन्तु मूल परीक्षा नाही करै हैं । दया

* सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।२७।।

शील तप सयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतै इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिन-मतको उत्तम जानि प्रीतिवत होय जैनी होय हैं। सो अन्यमतविषै भी ऐसा तो कार्य पाईए है,तातै इन लक्षणनिविषै अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै—जैसे जिनधर्मविषै ए कार्य है, तैसे अन्यमतविषै नाहीं पाइए है। तातै अतिव्याप्ति नाही।

ताका समाधान—यहु तो सत्य है, ऐसै ही है। परन्तु जैसे तू दयादिक मानै है, तैसे तो वे भी निरूपै है। परजीवनिकी रक्षाको दया तू कहै है, सोई वे कहैं है। ऐसे ही अन्य जानने।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाही। कबहूँ दया प्ररूपै, कबहूँ हिसा प्ररूपै।

ताका उत्तर— तहाँ दयादिकका अशमात्र तो आया। तातै अति-व्याप्तिपना इन लक्षणनिकै पाइए है। इनकरि साँची परीक्षा होय नाही। तो कैसै होय। जिनधर्मविषै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है। तहाँ साचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनको जाने सम्यग्ज्ञान होय वा साचा रागादिक मिटे सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसे जिनमत विषै निरू-पण किया है, तैसे कही निरूपण किया नाही वा जैनी बिना अन्य-मती ऐसा कार्य करि सकते नाही। तातै यहु जिनमतका साचा लक्षण है। इस लक्षण को पहचानि जे परीक्षा करै, तेई श्रद्धानी है। इस बिना अन्य प्रकार करि परीक्षा करै हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै है।

बहुरि केई सगतिकरि जैनधर्म धारै हैं। केई महान् पुरुषको जिनधर्मविषै प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै हैं। केई देखा देखी

जिनधर्मको शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषै प्रवर्त्तै हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाही पहिचानै हैं अर जैनी नाम धरावै है,ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जाननें। इतना तो है, जिनमतविषै पापकी प्रवृत्तिविशेष नही होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने है अर साचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे हैं। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी है, ते भी औरनितै तो भले ही हैं।

आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बडाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसम्बन्धी प्रयोजनविचारि जैनी हो हैं, ते तो पापी ही है। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तो ससारका नाश के अर्थि सेइए है। ताकरि जो ससारीक प्रयोजन साध्या चाहै सो बडा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि है ही।

इहाँ कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यको करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए तो बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधे।

ताको कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसैं कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीको स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै,तो पापी ही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै तो बनावो परन्तु चैत्यालयविषै भोगादि करना युक्त नाही। तैसे धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीको आजीविका आदि पाप का भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करै तो करो

परन्तु पूजादि कार्यनिविषै तो आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाही।

इहा प्रश्न—जो ऐसै है तो मुनि भी धर्म साधि पर घर भोजन कर हैं वा साधर्मी साधर्मी का उपकार करै करावै है, सो कैसे बने?

ताका उत्तर—जो आप तो किछू आजीविका आदि का प्रयोजन विचारि धर्म नाही साधै हैं,आपकों धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है तौ तो किछू दोष है नाही। बहुरि जो आप ही भोजनादिका प्रयोजन विचारि धर्मसाधैहै,तो पापी है ही। जे विरागी होय मुनिपनो अगीकार करै हैं, तिनिकै भोजनादिका प्रयोजन नाही, शरीरकी स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तो ले, नाहो समता राखै। सक्लेशरूप होय नाही। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै है, उपकार करवानेका अभिप्राय नाही है। अर आपकै जाका त्याग नाही, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तो करो अर न करै तो आपके किछू सक्लेश होता नाही। सो ऐसै तो योग्य है। अर आपही आजोविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहाँ भोजनादि उपकार कोई न करै तहाँ सक्लेश करै, याचना करै,उपाय करै वा धर्मसाधनविषै शिथिल होय जाय सो पापी ही जानना। ऐसै ससारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै है ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टि हैं ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है,सो विशेष दिखाइए है—

जैनाभाषी मिथ्यादृष्टि कीधर्म साधना

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखो लोभादिका

अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं,तिनिकै तो धर्मदृष्टि नाही। जो भक्ति करै है तो चित्त तो कहीं है, दृष्टि फिरचा करै है। अर मुखतै पाठादि कर है वा नमस्कारादि करै है परन्तु यहु ठीक नाही–मै कौन हूँ,किसकी स्तुति करूँ हूँ, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करू हू, पाठविषै कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाही। बहुरि कदाचित कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहा सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरुकुशास्त्रादि विषै विशेष पहिचान नाही। बहुरि जो दान दे है तो पात्र अपात्र का विचाररहित जैसै अपनी प्रशसा होय तैसै दान दे है। बहुरि तप करै है तो भूखा रहनेकरि महतपनो होय सो कार्य करै है। परिणामनि-की पहिचान नाही। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहा बाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई साँची क्रिया करै है, कोई झूठी करै है। अर अतरग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाही वा बाह्य भी रागादि पोषने का साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है, तहा जैसे लोकविषै बडाई होय वा विषय कषाय पोषे जाय तैसै कार्य करै है। बहुरि बहुत हिसादिक निपजावै है। सो ए कार्य तो अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारने के अर्थि कहे हैं। बहुरि तहा किंचित् हिसादिक भी निपजै है तो थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचान नाही। अर यहाँ अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफा टोटा का ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाही। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है, तहाँ पद्धतिरूप प्रवर्त्तै है। जो बाचै है तो और-निकों सुनाय दे है। पढै है तो आप पढ़ि जाय है। सुनै है तो कहै है

सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताको आप अतरंग विषे नाही अवधारे है। इत्यादि धर्मकार्यनिका मर्मको नाही पहिचानै। केई तो कुलविषे जैसे बडे प्रवर्त्तै तैसे हमको भी करना अथवा और करे हैं तैसे हमको भी करना वा ऐसे किए हमारा लोभादिकको सिद्धि होसी, इत्यादि विचार लिए अभूतार्थ धर्म को साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं जिनकै किछू तो कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है,तातै पूर्वोक्त प्रकार भी धर्मका साधन करै है अर किछू आगे कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकों भी सुधारै हैं। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म साधै है परन्तु निश्चय धर्म्म-कों न जानै हैं। तातै अभूतार्थ रूप धर्मको साधै हैं। तहा व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रको मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहा शास्त्रविषे देव गुरु धर्मकी प्रतीति किए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकों नमस्कारादि करने का त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाही करै है। अथवा परोक्षा भी करै हैं तो तत्त्वज्ञान पूर्वक साँची परीक्षा नाही करै हैं, बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै है। ऐसै प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषे प्रवर्त्तै है।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहाँ अरहत देव हैं, सो इन्द्रादिकरि पूज्य हैं,अनेक अतिशयसहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरै हैं, स्त्रीसगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं,इत्यादि विशेषण कहे हैं। तहां

इनविषै केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं, तिनकों भिन्न भिन्न नाही पहिचानै है। जैसे असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषै जीव पुद्गलके विशेषणकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है तैसे यह असमान जातीय अरहन्तपर्यायविषै जीव पुद्गलके विशेषणनिको भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण है,तिनको तो जानि तिनकरि अरहन्तदेवको महन्तपनो विशेष मानै है अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनको यथावत् न जानि तिनकरि अरहन्तदेवको महन्तपनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है। जातै यथावत् जीवका विशेषण जानै मिथ्यादृष्टी रहै नाही। बहुरि तिनि अरहन्तनिकों स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधम उधारकपतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितै ईश्वरकों जैसे मानै है,तैसे ही यहु अरहन्तको मानै है। ऐसा नाही जानै है—फलतो अपने परिणामनिका लागै है अरहन्त तिनिकों निमित्तमात्र है,तातै उपचारकरि वे विशेषण सम्भवै हैं। अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहन्त ही स्वर्गमोक्षादिका दाता नाही। बहुरि अरहन्तादिकके नामादिकतै श्वानादिक स्वर्ग पाया तहा नामादिकका ही अतिशय मानै है। बिना परिणाम नाम लेने वालोंके भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तो सुननेवालेकै कैसे होय। श्वानादिकके नाम सुननेके निमित्ततै कोई मदकषायरूप भाव भए है, तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहन्तादिकके नाम पूजनादिकतै अनिष्ट सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट

अनिष्टका तो कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहन्त तो कर्त्ता है नाहीं। अरहन्तादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितैं पूर्व पापका सक्रमणादिक होय जाय है। तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशको वा इष्टकी प्राप्तिको कारण अरहन्तादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलेंही ससारी प्रयोजन लिए भक्ति करैं, ताके तो पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका सक्रमणादि कैसें होय? बहुरि तिनिका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिको मुक्तिका कारण जानि तहाँ अति अनुरागी होय प्रवर्त्तै है सो अन्यमती जैसे भक्ति तैं मुक्ति मानै है तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तो रागरूप है। रागतैं बंध है। तातैं मोक्ष का कारण नाहीं। जब राग उदय आवै, तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय। तातैं अशुभ राग छोडनेको ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै है वा मोक्षमार्ग को बाह्य निमितमात्र भी जानै है। परन्तु यहां ही उपादेयपना मानि संतुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या है ※ —

इयं भक्ति केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति।

याका अर्थ — यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्ररागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानें

※ अयं हि स्थूल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानराग निषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ स० टीका गा० १३६ ॥

रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानिकै भी हो है।

तहाँ वह पूछै है, ऐसे है तो ज्ञानी तैं अज्ञानीकै भक्तिकी अधिकता होती होगी।

ताका उत्तर—यथार्थपनेकी अपेक्षा तो ज्ञानीकै साची भक्ति है अज्ञानीकै नाही है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिका कारण जाननेतैं अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषैं शुभबंधका कारण जाननेतैं तैसा अनुराग नाही है। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है,ऐसा जानना। ऐसैं देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

अब गुरुभक्तिका स्वरूप वाकै कैसे है, सो कहिए है—

गुरुभक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव आज्ञानुसारी हैं। ने तो ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातैं इनिकी भक्ती करनी, ऐसैं विचारि तिनकी भक्ति करैं हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भी करैं हैं। तहा ए मुनि दया पालैं हैं, शील पालैं है, धनादि नाही राखैं हैं, उपवासादि तप करैं हैं,क्षुधादि परीषह सहैं हैं, किसीसौं क्रोधादि नाही करैं है,उपदेश देय औरनिको धर्मविषैं लगावैं है, इत्यादि गुण विचारि तिनविषैं भक्तिभाव करैं हैं। सो ऐसे गुण तो परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषैं वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषैं भी पाईए है। तातैं इनिविषैं अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाही। बहुरि इनि गुणनिको विचारैं है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानता असमानजातीय मुनिपर्यायविषैं एकत्व बुद्धितै मिथ्यादृष्टि ही रहै है।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रको एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका साचा लक्षण है, ताको पहिचानै नाही । जातै यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाही। ऐसै मुनिनका साचा स्वरूप ही न जानै तो साची भक्ति कैसे होय ? पुण्यबधको कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिको पहचानि तिनको सेवातै अपना भला होना जानि तिनविषै अनुरागी होय भक्ति करै है । ऐसै गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए है —

शास्त्र भक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव तो यहु केवली भगवान्की वाणी है, तातै केवलीके पूज्यपनातै यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करै हैं । बहुरि केई ऐसै परीक्षा करै हैं—इन शास्त्रनिविषै विरागता दया क्षमा शील सतोषादिकका निरूपण है तातै ए उत्कृष्ट है, ऐसा जानि भक्ति करै हैं। सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदातादिक तिनविषै भी पाईए है । बहुरि इन शास्त्रनिविषै त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातै उत्कृष्टता जानि भक्ति करै है। सो इहाँ अनुमानादिकका तो प्रवेश नाही । सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसै जानिए । तातै ऐसै साची परीक्षा होय नाही । इहा अनेकान्तरूप साँचा जीवादितत्वनिका निरूपण है अर साचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है । ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताको नाही पहिचानै हैं। जातै यहु पह-चानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाही । ऐसै शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकै देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातै व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है । परन्तु उनका साचा स्वरूप भास्या नाही। तातै प्रतीति भी साची भई नाही । साँची प्रतीति बिना सम्यक्तकी

प्राप्ति नाही। ताते मिथ्यादृष्टी ही है।

तत्वार्थ श्रद्धानका अयथार्थपना

बहुरि शास्त्रविषै 'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' (तत्वा० सू०१-२) ऐसा वचन कह्या है। तातै जैसे शास्त्रनिविषै जीवादि तत्व लिखे हैं, तैसे आप सीखिले है। तहाँ उपयोग लगावै है। औरनिकों उपदेशै है परन्तु तिन तत्वनिका भाव भासता नाही। अर इहा तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्व कह्या। सो भाव भासे बिना तत्वार्थ-श्रद्धान कैसे होय ? भावभासना कहा सो कहिए है:—

जैसे कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकों सीखै है परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाही पहिचानै है। स्वरूप पहिचान भए बिना अन्य स्वरादिकको अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तो निर्णय करि नाही मानै है। तातै वाक चतुरपनों होय नाही। तैसे कोऊ जीव सम्यक्ती होनेके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकों सीखै है परन्तु तिनके स्वरूपको नाही पहिचानै है। स्वरूप पहिचानें बिना अन्य तत्त्वनिको अन्य तत्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तो निर्णयकरि नाही मानै है। तातै वाकै सम्यक्त्व होय नाही। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ्या है वा न पढ्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपको पहिचानै है तो वह चतुर ही है। तैसे शास्त्र पढ्या है वा न पढ्या है, जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है तो वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसे हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानै है अर ताका स्वरूप को पहिचानै है तैसे तुच्छ बुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूपकों पहिचानै है। यहु मैं हूँ, ए पर हैं; ए भाव बुरे हैं, ए

भले है,ऐसैं स्वरूप पहिचानै ताका नाम भावभासना है। **शिवभूति***
मुनि जीवादिकका नाम न जानै था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने
लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाही परन्तु आपा परका भावरूप
ध्यान किया, तातै केवली भया। अर ग्यारह अगके पाठी जीवादि
तत्वनिका विशेषभेद जानै परन्तु भाव भासै नाही, तातै मिथ्यादृष्टी
ही रहै है। अब याकै तत्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है—

जीव अजीव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनितै जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणा-
दिरूप भेदनिको जानै है, अजीवके पुद्गलादि भेदनिको वा तिनके
वर्णादि विशेषनिको जानै है परन्तु अध्यातमशास्त्रनिविषै भेदविज्ञानको
कारणभूत वा वीतरागदशा होनेको कारणभूत जैसै निरूपण किया है
तैसै न जानै है। बहुरि किसी प्रसगतै तैसै भी जानना होय तो शास्त्र
अनुसारि जानि तो ले है परन्तु आपको आप जानि परका अश भी
आप विषै न मिलावना अर आपका अश भी पर विषै न मिलावना,
ऐसा साँचा श्रद्धान नाही करै है। जैसै अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार
बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपना विषै वा वर्णादिविषै अहबुद्धि धारै है,
तैसै यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषै वा शरीराश्रित उपदेश उप-
वासादि क्रियानिविषै आपो मान है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ
साँची बात भी बनावै परन्तु अंतरग निर्धाररूप श्रद्धान नाही। तातै
जैसै मतवाला माताको माता भी कहै तो स्याना नाही तैसै याको

* तुसमास घोसतो भावविसुद्धो महाणुभावोय।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ॥ —भावपा० ५३॥

सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरहीकी बातें करता होय तैसें आत्माका कथन कहै परन्तु यहु आत्मा मैं हूँ, ऐसा भाव नाहीं भासै। बहुरि जैसें कोई औरकूं औरतैं भिन्न बतावता होय तैसें आत्म शरीरकी भिन्नता प्ररूपै परन्तु मै इस शरीरादिकतैं भिन्न हूँ, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषै जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततैं अनेक क्रिया हो है, तिनको दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीवकी क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीवका साचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था सो भया नाहीं।

आश्रव तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि आस्रवतत्वविषैं जे हिंसादिरूप पापास्रव है, तिनकों हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव हैं, तिनको उपादेय मानै है। सो ए तो दोऊ ही कर्मबधके कारण इन विषै उपादेयपनो माननो सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसारका बधाधिकारविषै कह्या है*—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततें हो हैं। जहाँ अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय सोई मिथ्याध्यवसाय बधका कारण है+। तहाँ अन्य जीवनिको जिवावनेका

---

* समयसार गा० २५४ से २५६

+ सर्वं सदैव नियत भवति स्वकीय, कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्। अज्ञानमेतदिह यत्तु पर परस्य, कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःख सौख्यम्॥ १६८

वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तो पुण्यबंधका कारण है अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसें अहिंसावत् सत्यादिक तो पुण्यबंधको कारण हैं अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधको कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं ते त्याज्य हैं। तातें हिंसादिवत् अहिंसादिकको भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषै मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मरै नाहीं, अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषै रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना वह जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसें ए दोऊ हेय है। जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त्तै, तहाँ निर्बन्ध है सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त राग-रूप प्रवर्त्तो परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो—यहु भी बंधका कारण है, हेय है। श्रद्धानविषै याको मोक्षमार्ग जानै मिथ्यादृष्टी ही हो है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए आस्रवके भेद है, तिनकों बाह्यरूप तो मानै, अंतरंग इन भावनिकी जातिको पहिचानै नाहीं। तहाँ अन्य देवादिकके सेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वको मिथ्यात्व जानै अर अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है ताको न पहिचानै। बहुरि बाह्य त्रस-स्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषै प्रवृत्ति ताको अविरति

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य, पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते, मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥१६९॥

—समयसार बंधाधिकार कलश

जानै । हिंसाविषै प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषै अभिलाषा मूल है ताको न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकों कषाय जानै, अभिप्रायविषै रागद्वेष बसै ताको न पहिचानै। बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताको योग जानै, शक्तिभूत योगनिको न जानै। ऐसै आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै।

बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नाहीं अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै सो तिनके मेटे आश्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिककी सेवा न करे है, हिंसा वा विषयनिविषै न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करे है,मन वचन कायको रोकै है,तो भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारो आस्रव पाईए हैं । बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै तो ग्रैवेयक पर्यंत कैसे पहुँचै । तातै जो अंतरंग अभिप्राय विषै मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं सोही आस्रव हैं। ताको न पहिचानै, तातै याकै आस्रवतत्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं।

बंध तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्वविषै जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताको तो बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताको भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषै द्वेष सुख सामग्रीविषै राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुःखसामग्रीविषै राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुख दुःख सामग्रीविषै राग द्वेष

करना। बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषै हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाही। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषै घातिकर्मनिका तो निरतर बध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक है। तातै अशुद्ध भावनिकरि कर्मबध होय, तिसविषै भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसे श्रद्धानतै बधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाही।

संवर तत्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि सवरतत्वविषै अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनको सवर जानै है। सो एक कारणतै पुण्यबध भी मानै अर सवर भी मानै, सो बनै नाही।

यहा प्रश्न—जो मुनिनकै एक काल एकभाव हो है, तहा उनकै बध भो हो है अर सवर निर्जरा भी हो है, सो कैसे है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अश वीतराग भए तिनकरि सवर है अर जे अ श सराग रहे तिनकरि बध है। सो एक भावतै तो दोय कार्य बनै परन्तु एक प्रशस्तरागहीतै पुण्यास्रव भी मानना अर सवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषै भी यहु सरागता है, यहु विरागता है, ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातै अवशेष सरागताको हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहिचान नाही तातैं सरागभाव विषै सवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिको उपादेय श्रद्धै है।

बहुरि सिद्धांतविषै गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय,

चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या है*, सो इनको भी यथार्थ न श्रद्धै है। कैसे सो कहिए है:—

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटै, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै सो गुप्ति मानै है। सो यहां तो मनविषै भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागकरि नाना विकल्प हो है, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है तहां शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषै गुप्तिपनो बनै नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहां मन वचन कायकी चेष्टा न होय सो ही साची गुप्ति है।

बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकौं समिति मानै है। सो हिंसाके परिणामनितैं तो पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे तो पुण्यबंधका कारण कौन ठहरेगा। बहुरि एषणासमितिविषै दोष टालै है। तहां रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातैं रक्षाहीके अर्थ समिति नाहीं है। तो समिति कैसे हो है—मुनिनकै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो है। तहां तिन क्रियानिविषै अति आसक्तताके अभावतैं प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिको दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै है तातैं स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसै साची समिति है।

बहुरि बंधादिकके भयतैं स्वर्गमोक्षकी चाहतैं क्रोधादि न करै है, सो यहां क्रोधादि करनेका अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसे कोई राजादिकका भयतैं वा महंतपनाका लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तो वाको त्यागी न कहिए। तैसे ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तो

---

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः। तत्वा० सू० ९-२

कैसें त्यागी होय? पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासें क्रोधादि हो है। जब तत्व-ज्ञानके अभ्यासतै कोई इष्ट अनिष्ट न भासै, तब स्वयमेव ही क्रोधा-दिक न उपजै, तब सांचा धर्म हो है।

बहुरि अनित्यादि चितवनतै शरीरादिकको बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतै उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तो जैसें कोऊ मित्र था, तब उसतै राग था, पीछे वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसे शरीरादिकतै राग था, पीछे अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहाँ जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमको मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी साची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चितवन सोई साची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताको परीषह सहना कहै है। सो उपाय तो न किया अर अतरग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया तो सो दुःख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान है। ऐसे भावनितै सवर कैसे होय ? तातै दुःखका कारण मिले दुखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जाननहारा ही रहै, सोई साचो परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागको चारित्र मानै है। तहाँ महाव्रतादिरूप शुभयोगकौं उपादेयपनेंकरि ग्रहणरूप मानै है। सो तत्वार्थसूत्रविषै आस्रव-पदार्थका निरूपण करतें महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसें होय? अर आस्रव तो बधका साधक

है, चारित्र मोक्षका साधक है ताते महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकों चारित्रपनों सम्भवै नाही, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतै महा- मंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याको छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोगहीका त्याग करै है। परन्तु जैसे कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिको भखै है परन्तु ताको धर्म न मानै है। तैसे मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करै हैं अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकों पाले हैं परन्तु ताको मोक्षमार्ग न मानै हैं।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे है तो चारित्रके तेरह भेदनिविषै महाव्रतादि कैसे कहे हैं?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषै चारित्रका उपचार किया है। निश्चय- करि निःकषाय भाव है सोई साँचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकों अन्यथा जानता संवरका साचा श्रद्धानी न हो है।

निर्जरा तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि यहु अनशनादि तपतै निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तो किए निर्जरा होय नाही। बाह्यतप तो शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है ताते उपचारकरि तपकों भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुःख सहना ही निर्जराका कारण होय तो तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं है।

तब वह कहै है—वे तो पराधीन सहैं हैं, स्वाधीनपनें धर्मबुद्धितै उपवासादिरूप तप करै, ताकै निर्जरा हो है ?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितै बाह्य उपवासादि तो किए, बहुरि तहां उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसे परिणमै तैसे परिणमो। घनें उपवासादि किए घनी निर्जरा होय,थोरे किए थोरी निर्जरा होय, जो ऐसे नियम ठहरै तो तो उपवासादिकही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै, सो तो बनै नाही। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतै निर्जरा होनी कैसे सम्भवै ? बहुरि जो कहिए--जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै ताके अनुसार बंध निर्जरा है। तो उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसे रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे।

यहां प्रश्न--जो तत्वार्थसूत्रविषै "तपसा निर्जरा च" [९-३] ऐसा कैसे कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषै "इच्छानिरोधस्तपः" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तहां निर्जरा हो है। तातै तपकरि निर्जरा कही है।

यहां कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तो इच्छा दूरि भए ही तप होय परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाही है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातै उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतै शरीर वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानै, तहां

आहारादिक ग्रहै हैं। जो उपवासादिकहीतैं सिद्धि होय, तो अजित-नाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसे धरते ? उनकी तो शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसे परिणाम भए तैसे बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहा प्रश्न--जो ऐसैं है तो अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसें भई ?

ताका समाधान—इनिको बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु-जो बाह्य औरनिको दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तो फल जैसा अन्तरग परिणाम होगा तैसा ही पावेगा। जातै परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाही है।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो शास्त्रविषै तो अकामनिर्जरा कही है। तहाँ बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है तो उपवासादिकरि कष्ट सहे कैसे निर्जरा न होय ?

ताका समाधान--अकामनिर्जराविषै भी बाह्य निमित्त तो बिना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहां मंद कषायरूप भाव होय तो पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबध होय, तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही होय सो बनै नाही। तैसे ही चाहकरि उपवासादि किए तहाँ भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहाँ जैसा परिणाम होय तैसा फल पावै है। जैसैं अन्नको प्राण कह्या। बहुरि ऐसैं बाह्यसाधन भए अतरगतपकी वृद्धि हो है तातै उपचारकरि इनको तप कहे हैं। जो बाह्य तप तो करै अर अतरग तप न होय तो उपचारतै भी वाको तपसंज्ञा नाही। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदु ॥

जहाँ कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषको श्रीगुरु लघन कहैं हैं।

यहाँ कहेगा- जो ऐसे है तो हम उपवासादि न करेंगे ?

ताकों कहिए है—उपदेश तो ऊँचा चढनेको दीजिए है। तू उलटा नीचा पडेगा तो हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतै उपवासादि करै है तो करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाही। अर जो धर्मबुद्धितै आहारादिकका अनुराग छोडै है, तो जेता राग छूटया तेता ही छूटया परन्तु इसहीको तप जानि इसतै निर्जरा मानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरग तपनिविषै प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्त्तन सो तो बाह्य तपवत् ही जानना। जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया है, तैसे ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातै प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अतरग तप नाही है। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होते जो अतरग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अनरग तप जानना। तहा भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ, तहाँ तो निर्जरा हो है, बध नाही हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अश रहै, तो जेती शुद्धता भई ताकरि ता निजरा है अर जेता शुभ भाव है ताकरि बध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहा बध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ कोऊ कहै—शुभ भावनितै पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बध हो है, शुद्ध भावनितै दाऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों न कहो ?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषै स्थितिका तो घटना सर्वही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्य पापका विशेष है ही नाही। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाही। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होय, ऐसा सक्रमण शुभ व शुद्ध दोऊ भाव होते होय। तातै पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाही। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचितवनादि कार्यकरै, तहाँ भी निर्जरा नाही, बध भी घना होय। अर पचमगुणस्थानवाला विषय सेवनादि कार्य करै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै, बध भी थोरा होय। बहुरि पचम गुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै,तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै,तिस कालविषै भी वाकै निर्जरा घनी, उसतै भी बध थोरा होय। तातै बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाही है। अतरग कषाय-शक्ति घटे विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करेगे, तहाँ जानना। ऐसै अनशनादि क्रियाको तपसज्ञा उपचारतै जाननी। याहीतै इनको व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतै जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो साचा तप निर्जराका कारण जानना। यहा दृष्टात—जैसै धनकौं वा अन्नको प्राण कह्या सो धनतै अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातै उपचार करि धन अन्नकौं प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक प्राणको न जानै अर इनहीकौं प्राण जानि सग्रह करै, तो

मरणही पावै। तैसे अनशनादिकको वा प्रायश्चित्तादिककों तप कह्या, सो अनशनादि साधनतै प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्तै वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातै उपचारकरि अनशनादिको वा प्रायश्चित्तादिकों तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपको न जानै अर इनिहीकों तप जानि संग्रह करै तो संसारहीमे भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लेना, निश्चय धर्म्मतो वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचारतै किएहैं, तिनको व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यको न जानै, तातै वाकै निर्जराका भी साचा श्रद्धान नाहीं है।

मोक्ष तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि सिद्ध होना ताको मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाहि है। इनिहीके अर्थ मोक्षकी चाह कीनी तो याकै और जीवनिका श्रद्धानतै कहा विशेषता भई।

बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषै सुख है, तिनितै अनन्तगुणे मोक्षविषै सुख है। सो इस गुणकारविषै स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। तहाँ स्वर्गविषै तो विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याको भासै है अर मोक्षविषै विषयादि सामग्री है नाही, सो वहाका सुखकी जाति याको भासै तो नाही परन्तु स्वर्गतै भी मोक्षकों उत्तम महानपुरुष कहै हैं, तातै यहु भी उत्तम ही मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं

आप भी सराहै है। तैसे यहु मोक्षको उत्तम मानैं है।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषै भी तो इन्द्रादिकतैं अनंत गुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं।

ताका उत्तर—जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाको सूर्य प्रभातै कोट्यां गुणी कही तहा तिनकी एक जाति नाही। परन्तु लोकविषै सूर्यप्रभा की महिमा है, तातै भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालकार कीजिए है। तैसे सिद्ध सुखको इन्द्रादिसुखतै अनन्त गुणा कह्या। तहाँ तिनकी एक जाति नाही। परन्तु लोकविषै इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातै भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालकार कीजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्ध सुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसे किया ?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहा तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानै। ऐसा तो मानै जो जाकै साधन थोरा हो है सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सम्पूर्ण साधन होय सो मोक्ष पावै है परन्तु तहा धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताको कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातै कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातै हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषैं इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्म-निमित्ततै आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतै शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसे परमाणु स्कधतैं बिछुरैं

शुद्ध हो है, तैसे यहु कर्मादिकतै भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष इतना-वह दोऊ अवस्थाविषै दुःखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषै दुःखी था,अब ताके अभाव होनेतै निराकुल लक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिकै जो सुख है,सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतै दुःख ही है। तातै वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातै कारणविषै भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकौं भासै नाहीं। तातै मोक्षका भी याकै साँचा श्रद्धान नाहीं है।

या प्रकार याकै साँचा तत्वश्रद्धान नाहीं है। इस ही वास्ते समयसारविषै* कह्या है—"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै+ कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं।" बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे है तिनिको पालै है। पच्चीस दोष कहे हैं, तिनिको टालै है। संवेगादिक गुण कहे है, तिनिको धारै है। परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाही, तैसे साँचा तत्वश्रद्धान भए बिना सम्यक्त होता नाहीं। सो पंचास्तिकाय व्याख्याविषैं जहाँ अन्तविषै व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहाँ ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करते भी

---

* सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ गाथा २७५ ॥

+ अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ स० टीका अ० ३ गाथा ३९ ॥

सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञानके अर्थि साधनमें अयथार्थता

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषै शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातै शास्त्राभ्यासविषै तत्पर रहै है। तहाँ सीखना, सिखावना, याद करना, बांचना, पढना आदि क्रियाविषै तो उपयोगको रमावै है परन्तु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाही है। इस उपदेशविषै मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाही। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिको सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानै तहाँ सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है, प्रसग पाय परका भी भला होय तो परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तो मति सुनो, आप काहेको विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषै भी केई तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकों बहुत अभ्यासै हैं। सो ए तो लोकविषै पडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषै आत्महित निरूपण तो है नाही। इनका तो प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछे आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तो आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करते करतें आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनै।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसें है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना।

ताको कहिए है--

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाही। तातै तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहाँ प्रश्न--महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यो न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तो था नाही ?

ताका समाधान–भाषाविषै भी प्राकृत सस्कृतादिकके ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिए हैं। बहुरि देश देशविषै भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महत पुरुष शास्त्रनिविषै अपभ्रंश शब्द कैसे लिखै। बालक तोतला बोलै तो बडे तो न बोलै। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषै जाय तो तहाँ ताका अर्थ कैसे भासै। तातै प्राकृत सस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रन्थ जोडे। बहुरि व्याकरण बिना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया। भाषाविषै भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतै नीके निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहोगे—ऐसे है, तो अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकौं बनाइए है।

ताका समाधान—कालदोषतैजीवनिकी मद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिका अभ्यास न करि सकें, तिनकों ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिए अर्थ करनेकों ही व्याकरण अवगाहैं हैं, वादादिकरि महत होनेकों न्याय अवगाहैं हैं, चतुरपना प्रगट करनेकै अर्थि काव्य अवगाहैं हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिए इनिका अभ्यास करै हैं ते धर्मात्मा नाही। बने जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करै हैं, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तो सूवाकासा ही पढना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारै है तहाँ पापकों बुरा जानना, पुण्यकों भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचारथा सो इसतै इतना तो होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गकी तो प्राप्ति होय नाही। पहलै सांचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछै पुण्यपापका फलकों संसार जानै, शुद्धोपयोगतै मोक्ष मानै, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानै, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै तो सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानको कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

शास्त्रनिका भी अभ्यास करै हैं। परन्तु जहा जैसें लिख्या है, तैसें आप निर्णय करि आपको आपरूप, परको पररूप, आस्रवादिक कों आस्रवादिरूप न श्रद्धान करै हैं। मुखतें तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करैं, जाके उपदेशतें और जीव सम्यग्दृष्टी होय जांय। परन्तु जैसें लड़का स्त्रीका स्वागकरि ऐसा गान करै, जाको सुनते अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जांय परन्तु वह जैसें सीख्या तैसें कहै है, वाको किछू भाव भासै नाही, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसें यहु जैसे लिख्या तैसें उपदेश दे परन्तु आप अनुभव नाही करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता तो और तत्वका अंश और तत्वविषैं न मिलावता। सो याकै थल नाही, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाही। ऐसैं यहु ग्यारह अंग-पर्यंत पढ़ै तो भी सिद्धि होती नाही। सो समयसारादिविषै मिथ्या-दृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहा कोऊ कहै—ज्ञान तो इतना हो है परन्तु जैसें अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसें हो है ?

ताका समाधान—वह तो पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाही। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषैं जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तो श्रद्धानरहित नाही, वाकै तो ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ साचे हैं परन्तु तत्वश्रद्धान साचा न भया। समयसारविषं*एकही

---

* मोक्ख असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु॥ गाथा २७४॥

मोक्षंहि न तावदभव्य: श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्तं। ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांग श्रुतमधीयानोऽपि

जीवकै धर्म्मका श्रद्धान, एकदशांगका ज्ञान, महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषैं❀ ऐसा लिख्या है—आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जानै है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मैं हूं। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा आपकों परद्रव्यतै भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातै आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तो भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

सम्यकचारित्रके अर्थि साधनमें अयथार्थता

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसे प्रवृत्ति है सो कहिए है—बाह्यक्रिया ऊपरि तो इनकै दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तो जैसा अपना परिणाम होता दीसै,तिनहीके ऊपरि दृष्टि रहै है। परन्तु उन परिणामनिकी परपरा विचारे अभिप्रायविषै जो वासना है,ताको न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषै वासना है ताका लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे, तहाँ स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचरणका ही उद्यम है।

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात्। स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञान,तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः। ततश्च ज्ञानश्रद्धानाभावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

❀ परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि॥ अ० ३ गाथा ३९॥

तहां केई जीव तो कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतै आचरण आचरै हैं। सो इनकै तो धर्मबुद्धि ही नाही, सम्यक्चारित्र कहांतै होय। ए जीव कोईतो भोले है वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होतै सम्यक्चारित्र होता नाही। बहुरि केई जीव ऐसा मानै हैं, जो जाननेमे कहा है (अर माननेमे कहा है) किछू करेगा तो फल लागेगा। ऐसे विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै हैं अर तत्वज्ञानका उपाय न करै हैं। सो तत्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाही हैं, तो भी असयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है। तातैं पहले तत्वज्ञानका उपाय करना,पीछेकषाय घटावनेकौं बाह्य साधनकरना। सो ही **योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषै** कह्या है—

"दंसणभूमिहं बाहिरा जिय वयरुक्ख ण हुंति।"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाही, ते यथार्थ आचरण न आचरै हैं। सोई विशेष दिखाईए है—

केई जीव पहलै तो बडी प्रतिज्ञा धरि बैठै अर अतरग विषय कषायवासना मिटी नाही। तब जैसे तैसे प्रतिज्ञा पूरी किया चाहै,तहा तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुखी हो है। जैसे बहुत उपवासकरि बैठे, पीछे पीडातै दुखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलै ही सधतो जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यो न लीजिए। दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसे लागेगा। अथवा

उस प्रतिज्ञाका दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेकों अन्य उपाय करै। जैसैं तृषा लागै तब पानी तो न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै वा घृत तो छोड़ै अर अन्य स्निग्ध वस्तुको उपायकरि भखै। ऐसैं ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा काहेकों करी। सुगम विषय छोडि पीछे विषम विषयनिका उपाय करना पड़ै, ऐसा कार्य काहेको कीजिए। यहा तो उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषै दुःख होय तब परिणाम लगावनेको कोई आलम्बन विचारै। जैसैं उपवासकरि पीछे क्रीडा करै। केई पापी जूवा आदि कुविसनविषै लगै हैं अथवा सोय रह्या चाहै। यहु जानै, किसी प्रकारकरि काल पूरा करना। ऐसैं ही अन्य प्रतिज्ञाविषै जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलै प्रतिज्ञा करै, पीछे तिसतै दुःखी होय तब प्रतिज्ञा छोड़िदे। प्रतिज्ञा लेना छोड़ना तिनके ख्याल-मात्र है। सो प्रतिज्ञा भग करनेका महापाप है। इसतै तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलै तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करै, पीछे ऐसी दशा होय। सो जैनधर्मविषै प्रतिज्ञा न लेनेका दड तो है नाही। जैनधर्मविषैतो यहु उपदेश है, पहलै तो तत्वज्ञानी होय। पीछे जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानै। त्याग किए गुण होय, ताको जानै। बहुरि अपने परिणामनिको ठीक करै। वर्त्तमान परिणा-मनिहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठै। आगामी निर्वाह होता जानै, तो प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसे विचारि पीछे प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी,

जिस प्रतिज्ञातैं निरादरपना न होय, परिणाम चढते रहैं। ऐसी जैन-धर्मकी आम्नाय है।

यहां कोऊ कहै—चांडालादिकोंने प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहाँ हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यन्त कष्ट होय तो होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोडनी, ऐसा विचारिकरि प्रतिज्ञा करे हैं, प्रतिज्ञाविषै निरादरपना नाही। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै हैं, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करे हैं। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरै हैं, ते प्रतिज्ञाके पहलैं वा पीछै जाकी प्रतिज्ञा करै, ताविषै अति आसक्त होय लागै है। जैसे उपवासके धारने पारने भोजनविषै अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करै, शीघ्रता घनी करे। सो जैसे जलको मूंदि राख्या था, छूटया तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसे प्रतिज्ञाकरि विषय प्रवृत्ति मूंदि, अंतरंग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होते ही अत्यंत विषयप्रवृत्ति होने लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषै विषयवासना मिटी नाही। आगै पीछै ताकी एवज अधिक राग किया, तो फल तो रागभाव मिटे होगा। तातैं जेती विरक्तता भई होय, तितनी ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करै, पीछै आहारादिविषै उछटि करे। अर बडी प्रतिज्ञा करे हैं, सो अपनी शक्ति देखकरि करै हैं। जैसे परिणाम चढते रहैं सो करे हैं, प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी।

बहुरि जिनकै धर्म ऊपरि दृष्टि नाही, ते कबहूँ तो बडा धर्म आचरै, कबहूं अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तै। जैसे कोई धर्म पर्वविषै तो बहुत

उपवासादि करै, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करैं। सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषै यथायोग्य संयमादि धरैं। बहुरि कबहुँ तो कोई धर्मकार्यविषै बहुत धन खरचै, कबहुँ कोई धर्मकार्यआनि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचै। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसै ही अन्य जानना।

बहुरि जिनकै साँचा धर्मसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तो बहुत बडी अंगीकार करै अर कोई हीनक्रिया किया करै। जैसैं धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषै विशेष प्रवर्त्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करै अर पीछै खोटे व्यापारादि कार्य करै, लोकनिंद्य पापक्रियाविषै प्रवर्त्तै; ऐसै ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करै। तहां लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावै। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै है। जैसै कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै तो हास्य ही होय। तैसं यहु हास्य पावै है। साँचा धर्मकी तो यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषै जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिटया होय तो नीचा ही पदविषै प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहाँ प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरकी प्रतिमाविषैं कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै

ताका समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातै ऊपरकी प्रतिमाविषै त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषै जिसप्रकार त्याग सम्भवै,तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषै जो कार्य सम्भवै ही नाही ताका करना तो कषायभावनिहीतै हो है, जैसै कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्रीका त्याग करै, तो कैसै बनै? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलै सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसै ही अन्य जानने।

बहुरि सर्व प्रकार धर्मकों न जानै, ऐसा जीव कोई धर्मका अगकों मुख्यकरि अन्य धर्मनिको गौण करैहै। जैसै केई जीव दयाधर्मको मुख्य करि पूजा प्रभावनादि कार्यको उथापै है,केई पूजा प्रभावनादि धर्मको मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखै है, केई तपकी मुख्यताकरि आर्त्त ध्यानादिकरिकै भी उपवासादि करै वा आपको तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करै, केई दानकी मुख्यताकरि बहुत पाप करिकै भी धन उपजाय दान दे है, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करै हैं॥ [केईजीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाही करै है वा लौकिक कार्यआए धर्म छोडि तहाँ लगि जाय इत्यादि करै है।] इत्यादि प्रकार करि कोई धर्मको मुख्यकरि अन्य धर्मको न गिनै है वा वाके आसरै पापआचरै हैं। जैसो जैसै अविवेकी व्यापारीको कोई व्यापारका नफाके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा पाडै तैसै यहु कार्य भया। चाहिए

॥ यहाँ खरडा प्रति मे अन्य कुछ और लिखनेके लिये संकेत किया है। यह संकेत निम्न प्रकार है'-

'इहा स्नानादि शौच धर्म का कथन तथा लौकिक कार्य आए धर्म छोडि तहाँ लगि जाय है,तिनिका कथन लिखना है,किन्तु पं०जी लिख नही पाए।'

तो ऐसे, जैसे व्यापारीका प्रयोजन नफा है, सर्व विचारकरि जैसे नफ़ा घना होय तैसें करे। तसे ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसे वीतरागभाव घना होय तैसे करे। जातै मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै है, तिनकै तो सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय।

बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करे हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाही है। इनिको धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करे हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखे हैं परन्तु तत्त्वज्ञान पहलै न भया, तातै आप तो जानै मै मोक्षका साधन करू हू अर मोक्षका साधन जो है ताको जानै भी नाही। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करे। सो मिश्रीकों अमृत जानि भखे अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाही। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषै ऐसा कह्या है—चारित्रविषै 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातै पहलै तत्वज्ञान होय, तहा पीछे चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसे कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाही अर अन्य साधन करै तो अन्नप्राप्ति कैसे होय। घास फूस ही होय। तैसे अज्ञानी तत्वज्ञान-का तो अभ्यास करे नाही अर अन्य साधन करे तो मोक्षप्राप्ति कैसे होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे हैं, तत्वादिकका नीके नाम भी न जानै,केवल व्रतादिकविषै ही प्रवर्तें हैं। केई जीव ऐसे हैं, पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि

विषें प्रवर्त्तै हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषें कह्या है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्षइदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥

—निर्जराधिकार ॥१४२॥

याका अर्थ—मोक्षते पराङ्मुख ऐसे अतिदुस्तर पचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आपही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमें आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेको समर्थ नाही है। बहुरि पचास्तिकायविषें जहाँ अतविषै व्यवहाराभास वालेका कथन किया है तहाँ तेरह प्रकार चारित्र होते भी ताका मोक्षमार्गविषै निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य सयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषै वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषैं इस प्रयोजन लिए जहा तहाँ निरूपण है। तातै पहले तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहां कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधे हैं, अंतरंग

परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै हैं, सो ऐसें साधे तो पापबंध होय। द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है। परावर्तनिविषै इकतीस सागर पर्यंत देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊचेपद तो तब ही पावै जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पाले, महामदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाह न होय, केवल धर्मबुद्धिते मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातै द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनो है नाही, सूक्ष्म अन्यथापनो है सो सम्यग्दृष्टीको भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसे है अर तामे अन्यथापनो कैस है ? सो कहिए हैं—

द्रव्य लिंगी के धर्म साधन में अन्यथापना

प्रथम तो ससारविषै नरकादिकका दुःख जानि वा स्वर्गादिविषै भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि ससारते उदास होय मोक्षको चाहै हैं। सो इन दु.खनिको तो दु.ख सब ही जानै हैं। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागत इन्द्रियजनित सुख भोगवै हैं ताको भा दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहैं हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है–पोषने योग्य नाही, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है,तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाताहैं,तिन-करि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीको अंगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकों बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य

कों भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषै इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतै याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि रूप हो है। जातैं काहूको बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहैगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यको त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिको बुरा न जानै है। अपना रागभावको बुरा जानै है। आप रागभावको छोरै, तातैं ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारे कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाहीं।

कोऊ कहैगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाहीं। अपने भाव बिगरै तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त विना भी भाव बिगरै है। तातैं नियमरूप निमित्त भी नाहीं। ऐसैं परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे हैं सो याकै ऐसी समझि नाहीं। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषैं द्वेषरूप उदासीनता करै है। साचो उदासीनता तो ताका नाम है, कोई ही द्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातैं काहूको बुरा भला न जानै। आपकों आप जानै, परको पर जानै, परतै किछू भी प्रयोजन मेरा नाही ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यहु उदासीन होय शास्त्रविषै व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कह्या है ताको अंगीकार करै है, एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापकों छाड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिविषै प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसैं पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना मानै था, तैसे ही

और पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषै कर्त्तापना अपना माननें लागा, ऐसें पर्यायाश्रित कार्यनिविषै अहंबुद्धि माननेकी समानता भई। जैसें मैं जीव मारू हूं, मैं परिग्रहधारी हूँ, इत्यादिरूप मानि थी, तैसे ही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूँ, मैं नग्न परिग्रह रहित हूँ, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषै अहबुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसारविषै कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसातताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥

(सर्व वि०अधिकार १६६)

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते सते आपकों पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानै हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसे अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय तैसे मोक्ष न हो है। जातै कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसे आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषै मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखे हैं। जैसें उन क्रियानिविषै भंग न होय तैसें प्रवर्त्तै हैं। सो ऐसे भाव तो सराग है। चारित्र है सो वीतरागभावरूप है। तातैं ऐसे साधनको मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहाँ प्रश्न - जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है सो कैसें हैं?

ताका उत्तर—जैसें तन्दुल दोय प्रकारके हैं—एक तुषसहित हैं एक तुषरहित हैं, तहाँ ऐसा जानना - तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषै दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै

था, ताकौं देखि कोई भोला तुषनिहीको तन्दुल मानि सग्रह करै तौ वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसे चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहा ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाही, चारित्रविषै दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनकौं देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकौं चारित्र मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहाँ कोऊ कहेगा—पापक्रिया करते तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकौं करते मदराग भया। तातै जेता अशा रागभाव घट्या, तितना अशा तो चारित्र कहो। जेता अशा राग रह्या, तेता अंशा राग कहो। ऐसै याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान— जो तत्वज्ञानपूर्वक ऐसै होय तो कहो हो तैसै ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होते भी असयम ही नाम पावै है। जातै रागभाव करनेका अभिप्राय नाही मिटै है। सोई दिखाईए है—

द्रव्य लिगी के अभिप्राय में अयथार्थपना

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोडि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मूल गुणनिको पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खड खड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत भंगके कारण अनेक मिलै तो भी दृढ रहै है, कोई सेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है, ऐसे साधनविषै कोई कपटाई नाही है, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषय सुखकौं न चाहै है, ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय तो ग्रैवेयकपर्यन्त कैसे पहुँचै परन्तु याकौं मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्रविषै कह्या। सो ताका

कारण यहु है—याकै तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं। पूर्वे वर्णन किया,तैसे तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्रायतैं सब साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकों विचारें कषायनिका अभिप्राय आवै है। कैसे ? सो सुनहु—यहु पापका कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यका कारण प्रशस्तरागको उपादेय मानै है। ताके बधनेका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायकों उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषै राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्य-निविषै साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसे काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धानविषै दंड देना अनिष्ट ही मानै है। तैसे सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धान विषै कषायकौं हेय ही मानै है। बहुरि जैसे कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसे द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्त रागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसे प्रशस्तरागका उपायविषैं वा हर्षविषै समानता होतें भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै व्यापारसमान श्रद्धान पाईए है। तातै अभिप्रायविषैं विशेष भया।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततें दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहां वीतरागता हो है, तहाँ तो जैसे अन्य ज्ञेयकों जानै है तैसें ही दु.खका कारण ज्ञेयको जानै है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकों सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतें सहै है। सो विचार ऐसा ही है--जो परवशपने नरकादिगतिविषै बहुत दुःख सहे, ये परीषहादिका दु ख तो थोरा है। याको स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखको प्राप्ति हो है। जो इनको न सहिए अर विषयसुख सेइए तो नरकादिककी प्राप्ति होसी, तहा बहुत दु ख होगा। इत्यादि विचारविषै परीषहनिविषै अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयते वा सुखके लोभते तिनको सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है—जे कर्म बांधे थे, ते भोगे बिना छूटते नाही, ताते मोकों सहने आए। सो ऐसे विचारते कर्मफल चेतना रूप प्रवर्त्तै है। बहुरि पर्यायदृष्टिते जे परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताको आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितें अपनी वा शरीरादिककी अवस्था-को भिन्न न पहिचानै है। ऐसै ही नाना प्रकार व्यवहार विचारतै परीषहादिक सहै है।

बहुरि याने राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसे कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयते शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसे राग सहित जीव नरकादिके भयते विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत्

विषयसेवन रुचै तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसे अमृत का आस्वादी देवकों अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसका आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह सहनादिकों सुखका कारण जानै है अर विषय-सेवनादिको दु:खका कारण जानै है। बहुरि तत्कालविषै परीषह सहनादिकतै दु ख होना मानै है, विषयसेवनादिकतै सुख मानै है। बहुरि जिनतै सुख दु ख होना मानिए, तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धितैं रागद्वेष रूप अभिप्रायका अभाव होय नाही। बहुरि जहा रागद्वेष है, तहां चारित्र होय नाही । तातै यहु द्रव्यलिगी विषयसेवन छोरि तप-श्चरणादि करै है तथापि असयमी ही है। सिद्धांतविषै असयत देश-सयतसम्यग्दृष्टोतै भी याकों हीन कह्या है। जातै उनकै चौथा पांचवां गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहां कोऊ कहै कि–असयत देशसयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिगी मुनिकै थोरी है, याहीतें असयत देशसयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातै भावलिगो मुनितै तो द्रव्यलिगीकों हीन कहो, असयत देशसयन सम्यग्दृष्टीतें याको हीन कैसे कहिए ?

ताका समाधान—असयत देशसयत सम्यदृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाही। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभ कषाय करनेंका अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषैं तिनकों भले जानैं है। तातैं श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्य-दृष्टितें भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिक

प्रवृत्तिशुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषे पुण्य पापबधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। ताते उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुँचे है,सो किछू कार्यकारी नाही। जाते अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाही। इनके उदयते ऊँचे नीचे पद पाए तो कहा भया। ए तो बाह्य सयोगमात्र ससार दशाके स्वाग हैं। आप तो आत्मा है, ताते आत्मगुणके घातक घातिया कर्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातियाकर्मनिका बध बाह्य प्रवृत्तिके अनुसार नाही। अतरंग कषाय शक्तिके अनुसार है। याहीते द्रव्यलिगीते असयत देशसयत सम्यग्दृष्टिके घातिकर्मनिका बध थोरा है। द्रव्यलिगीकै तो सर्वघातिकर्मनिका बध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबधी आदि कर्मका तो बध है ही नाही, अवशेषनिका बध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल सयम भए निरन्तर हो है। याहीते यहु मोक्षमार्गी भया है। ताते द्रव्य लिगी मुनि असयत देशसयतसम्यग्दृष्टीते हीन शास्त्रविषै कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषै द्रव्यलिगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीकाकलशानिविषै प्रगट किया है। बहुरि पचास्तिकायकी टीकाविषै जहा केवल व्यवहारावलम्बीका कथन किया है, तहाँ व्यवहार पचाचार होते भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषै ससार तत्व द्रव्यलिगीकों कह्या। बहुरि परमात्म प्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषै भी इस व्याख्यानकों स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिगीकै जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए हैं,

तिनकों भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषै जहां तहां दिखाई हैं, सो तहां देखि लेना। यहा ग्रन्थ बधनेके भयतें नाहीं लिखिए हैं। ऐसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासको अवलम्बे हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

निश्चय व्यवहारनयाभासावलम्बी मिथ्यादृष्टियोंका निरूपण

जे जीव ऐसा मानें हैं - जिनमतविषै निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातें हमको तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसें विचारि जैसे केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें तो निश्चयका अंगीकार करे है अर जैसे केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसे व्यवहारका अंगीकार करे हैं। यद्यपि ऐसें अंगीकार करने विषै दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, सांचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहि अर जिनमतविषै दोय नय कहे, तिनिविषैं काहूको छोडी भी जाती नाहीं। तातें भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै हैं,ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जाननें।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अंतरंगविषैं आप तौ निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकों पहिचान्या नाहीं जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहां सांचा मोक्षमार्गकों मोक्षमार्ग निरूपिए सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर जहां जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है

वा सहचारी है, ताको उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, जातै निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। साचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चयमोक्ष-मार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है,ऐसैं दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातै निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातै समयसार विषै ऐसा कह्या है --

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ*।" गाथा ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपको न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्धनय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसैं इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है।

बहुरि तू ऐसैं मानै है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभवन सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाही। जातै कोई द्रव्यभावका नाम निश्चय, कोईका नाम व्यवहार ऐसैं है नाही। एक ही द्रव्यके भावकौं तिस स्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चयनय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकौं अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना,सो व्यवहार है। जैसैं माटीके

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥ गाथा ११ ॥

घड़ेकों माटीका घड़ा निरूपिए सो निश्चय अर घृत सयोगका उपचार करि वाकों ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार। ऐसें ही अन्यत्र जानना। तातें तू किसीकों निश्चय मानें, किसीको व्यवहार मानें सो भ्रम है। बहुरि तेरे मानने विषैं भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपको सिद्धसमान शुद्ध मानै है, तो व्रतादिक काहेको करै है। जो व्रतादिका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसै दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातें दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाहीं।

यहां प्रश्न--जो समयसारादिविषै शुद्ध आत्माका अनुभवकों निश्चय कह्या है, व्रत तप सयमादिकको व्यवहार कह्या है तैसे ही हम मानै हैं।

ताका समाधान--शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है तातें वाको निश्चय कह्या। यहा स्वभावतें अभिन्न, परभावतें भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। ससारीको सिद्ध मानना ऐसा भ्रम-रूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतें इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातें इनको व्यवहार कह्या। ऐसै भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनको निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसैं ही मानना। बहुरि ए दोऊ-ही साचे मोक्षमार्ग है, इन दोऊनिको उपादेय मानना सो तो मिथ्या-बुद्धि ही है। तहाँ वह कहै है--श्रद्धान तो निश्चयका राखै हैं अर प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखै हैं, ऐसैं हम दोऊनिकों अंगीकार करै है। सो ऐसैं भी बनै नाहीं, जातें निश्चयका निश्चयरूप अर व्यवहारका

व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषै नयका प्रयोजन ही नाही। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परणति है। तहाँ जिस द्रव्यकी परणति होय, ताकौं तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकौं अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यहारनय, ऐसैं अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतें तिस प्रवृत्तिविषै दोऊ नय बनैं हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाही। तातैं या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो कहिए हैं— निश्चयनयकरि जो निरूपण किया होय, ताको तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताको असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोडना। सो ही समयसार विषै कह्या है —

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥

समयसार कलश बंधाधिकार १७३

याका अर्थ- जातैं सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषै अध्यवसाय हैं सो समस्त ही छोडना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातैं मैं ऐसे मानूं हूं, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चयहीको भले प्रकार निष्कम्प अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषैं स्थिति क्यों न करैं हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया, तातैं निश्चयको अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषै कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥१॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषै सूता है सो जोगी अपने कार्यविषै जागै है। बहुरि जो व्यवहारविषै जागै है सो अपने कार्यविषै सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोडि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यको वा तिनके भावनिको वा कारण कार्यादिकको काहूको काहूविषै मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतै मिथ्यात्व है तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनही को यथावत् निरूपै है, काहूको काहूविषै न मिलावै है। सो ऐसेही श्रद्धानतै सम्यक्त्व हो है तातैं याका श्रद्धान करना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है सो कैसे?

ताका समाधान—जिनमार्गविषै कही तो निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको तो 'सत्याथ ऐसै ही है' ऐसा जानना। बहुरि कही व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताको 'ऐसै है नाही, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानको समान सत्यार्थ जानि ऐसै भी है, ऐसै भी है—ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तो दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाही।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है तो ताका उपदेश जिनमार्गविषै काहेको दिया ? एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था।

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषै किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ।। गाथा ८ ।।

याका अर्थ—जैसै अनार्य जो म्लेक्ष सो ताहिको म्लेक्षभाषा विना अर्थ ग्रहण करावनेको समर्थ न हूजे। तैसै व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातै व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषै ऐसा कह्या है—'**व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य**'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अगीकार करावनेको व्यवहार करि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है सो अगीकार करने योग्य नाही।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चय का उपदेश कैसै न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसै अगीकार न करना, सो कहो ?

ताका समाधान—निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनितै भिन्न स्वभावनितै अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है। ताको जे न पहिचानै, तिनको ऐसै ही कह्या करिए तो वह समझै नाही। तब उनकों व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारक पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषै भेद

उपजाय ज्ञान दर्शानदि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जानने-वाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकौं जे न पहिचानें, तिनिको ऐसें ही कह्या करिए, तो वे समझें नाही। तब उनको व्यवहारनयकरि तत्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेका सापेक्षकरि व्रत शील सयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चय के उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीको जीव कह्या, सो पर्यायहीकों जीव न मानि लेना। पर्याय तो जीव पुद्गलका सयोगरूप है। तहाँ निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकों जीव मानना। जीवका संयोगतें शरीरादिकको भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतें शरीरादिक जीव होते नाही, ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषै ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनको भेदरूप ही न मानि लेने। भेद तो समझावने के अर्थ किए हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है, तिसहीकों जीव वस्तु मानना। सज्ञा सख्यादिकरि भेद कहे, सो कहने मात्र ही हैं, परमार्थतें जुदे जुदे हैं नाही। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्य का निमित्त मिटनेकी अपेक्षा व्रतशीलसयमादिककों मोक्षमार्ग कह्या, सो इनहीको मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तो आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यके आधीन है नाही। तातैं आत्मा अपने भाव

रागादिक हैं, तिनकों छोडि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्य कारणपनों है। तातैं व्रतादिकको मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही हैं। परमार्थतै बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाही, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसे ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार न करना जानि लेना।

यहाँ प्रश्न—जो व्यवहारनय परको उपदेशविषै ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है ?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुको न पहिचानै, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातै नीचली दशाविषै आपको भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारको उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका ठीक (निश्चय) करै, तौ तो कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसै ही है, ऐसा श्रद्धान करै तो उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्धय्पायविषै कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देषयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति॥६॥
माणवक एव सिंहो यता भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेको असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताको उपदेशै हैं। जो केवल व्यवहारहीकों जानै है, ताको उपदेश ही देना योग्य नाही है। बहुरि जैसे जो साचा सिंहकों न

जानै, ताकै बिलाव ही सिंह है। तैसें जो निश्चयको न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाको प्राप्त हो है।

इहाँ कोई निर्विचार पुरुष ऐसैं कहै—तुम व्यवहारको असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील सयमादि व्यवहार कार्य काहेको करें—सर्व को छोडि देवेंगे। ताको कहिए है—किछू व्रत शील सयमादिक का नाम व्यवहार नाही है। इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है सो छोडि दे। बहुरी ऐसा श्रद्धानकरि जो इनको तो बाह्य सहकारी जानि उपचारतें मोक्षमार्ग कह्या है। ए तो परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि साचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसैं व्यवहारको असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिकको छोडनेतै तो व्यवहारका हेयपना होता है नाही। बहुरि हम पूछे हैं—व्रतादिकको छोडि कहा करेगा ? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तेगा तो तहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भवै नाही। तहाँ प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावोगे। तातै ऐसें करना तो निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै तो भले ही है। सो नीचली दशाविषैं होय सकै नाही। तातै व्रतादिसाधन छोडि स्वच्छन्द होना योग्य नाही। या प्रकार श्रद्धानविषैं निश्चयको, प्रवृत्तिविषैं व्यवहारको उपादेय मानना सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपको शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषै लागै है। सो ऐसा आप नाही परन्तु भ्रमतैं निश्चय करि मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो

है। कदाचित् वचनद्वारि निरुपण ऐसै ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुको प्ररूपै, प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसे पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वं अयथार्थपना कह्या था, तैसे ही याकै जानना।

अथवा यह ऐसै मानै है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है। सो आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिसविषै नयकरि निरूपण करने का जो अभिप्राय है, ताको न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चयकरि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मरहित है, व्यवहारनय करि ससारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मसहित है—ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे दोय वरूप तो होय नाहीं। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषै कैसै सम्भवै ? तातै ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसै है—जैसे राजा रक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं तैसे सिद्ध ससारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे हैं, केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए सो है नाहीं। ससारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं, सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है-ससारीकै मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्ततै हैं तातै स्वभावअपेक्षा ससारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाहीं। जैसे रक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाईए, तैसे यहु शक्ति जाननी। बहुरि नोकर्म द्रव्यकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातै निश्चयकरि ससारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न मानै तो भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तैं हो है, तातैंव्यवहारकरि कर्म का कहिए है। बहुरि सिद्धवत् ससारीकै भी रागादिक न मानना, कर्मही का मानना—यहु भ्रम है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकों एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तो मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसें मानि यथासभव वस्तुकों मानना सो साँचा श्रद्धान है। तातै मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकों मानै परन्तु यथार्थ भावको पहिचानि मानि सकै नाही, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील सयमादिकका अगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्ष के कारण हैं' ऐसा मानि तिनकों उपादेय मानै है। सो जैसें केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वें अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यहु ऐसें भी मानै है—जो यथा योग्य व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है परन्तु इनविषै ममत्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसें न करिए। आप कर्त्ता न है, तो मुझको करनी योग्य है ऐसा भाव कैसें किया। अर जो कर्त्ता है, तो वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ताकर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही भया। सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। तो कैसें है—बाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाही, तातै तिसविषैंकर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहाँ ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषैं ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है, तातै तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगको बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना, जातैं बंध अर मोक्षकै तो प्रतिपक्षीपना है। तातैं एक ही भाव पुण्य-बंध को भी कारण होय अर मोक्षको भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाही, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्ष-मार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषै केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धो पयोगका युक्तपना पाईए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगको मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारता शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं बंधको कारण सोई मोक्षका घातक है, ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीको उपादेय मानि ताका उपाय करना, शुभोपयोग अशुभपयोग को हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहाँ शुद्धो-पयोग न होय सकै, तहाँ अशुभ पयोगको छोडि शुभही विषै प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषै अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तो परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहाँ तो किछू परद्रव्य का प्रयोजन ही नाही। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रता-दिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाईए है। बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछै शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है।

बहुरि कोई ऐसैं मानै कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोगको कारण है। सो जैसै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसै शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है—ऐसैं ही कार्यकारणपना होय तो

शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तो उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाहीं। तातै परमार्थतै इन कै कारण कार्यपना है नाहीं। जैसै रोगीक बहुत रोग था, पीछे स्तोक रोग भया, तो वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है, स्तोक रोग रहे निरोग होने का उपाय करै तो होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीको भला जानि ताका राखने का यत्न करै तो निरोग कैसै होय। तैसै कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछे मंदकषायरूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो निःकषाय शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाहीं। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीको भला जानि ताका साधन किया करै तो शुद्धोपयोग कैसै होय। तातै मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोगको कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगको शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है, ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपको निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माको शुद्ध मान्या सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसैही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसैही विचारविषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसै तो आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसै मानूं, जानूं, विचारूं हूँ इत्यादि विवेकरहित भ्रमतै सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिकको न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीखि लिए हैं तिनहीको मानै है, औरको न मानै सो तो सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यास विषै बहुत प्रवर्त्तै है सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषै प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसैं आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार तो उपचारका नाम है। सो उपचार भी तो तब बनै जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसैं निश्चय रत्नत्रय सधै तैसैं इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाही। यहु ऐसैं कैसै साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्यादेखी साधन करै है। तातै याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा।

ऐसैं यहु जीव निश्चयाभासको मानै जानै है परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानै है, तातै स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातै अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदको पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातै अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय तो कुगतिविषै भी गमन होय, परिणामनिके अनुसारि फल पावै है परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। साचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदको न पावै है। ऐसैं निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टि तिनिका निरूपण किया।

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि का निरूपण

कोई मदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातै तत्वविचार करनेकी शक्ति भई अर मोह मद भया, तातै तत्व विचारविषै उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि साचा उपदेशका लाभ भया। तहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्वनिका वा आपा परका वा आपको अहितकारी हितकारी भावनिका इत्यादिकका उपदेशतै सावधान होय ऐसा विचार किया— अहो मुझको तो इन बातनिकी खबरि ही नाही, मैं भ्रमतै भूलि पाया पर्याय ही विषै तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तो थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहाँ मोको सर्व निमित्त मिले हैं तातै मोकों इन बातनिका ठीक करना। जातै इनविषै तो मेरा ही प्रयोजन भासै है। ऐसै विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहाँ उद्देश, लक्षणनिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातै पहले तो तिनके नाम सीखै सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसै सम्भवै है कि नाही, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहाँ नाम सीखि लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तो उपदेशके अनुसार हो हैं। जैसै उपदेश दिया तैसै याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषै अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपने उपयोगविषै विचारै, जैसै उपदेश दिया तैसै ही है कि अन्यथा है। तहाँ अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तो ऐसै है अर ऐसै न मानिए तो ऐसै होय। सो इनविषै प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है। जो प्रबल भासै, ताको साच जानै। बहुरि

जो उपदेशते अन्यथा साच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तो बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनको पूछै । बहुरि वह उत्तर दे, ताको विचारै । ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै । अथवा समानबुद्धिके धारक होय, तिनको अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहै । प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै । बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषै निरूपण भया होय, ताको एकान्तविषै विचारै । याही प्रकार अपने अन्तरंगविषै जैसे उपदेश दिया था, तैसे ही निर्णय होय भाव न भासै, तावत् ऐसैं ही उद्यम किया करै । बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै वा सन्देह होय तो भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै । ऐसै उद्यम किए जैसे जिनदेवका उपदेश है तैसे ही साच है, मुझको भी ऐसे ही भासै है, ऐसा निर्णय होय । जातै जिनदेव अन्यथावादी हैं नाही ।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव जो अन्यथावादी नाही हैं तो जैसे उनका उपदेश है तैसै श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेको कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तो मानना होय, जो जिनदेव ऐसे कह्या है सो सत्य है परन्तु उनका भाव आपको भासै नाही । बहुरि भाव भासे विना निर्मल श्रद्धान न होय । जाकी काहू का वचनही करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तातै शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्ही प्रतीति अप्रतीतिवत् है । बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताको अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानै । तातै भाव भासे प्रतीति होय सोई साची प्रतीति है । बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणते वचनप्रमाण कीजिए है, तो पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहले करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहाँ प्रश्न--उपदेश तो अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए ?

ताका समाधान—उपदेशविषै केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्व निरूपिए हैं। तहाँ उपादेय हेय तत्वनिकी तो परीक्षा करि लेना। जातै इन विषै अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेयकों हेय मानि लै तो बुरा होय, हेयको उपादेय मानि लै तो बुरा होय।

बहुरि जो कहैगा—आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतै उपादेयको उपादय जानै, हेयको हेय जानै तो यामे कैसै बुरा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानै। यहु तो मानि ले, जो मैं जिनवचन अनुसारि मानू हूँ परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषै भी किंकर को किसी कार्यको भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानै तो कार्यको सुधारै, जो भाव न भासै तो कही चूकि ही जाय। तातै भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय तो कहा करिए ?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तो जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसैं न होय तावत् जैसैं कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूकको

ढूंढै। तैसै यह अपनी परीक्षा विषै विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्व ही अन्यथा न कहै तो ज्ञेयतत्व अन्यथा किम अर्थि कहै। जैसे कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषै झूठ न बोलै सो अप्रयोजन झूठ काहेको बोलै। तातै ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानै है। तिनका यथार्थ भाव न भासै तो भी दोष नाहीं। याहीतै जैनशास्त्रनिविषै तत्वादिकका निरूपण किया, तहाँतो हेतु युक्ति आदिकरि जैसै याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसै कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातै हेयोपादेय तत्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहाँ जीवादिक द्रव्य वा तत्व तिनको पहचानना। बहुरि तहाँ आपा पर को पहचानना। बहुरि त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणे योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तिकादिक जैसे हैं, तैसै पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषै जिनके जानै प्रवृत्ति होय, तिनको अवश्य जानने। सो इनकीतो परीक्षा करनी। सामान्यपने किसी हेतु युक्ति करि इनको जानने वा प्रमाण नयकरि जानने वा निदश स्वामित्वादिकरि वा सत् सख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनै तैसै इनको सामान्य विशेषरूप पहचानने। बहुरि इस जाननेका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना।

ऐसै इस जानने के अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र बाँचै है, कबहूँ सुनै है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहूँ प्रश्नोत्तर करै है इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातै अतरग प्रीतितै ताका साधन करै। या प्रकार साधन करता यावत् साचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसै ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्वनिका स्वरूप आपको न भासै, जैसै पर्यायविषै अहबुद्धि है तैसै केवल आत्मविषै अहबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भावनिको न पहिचानै, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमे सम्यक्तको प्राप्त होगा। इस ही भवमे वा अन्य पर्यायविषै सम्यक्तको पावेगा। इस भव मे अभ्यासकरि परलोविषै तिर्यचादि गतिविषै भी जाय तो तहाँ सस्कारके बलतै देव गुरु शास्त्रका निमित्त विना भी सम्यक्त होय जाय। जातै ऐसे अभ्यासके बलतै मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय, तहाँ ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तो बाह्य निमित्त है सो मुख्यताकरि तो इनके निमित्तहीतै सम्यक्त हो है। तारतम्यतै पूर्व अभ्यास सस्कारतै वर्तमान इनका निमित्त न होय तो भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धान्तविषैऐसा सूत्र है—"**तन्निसर्गादधिगमाद्वा**"

(तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतै हो है। तहाँ देवादिक बाह्य निमित्त बिना होय, सो निसर्गतै भया कहिए। देवादिकका निमित्ततै होय सो अधिगमतै भया कहिए। देखो तत्वविचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तो सम्यक्त होनेका अधिकार नाही। अर तत्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होने पहले किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अंगीकार होय, पीछै तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है।

बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछै तत्वप्रतीति न होनेतै सम्यक्त तो न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातै देवादिक की प्रतीति करै है वा व्रत तपको अंगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहले पीछै भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है। इस बिना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाही। घने जीव तो पहले सम्यक्त होय पीछै ही व्रतादिकको धारै हैं। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसै यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है परन्तु याकै सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाही। जातै शास्त्र-विषै सम्यक्त होनेतै पहले पंच लब्धिका होना कह्या है—

पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहाँ जिसको होते सते तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालको प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषै उदय आवने योग्य तिनहीका सत्तारूप रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताको प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मद उदय आवनेते मदकषाय रूप भाव होय जहाँ तत्व विचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहाँ नरकादिविषै उपदेशका निमित्त न होय, तहाँ पूर्वसस्कारतै होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता (घटकरि) अत कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बध अतःकोटाकोटी प्रमाण ताके सख्यातवे भाग मात्र होय, सो भी तिस लब्धि कालते लगाय क्रमते घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बध क्रमते मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारो लब्धि भव्य या अभव्यकै होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछैं सम्यक्त होय तो होय, न होय तो नाही भी होय। ऐसै 'लब्धिसार' विषै कह्या है[1]। तातै तिस तत्व विचारवालाकै सम्यक्त्व होनेंका नियम नाही। जैसे काहूकों हितकी शिक्षा दई, ताको वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसे है ? पीछे विचारता वाकै ऐसे ही है, ऐसी उस सीखि की प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाही भी होय। तैसे श्रीगुरु तत्वोपदेश दिया, ताको जानि विचार करै, यहु उपदेश दिया सो कैसे है। पीछे विचार करनेते वाकै 'ऐसे ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषै लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै तो प्रतीति नाही भी होय सो मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है, याका उदय मिटै तो प्रतीति होई जाय, न मिटै तो नाही होय, ऐसा नियम है। याका उद्यम तो तत्वविचार करने मात्र ही है।

1 लब्धि० ३

बहुरि पाँचवी करणलब्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकै पूर्वे कही थी च्यारि लब्धि ते तो भई होय अर अतर्मुहूर्त्त पीछे जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तो इतनाही उद्यम हो है—तिस तत्व-विचारविषैं उपयोगको तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय हैं। जसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीत होय जासी। तैसै तत्वउपदेश का विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताका निरूपण करणानुयोगविषै किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं—अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तो लब्धिसार शास्त्रविषै किया है, तिमते जानना। यहाँ सक्षेपसो कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहाँ करण नाम तो परिणामका है। बहुरि जहाँ पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होय सो अध करण है[1]। जैसै कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भया, पीछे समय समय अनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसै द्वितीय तृतीयादि समयनिविषै परिणाम होय, तैसै केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषैं ही होय। ताकै तिसते समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधते होय। ऐसै अध प्रवृत्तिकरण जानना।

---

1 लब्धि० ३५

बहुरि जिसविषै पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होय, सो अपूर्वकरण है। जैसे तिस करणके परिणाम जैसे पहले समय होय तैसे कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषै न होय, बधते ही होय। बहुरि इहाँ अध करणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिनि अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होय। परन्तु यहाँ इतना विशेष भया जो इसकी उत्कृष्टताते भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होय। ऐसे ही जिनकोंकरण माँडि द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालो कै तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होय परन्तु ऊपरले समयवालोकै तिस समय समान सर्वथा न होय, अपूर्व ही होय। ऐसे अपूर्वकरण [1] जानना।

बहुरि जिस विषै समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होय। जैसे तिस करणका पहला समयविषै सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैंही द्वितीयादि समयनिविषै समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोते द्वितीयादि समयवालोकै अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होय। ऐसै अनिवृत्तिकरण [2] जानना।

---

1 समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि णत्थि सरिसत्त ।। लब्धि ३६ ।।
तम्हा विदिय करण अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठ ।।लब्धि० ५१ ।।
करण परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति ज उत्त होदि। धवला, १-९-८-४

2 एगसमए वट्ट ताण जीवाण परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्विति जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १-९-८-४। एक्कम्हि काल-समये सठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं ।। गो० जी० ५६ ।।

ऐसे ए तीन करण जानने। तहाँ पहले अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यन्त अध करण होय। तहाँ च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्त करि नवीन बधकी स्थिति घटती होय सो स्थितिबधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबध अनन्तवे भाग होय, ऐसे च्यारि आवश्यक होंय—तहाँ पीछे अपूर्वकरण होय। ताका काल अध करणके कालके सख्यातवे भाग है। ताविषै ए आवश्यक और होय। एक एक अन्त-र्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताको घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसते स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागको घटावै सो अनुभाग काडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषै क्रमते असख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसे अपूर्वकरण भए पीछे अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी सख्यातवे भाग है। तिसविषै पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछे अन्तरकरण[1] करै है। अनिवृत्तिकरणके काल पीछे उदय आवने योग्य

---

1 किमन्तरकरण णाम ? विवक्खियकम्माण हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताण ट्ठिदीण परिणामविसेसेण णिसेगा-णमभावीकरण मन्तरकरणमिदि भण्णदे ॥

जय ध० अ० प० ९५३

अर्थ—अन्तरकरण का क्या स्वरूप है ? उत्तर—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियो को छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियो के निषेकोका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तर-करण कहते हैं।

ऐसे मिथ्यात्वकर्मके मुहूर्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिको अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरण किये पीछे उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनको उदय आवनेको अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातै मिथ्यात्वका उदय न होनेतै प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाही है। तातै एक मिथ्यात्वकर्महीको उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछे भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी होय जाय है।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसे होय ?

ताका समाधान—जैसे किसी पुरुषको शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसे ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछे अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातै उस शिक्षाविषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसे है, अथवा 'न जानो कैसे है', अथवा तिस शिक्षाको झूठ जानि तिसतें विपरीति भई, तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वै तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमे शिक्षाका विचारतें यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताको भूलि जैसे पूर्वै अन्यथा प्रतीत

थी तैसें ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहले तो कीन्ही, पीछे न तो किछु अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा ही कर्म उदयते होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसे अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसे जीवके जिनदेव का तत्त्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसे ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछे पूर्वं जैसे कहे तैसे अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धान का अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषै भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाही है। जातै यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तो अन्य विचारादि कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरग समय समय सम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाही। तातै अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याको निश्चय हो सकै नाही, केवलज्ञानविषै भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषै कही है। या प्रकार जो सम्यक्तते भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषै पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। विशेष इतना-यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिकी सत्ता हो है सो तिनोको उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहू कै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय

न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। याकं करण न हो है। ऐसैं सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटे दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तको वेदकसम्यग्दृष्टीही पावै है तातै ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसैं सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तो मध्यम अन्तर्मुहूर्त्तमात्र उत्कृष्ट किंचित-ऊन अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता, कोई जीव तो ग्यारवे गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टीहोय किंचित ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत ससारमे रुलै अर कोई नित्यनिगोदमैसो निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछे अतर्मुहूर्त्त मे केवलज्ञान पावै। ऐसै जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो बाह्य जैनीपना नाही नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतै बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी भी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वको भी ग्रहै है। निगोदादिविषै भी रुलै है। याका किछू प्रमाण नाही।

बहुरि कोई जीव सम्यक्तते भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहाँ जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमे आवती नाही। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहाँ अनतानुबधीका तो उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतै याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्त भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानको प्राप्त हो है। तहाँ मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त-

मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं। यहाँ इतना भासै है—जैसे काहूको सीख दई तिसको वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानै तैसै तत्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकै काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमको तो जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वदने योग्य हैं इत्यादि मिश्र श्रद्धान को मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो देव कुदेव का किछू ठीक ही नाहीं। याकै तो यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है, ऐसैं जानना।

ऐसैं सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है ताका प्रयोजन यह जानना—जो इन प्रकारनिको पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय तो ताको दूरिकरि सम्यकश्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला बुरा तो अपने परिणामनिते है। औरनिको तो रुचिवान् देखिए, तो किछू उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातैं अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है। जातैं ससारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाही है। एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तो बध ही मिटि जाय। स्थिति अन्त कोटाकोटी सागरकी रहि जाय। अनुभाग थोरा ही रहि जाय। शीघ्र ही मोक्षपदको पावै। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहे अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामें भया ऐसा सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७॥

ॐ नमः

आठवाँ अधिकार

उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिको मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उपकार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करैं हैं। तातै इस शास्त्रविषै भी तिनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातै उपदेशको यथावत् न पहिचानै तो अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्तै, तातै उपदेशका स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषै उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषै निरूपण किया होय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेंका जाविषै निरूपण होय, सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषै निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

1-रत्नक० २,२। 2-रत्नक० २,३। 3-रत्नक० २,४। 4-रत्नक० २,५।

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषै तो ससारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो हैं, जाते वे जीव सूक्ष्मनिरूपणको पहिचानै नाही। लौकिक वार्तानिको जानै। तहाँ तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषै लौकिक, प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होय, ताको ते नीके समझि जाय। बहुरि लोक-विषै तो राजादिककी कथानिविषै पापका पोषण हो है। तहाँ महत पुरुष राजादिक तिनकी कथा तो हैं परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापको छुडाय धर्मविषै लगावनेका प्रगट करै हैं। तातै ते जीव कथानिके लालचकरि तो तिसको बाचै सुनै, पीछे पापको बुरा धर्मको भला जानि धर्मविषै रुचिवत हो हैं। ऐसै तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेको यहु अनुयोग है। 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषै[1] किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान भया होय, पीछे इस प्रथमा-नुयोगको बाचै सुनै, तो तिनको यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसे जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक सयोगी पदार्थ हैं, ऐसै यहु जानै था। बहुरि पुराणनिविषै जीवनिके भवातर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगको जानै

1 प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्न वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगो-ऽधिकार. प्रथमानुयोग., जी प्र. टी. गा. ३६१-२।

था वा तिनके फलको जानै था। बहुरि पुराणनिविषै तिन उपयोगनि-की प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेका उदाहरण भया। ऐसै ही अन्य जानना। यहाँ उदा-हरणका अर्थ यहु जो जैसे जानै था तैसै ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातैं यह तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसे कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि सुभटपनाविषै अति उत्साहवान् हो है। तैसै धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषै होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषै अति उत्साहवान् हो है। ऐसै यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषै जीवनिकी वा कर्मनिका विशेष वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाए हैं। जे जीव धर्मविषै उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसे कैसैं पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकाने पहिचानि पापते विमुख होय धर्मविषै लागै हैं। बहुरि ऐसे विचार-विषै उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषै ही है, अन्यत्र नाही, ऐसै महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगको अभ्यासै हैं, तिनको यहु तिसका विशेषरूप भासै है।

जो जीवादिक तत्व आप जानै है, तिनहीका विशेष करणानुयोगविषै किए हैं। तहाँ केई विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिए व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनको जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगको अभ्यासै है। इस अभ्यासते तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसे कोऊ यहु तो जानै था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके घने विशेष जाने निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसै तत्वनिको जानै था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्वनिके घने विशेष जानै तो निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगको लगाईए तो रागादिककी वृद्धि होय अर छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाही। तातै ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषै उपयोगको लगावै है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेविषै विरुद्ध है नाही। ऐसै यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यको कारण सूत्र तिनका जाविषै 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषै गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषै नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिको धर्मविषै लगाईए है। जे जीव हित अहितको जानै नाही, हिंसादिक पाप कार्यनिविषै तत्पर

होय रहे हैं, तिनकों जैसें पापकार्यनिको छोड़ि धर्मकार्यनिविषैं लागै तैसें उपदेश दिया, ताको जानि धर्म आचरण करनेको सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्म वा मुनिधर्म का विधान सुनि आपते जैसा सधै तैसा धर्म-साधनविषै लागै हैं। ऐसें साधनतै कषाय मंद हो है। ताके फलतै इतना तो हो है, जो कुगतिविषै दुख न पावै अर सुगतिविषै सुख पावै। बहुरि ऐसे सानधतै जिनमत का निमित्त बन्या रहै, तहाँ तत्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तो होय जावै। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होयकरि चरणानुयोगको अभ्यासै हैं, तिनको ए सर्व आचरण अपनें वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जातै इनकै निमित्त नैमित्तिकपनो पाईए है। ऐसें जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मको साधै हैं। तहाँ जेता अंशा वीतरागता हो है, ताकों कार्यकारी जानै हैं, जेता अंशां राग रहै है, ताकों हेय जानै हैं। सम्पूर्ण वीतरागताकों परम-धर्म मानै हैं। ऐसें चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है। द्रव्यानुयोगविषै द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपण करि जीवनिकों धर्मविषै लगाईए है। जे जीव जीवादिक द्रव्यनिकों वा तत्वनिकों पहिचानै नाही, आपा परकों भिन्न जानै नाही, तिनको हेतु दृष्टात युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिन-का स्वरूप ऐसे दिखाया जैसें याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतें अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासैं,

तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावको पहिचाननेका अभ्यास राखै तो शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगको अभ्यासै। तिनको अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसे काहूने किसी विद्याको सीखि लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तो भूलि जाय। तैसे याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तो वह तत्वज्ञान रहै, न करै तो भूलि जाय। अथवा सक्षेपपने तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टातादिककरि स्पष्ट होय जाय तो तिसविषै शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतै रागादि घटनेतै शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसे द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।

अब इन अनुयोगनिविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोग मे व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोगनिविषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपिये हैं। अर तिनविषै प्रसग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तो जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रथकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसे तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषै इन्द्र आया, यहु कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तो और ही प्रकार स्तुति कीनी थी अर यहाँ ग्रन्थ कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहाँ

उनके तो और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहाँ ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावें हैं। बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तो यथावत् ही लिखे अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजनकों पोषता निरूपैं हैं। इत्यादि ऐसें ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसें **धर्मपरीक्षाविषै** मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाको पोषती कोई वार्त्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

यहां कोऊ कहै— अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनिविषैं सम्भवै नाहीं ?

ताका उत्तर—अन्यथा तो वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै। जैसें काहूको कह्या—तू ऐसैं कहियो, वानें वे ही अक्षर तो न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या तो वाको मिथ्यावादी न कहिए, तैसें जानना। जो जैसाका तैसा लिखनेंकी सम्प्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था, ताका वर्णन सब लिखें ग्रन्थ बधि जाय, किछु न लिखे तो वाका भाव भासै नाहीं। तातें वैराग्यके ठिकाने थोरा बहुत अपना विचारके अनुसारि वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहां प्रयोजन अन्यथा न भया तातें याको अयथार्थ न कहिए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै जाकी मुख्यता होय, ताको ही पोषै हैं। जैसें काहूनें उपवास किया, ताका तो फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातें विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिसकों उपवासहीका फल निरूपण करै, ऐसें ही अन्य

जानने। बहुरि जैसे काहूनें शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ राखी वा नमस्कार, मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये, तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म के उदयते वैसे कार्य भए तो भी तिनको तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करै। ऐसै ही कोई पापकार्य किया, ताकै तिसहीका तो तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयते नीचगतिको प्राप्त भया वा कष्टादिक भए, ताको तिसही पाप कार्य का फल निरूपण करै। इत्यादि ऐसै ही जानना।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तो योग्य नाही, ऐसे कथनको प्रमाण कैसे कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागै वा पापते न डरै, तिनका भला करनेके अर्थि ऐसा वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तो तब होय, जब धर्मका फलको पापका फल बतावै, पापका फलको धर्मका फल बतावै। सो तो है नाही। जैसै दश पुरुष मिलि कोई कार्य करै, तहाँ उपचारकरि एक पुरुष का भी किया कहिए तो दोष नाही अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताको एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिकका किया कहिए तो दोष नाही। तैसै बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका एक फल भया, ताको उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाही अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, ताको एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाही। उपदेशविषै कही व्यवहार वर्णन है, कही

निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसै याको प्रमाण कीजिए है। याको तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषै निरूपण किया है, सो जानना।

बहुरि प्रथमानुयोग विषै उपचाररूप कोई धर्मका अग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसै जिन जीवनिकै शका काक्षादिक न भए, तिन कै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषै शका काक्षा न किए ही तो सम्यक्त न होय, सम्यक्त तो तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तो व्यवहार सम्यक्त विषै उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्त के कोई एक अङ्गविषै सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसै उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अग जाने सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो सशयादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जाने जैनधर्म अगीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय, ताको श्रावक कहिए सो श्रावक तो पचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याको श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषै श्रेणिकको श्रावकोत्तम कह्या सो वह तो असयत था परन्तु जैनी था तातै कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिग धारै वा कोई द्रव्यौं भी अतिचार लगावता होय, ताकों मुनि कहिए। सो मुनि तो षष्टादि गुणस्थानवर्त्ती भए ही हो है परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषै मुनिनिकी सख्या कही, तहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिग धारनेतैं सबनिको मुनि कहे। ऐसैही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषै कोई धर्मबुद्धिते अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशसा करिये है। जैसे **विष्णुकुमार** मुनिनका उपसर्ग दूरि किया सो धर्मानुरागतें किया परन्तु मुनिपद छोडि यहु कार्य करना योग्य न था। जातै ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्मविषै सम्भवै अर गृहस्थ धर्मत मुनिधर्म ऊँचा है। सो ऊँचा धर्म छोडि नीचाधर्म अगीकार किया सो अयोग्य है परन्तु वात्सल्य अगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिको ऊँचा धर्मछोडि नीचाधर्म अगीकार करना योग्य नाही। बहुरि जैसें **गुवालिया** मुनिकों अग्नि करि तपाया सो करुणाते यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गको तो दूरि करै, सहज अवस्थाविषै जो शीतादिककी परीषह हो है, ताको दूर किए रति माननेका कारण होय, उनको रति करनी नाही, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीते विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाही। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातै याकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिको धर्मपद्धति-विषै जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाही। बहुरि जैसे **वज्रकरण** राजा **सिंहोदर** राजाको नम्या नाही, मुद्रिकाविषै प्रतिमा राखी। सो बड़े बडे सम्यग्दृष्टी राजादिककों नमै, याका दोष नाहीं अर मुद्रिका विषै प्रतिमा राखनेमें अविनय होय, यथावत् विधितें ऐसी प्रतिमा न होय, तातै इस कार्यविषै दोष है। परन्तु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतें मैं औरकों नमूँ नाही, ऐसी बुद्धि भई, तातै वाकी प्रशसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऐसे कार्य करने युक्त नाही। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थि चैत्या-

लय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया। सो ऐसें किए तो निकांक्षित गुण का अभाव होय, निदानबंध-नामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरंगविषै है, तातें पाप-हीका बंध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तो पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिको लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसें ही अन्यत्र जानने। ऐसें ही प्रथमानुयोगविषै अन्य कथन भी होय, ताको यथासंभव जानि भ्रम-रूप न होना।

अब करणानुयोगविषै किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिये है—

करणानुयोग में व्याख्यान का विधान

जैसें केवलज्ञानकरि जान्या तैसें करणानुयोगविषै व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तो बहुत जान्या परन्तु जीवको कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषै हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातै जैसें वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषै उनका किछू भाव भासै तैसैं संकोचन करि निरूपण करिए है। यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुण-स्थानक कहे, ते भाव अनन्तस्वरूप लिये वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषैं बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अडतालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषै अनेक रचना हैं, तहाँ मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि

प्रमाण के अनन्त भेद तहाँ सख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखडित हैं, तथापि छद्मस्थको हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषै जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनको एक जीवके निरूपै हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिये व्याख्यान जानना। जातै व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाही। बहुरि कही निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसें जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतने ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लेना।

बहुरि करणानुयोगविषै जे कथन हैं ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, बहुरि जे न होय तिनको आज्ञा प्रमाणकरि मानने। जैसें जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तो प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अश निरूपण किए ते आज्ञाहीतै प्रमाण हो हैं। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषै छद्मस्थनिकी प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया नाही, केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसें केई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करै हैं वा व्रतादिक पालै हैं परन्तु तिनकै अन्तरग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाही, तातै उनकों मिथ्यादृष्टि अव्रती

कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित हैं, अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातै उनको सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरग कषायशक्ति थोरी है, तो वाको मदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकै अन्त-रग कषायशक्ति घनी है, तो वाको तीव्रकषायी कहिए है। जैसे व्यन्त-रादिक देव कषायनिते नगर नाशादि कार्य करै, तो भी तिनकै थोरी कषायशक्तिते पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव कषायकार्य करते दीखै नाही, तिनकै बहुत कषायशक्तिते कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तै ,तिनकै बहुत कषाय-शक्तित असयम कह्या अर पचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषाय-कायरूप बहुत प्रवर्त्तै, तिनकै मन्दकषाय शक्तिते देशसयम कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तो भी कर्माकिर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तो भी शक्तिकी हीनताते स्तोक योग कह्या। जैसै केवली गमनादिक्रियारहित भया, तहाँ भी ताकै योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करै हैं, तो भी तिनकै योग स्तोक कहे। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कही जाकी व्यक्तता किछू न भासै, तो भी सूक्ष्मशक्तिके सद्भावतें ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसे मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाही, तो भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसज्ञा कही। अहमिद्रनिकै

दुःखका कारण व्यक्त नाही, तो भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुख का कारण व्यक्त नाही, तो भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसै पाइए तैसै गुणस्थानादिविषै निरूपण करै है वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोगके अनुसारि आप उद्यम करै तो होय सकै नाही। करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावनेका मुख्यप्रयोजन है, आचरण करावनेकी मुख्यता नाही। तातै यहु तो चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्त्तै, तिसतै जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसे आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै तो कैसै होय ? आप तो तत्वादिकका निश्चय करनेका उद्यम करै, तातै स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसै ही अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्त्तविषै ग्यारहवाँ गुणस्थानसो पडि क्रमतैं मिथ्यादृष्टी होय बहुरि चढिकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसै सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाही, तातै करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तो ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसै भला होय तैसै करै।

बहुरि करणानुयोगविषै भी कही उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताको सर्वथा तैसै ही न मानना। जैसै हिंसादिकका उपायकों कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास को कुश्रुतज्ञान कह्या, बुरा दीसै भला न दीसै ताकों विभंगज्ञान कह्या, सो इनकों छोडनेके

अर्थि उपदेशकरि ऐसै कह्या। तारतम्यतें मिथ्यादृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान हैं। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कही स्थूल कथन किया होय, ताकों तारतम्यरूप न जानना। जैसै व्यासतै तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपने किछू अधिक तिगुणी हो है। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताको सर्व प्रकार न जानना। जैसै मिथ्यादृष्टी सासादन गुण-स्थानवालेको पापजीव कहे, असयतादि गुणस्थानवालेको पुण्यजीव कहे सो मुख्यपने ऐसै कहे, तारतम्यतै दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाईए है। ऐसै ही अन्यत्र जानना। ऐसै ही और भी नाना प्रकार पाईए है, ते यथासम्भव जानने। ऐसैं करणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषै किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान

चरणानुयोगविषै जैसै जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आच-रण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है सोई है। ताके साधनादिक उपचारतें धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिक याविषैं निरूपण करिए है। जातै निश्चय धर्मविषैं तो किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाही अर याकै नीचली अवस्थाविषै विकल्प छूटता नाही, तातै इस जीवको धर्मविरोधी कार्यनिको छुडावनेका अर धर्मसाधनादि कार्य-निके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषै है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तो व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका

ज्ञान नाही है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मको सन्मुख भए तिनको व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तको सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनको निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातै श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असञ्ज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहणे योग्य नाही, तिनका तो उपकार इतना ही किया—और जीवनिको तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलताते निश्चयमोक्षमार्गको प्राप्त होय सकै नाही, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनको व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुडाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषै लगाया। जेता दुःख मिटचा, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तो पापवासना ही रहै अर कुगतिविषै जाय तहाँ धर्मका निमित्त नाही। तातै परम्पराय दुःखहीको पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषै जाय, तहाँ धर्म के निमित्त पाईए, तातै परम्पराय सुखको पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय तो मोक्षमार्गको भी प्राप्त होय जाय। तातै व्यवहार उपदेशकरि पापते छुडाय पुण्यकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गको प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनको निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषै प्रवर्ताए। श्रीगुरु तो सर्वका ऐसा ही उपकार करै। परन्तु जिन जीव-निका ऐसा उपकार न बनै तो श्रीगुरु कहा करै। जैसा बन्या तैसा ही

उपकार किया। तातै दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहाँ व्यवहार उपदेशविषै तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है। तिनका उपदेशतै जीव पापक्रिया छोडि पुण्यक्रियानिविषै प्रवर्त्तै। तहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोडि किछू मदकषायी होय जाय। सो मुख्य-पने तो ऐसै है। बहुरि काहूके न होय तो मति होहु। श्रीगुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिको उपदेशै हैं। बहुरि निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेशविषै परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतै तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहाँ परिणामके अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया सुधरै ही सुधरै। तातै श्रीगुरु परिणाम सुधारनेको मुख्य उपदेशै हैं। ऐसै दोय प्रकार उपदेशविषै जहा व्यव-हारही का उपदेश होय तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहत देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दया धर्मको ही मानना, औरको न मानना। बहुरि जीवादिक तत्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शकादि पच्चीस दोष न लगावने, निशकितादिक अग वा सवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यजनादि अगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अगनिको पालने, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवको विशेष धर्मका साधन न होता जानि एक आखडी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसै भीलको कागलाका मास छुडाया, गुवालियाको नमस्कार मन्त्र जपने

का उपदेश दिया, गृहस्थको चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है, इत्यादि जैसा जीव होय नाको तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराईए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषै रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतै अरहतादि बिना अन्य देवादिक झूठ भासै तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि सशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसे ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेको कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातै तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततै होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मदरागतै श्रावकमुनिके व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसै यथार्थ कोई आखडी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो है वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषै साचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसैं दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषै जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै तीव्रकषायनिका कार्य छुडाय मंदकषाय रूप कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहाँ जानना। जैसे जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनको पूजा प्रभावनादिक करनेका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगे शोभादिक नृत्य गानादिकरनेका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातै इनिविषै परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषै परम्परा कषायपोषण हो है, तातै पापकार्यनिते छुडाय इन कार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानै, तितना पापकार्य छुडाय सम्यक्त्व वा अणुव्रतादि पालनेका तिनको उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरम्भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनको पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुडाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनको दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करने का उपदेश दीजिए है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहाँ किछू करने का कार्य ही रह्या नाही। तातै तिनको किछू उपदेश ही नाही। ऐसें क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै कषायी जीवनिको कषाय उपजायकरि भी पापकों छुडाईए है अर धर्मविषै लगाईए है। जैसें पापका फल नरकादिकके दु:ख दिखाय तिनिको भय कषाय उपजाय पापकार्य

छुडाईए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनको लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषै लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागते पाप करै है, धर्म पराङ मुख रहै है, तातै इन्द्रियविषयनिको मरण कलेशादिकके कारण दिखावने-करि तिनविषै अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिकको अशुचि दिखावनेकरि तहाँ जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिकको धनादिकके ग्राहक दिखाय तहाँ द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिकको मरण क्लेशा-दिकका कारण दिखाय तहाँ अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपाय-ते विषयादिविषै तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्म विषै प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-कारण पूजा दान शीला-दिकतै इस लोकविषै दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है, पुत्रधनादिकको प्राप्ति हो है, ऐसै निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्य-निविषै लगाईए है। ऐसै ही अन्य उदाहरण जानने।

यहाँ प्रश्न—जो कोई कषाय छुडाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा?

ताका समाधान—जैसै रोग तो शीताग भी है अर ज्वर भी है परन्तु कोईकै शीतागते मरण होता जानै, तहाँ वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै, ज्वर भए पीछे वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछे ज्वर के भी मेटनेका उपाय करै। तैसै कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु केई जीवनिकै कषायनिते पापकार्य होता जानै, तहाँ श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यको कारणभूत कषाय होनेका उपाय करै, पीछे वाकै साची धर्मबुद्धि भई जानै, तब पीछे तिस कषाय मेटनेका उपाय करै, ऐसा प्रयोजन जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै जैसे जीव पाप छोडि धर्मविषै लागैं, तैसे अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहाँ लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाईए है वा कहीं अन्य-मतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसे **सूक्तमुक्तावली** विषै लक्ष्मीको कमलावासिनी कही वा समुद्रविषै विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसे ही अन्यत्र कहिए है। तहाँ केई उदाहरणादि झूठे भी हैं परन्तु साँचा प्रयोजनको पोषै हैं। तातै दोष नाही।

यहाँ काऊ कहै कि झूठका तो दोष लागै। ताका उत्तर—जो झूठ भी है अर साचा प्रयोजनको पोषै तो वाको झूठ न कहिए। बहुरि साच भी है अर झूठा प्रयोजनको पोषै तो वह झूठा ही है। अलंकारयुक्ति नामादिकविषै वचन अपेक्षा झूठ साच नाही, प्रयोजन अपेक्षा झूठ साच है। जैसे तुच्छशोभासहित नगरीको इन्द्रपुरीके समान कहिए है सो झूठ है परन्तु शोभाका प्रयोजनको पोषै है तातै झूठ नाही। बहुरि "इस नगरीविषै छत्रहीकै दंड है, अन्यत्र नाही" ऐसा कह्या, सो झूठ है। अन्यत्र भी दंड देना पाईए है परन्तु तहाँ अन्यायवान् थोरे हैं, न्यायवानको दण्ड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनको पोषै है, तातै झूठ नाही। बहुरि बृहस्पतिका नाम 'सुर-गुरु' लिखै वा मंगलका नाम 'कुज' लिखै, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थका अर्थ प्रगट करै है, तातै झूठ नाही। ऐसे अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिए है सो झूठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका तो

श्रद्धान करावना है नाही, श्रद्धान तो प्रयोजनका करावना है। सो प्रयोजन साचा है, तातै दोष नाही है।

बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातै तिसका आचरण न होय सकै। यहाँ आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसै अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि क्रियानिविषै त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है—जिनवानी विषै यहाँ त्रस कहे हैं परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाही अर लोकविषै जाका नाम त्रसघात है, ताको करै नाही। तातै तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहाँ सर्वथा त्रसका भी अभाव नाही। जातै त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषै ही है। सो मुनि जिनवानीतै जानै हैं वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै हैं परन्तु याकै प्रमादतै स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाही। बहुरि लोकविषै भूमि खोदना अप्रासुक जलतै क्रिया करनी इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है अर स्थूल त्रसनिकै पीडनेका नाम त्रस हिंसा है, ताको न करै। तातै मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसै ही अनृत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवाँ गुणस्थान पर्यन्त कह्या। अदत्तकर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवाँ गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरंगपरिग्रह

दसवाँ गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है परन्तु प्रमादतें पापरूप अभिप्राय नाही अर लोकप्रवृत्तिविषै जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावै, वे क्रिया इनकै हैं नाही। तातै अनृतादिकका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जैसे मुनिकै मूलगुणनिविषै पचइन्द्रिय-निकै विषयका त्याग कह्या सो जानना तो इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अरविषइनिविषै रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय तो यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाही परन्तु स्थूलपनैं विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातै याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिके अनुसारि त्याग करै है। जैसै काहूने त्रस-हिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषै वा लोकविषै जाको त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादिकरि जे त्रस देखिए हैं, तिनिकी हिंसाका त्याग बनै ही नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसा-का त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसे अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए ही हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषै तो केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमैं सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसे कह्या ?

ताका उत्तर— अविरति भी योगकषायविषै गर्भित थे परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरति कह्या है। तातैं तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावतै मनअविरतिका अभाव कह्या है, ऐसा जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषै व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसै सम्यक्तवीको पात्र कह्या, मिथ्यात्वीको अपात्र कह्या। सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाईए सो तो सम्यक्त्वी, जाकै तिनका श्रद्धान नाही सो मिथ्यात्वी जानना। जातै दान देना चरणानुयोगविषै कह्या है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करने। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहे वो ही जीव ग्यारवे गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्तमे पहिले गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसे निर्णय करि सकै? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहे मुनि सघविषै द्रव्यलिगी भी हैं, भावलिगी भी हैं। सो प्रथम तो तिनका ठीक होना कठिन है, जातै बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीको कोई चिन्हकरि ठीक पडै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै सशय होय, याकी भक्ति क्यो न करी। ऐसै वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब सघविषै विरोध उपजै। तातै यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तो द्रव्यलिगीको आपतै हीनगुणयुक्त मानै है, ताकी भक्ति कैसे करै?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातै जैसे कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषै बडा होय ताको कुल अपेक्षा बडा जानि ताका सत्कार करें, तैसे आप सम्यक्तगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषै प्रधान होय ताको व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है, ऐसा जानना। बहुरि ऐसै ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताको तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि इहा चरणानुयोगविषै बाह्यतपहीकी प्रधानता है। तातै तिसहीको तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसै ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषै व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषै कहिए है—

द्रव्यानुयोग मे व्याख्यान का विधान

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसे होय, तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण कीजिए है। जातै या विषै यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है। तहा यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है तथापि तिनविषै भेदकल्पनाकरि व्यवहारतै द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है। बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेको हेतु दृष्टातादिक दीजिए है। ऐसै तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेको उपदेश दीजिए है। बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्वनिका विशेष युक्ति हेतु दृष्टातादिकरि निरूपण

कीजिए है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसे होय तैसे जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसे होय तैसे आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहाँ मुख्यपने ज्ञान वैराग्यको कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषै निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहाँ व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायको न करै हैं अर बाह्य क्रियाकाडविषै मग्न हैं, तिनको तहाँते उदासकरि आत्मानुभवनादिविषै लगावनेको व्रत शील सयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनको छोडिपापविषै लगना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषै लगावनेका नाही है। शुद्धोपयोगविषै लगावनेको शुभोपयोगका निषध कीजिए है।

यहाँ कोऊ कहै कि अध्यात्म-शास्त्रनिविषै पुण्य पाप समान कहे हैं, तातै शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तो पुण्यविषै लगो वा पापविषै लगो।

ताका उत्तर—जैसै शूद्रजातिअपेक्षा जाट चाडाल समान कहे परन्तु चाडालते जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तसै बन्धकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापते पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मदकषायरूप है। ताते पुण्य छोडि पापविषै लगना युक्त नाही, ऐमा जानना।

बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषै ही मग्न हैं, तिनकों आत्मश्रद्धानादि करावनेको "देहविषै देव है, देहराविषै नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति

छुडाय भोजनादिकते आपको सुखी करना। जाते तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाही है। ऐसे ही अन्य व्यवहारका निषेध तहाँ किया होय, ताको जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना– जे केवल व्यवहार साधनविषै ही मग्न हैं, तिनको निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारको हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषै सम्यग्दृष्टी-के विषय भोगादिकको बधका कारण न कह्या, निर्जराका कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टी-की महिमा दिखावनेको जे तीव्रबधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिकको होतेसते भी श्रद्धानशक्तिके बलतें मन्दबध होने लगा, ताको गिन्या नाही अर तिसही बलते निर्जरा विशेष होने लगी, तातै उपचारतै भोगनिको भी बधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्जराके कारण होय, तो तिनको छोडि सम्यग्दष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेको करै? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलते भोग भी अपने गणको न करि सकै हैं। याही प्रकार और भी कथन होय तो ताका यथार्थपना जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातै छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषै तो बाह्य-क्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषै आत्मपरिणाम-निकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए हैं.—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसे तीन भेद कहे। तहां धर्मानुरागरूप

परिणाम सो शुभोपयोग अर पापानुरागरूप वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसैं कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषै कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषै सक्लेश विशुद्ध परिणाम अपेक्षा निरूपण किया है सो विवक्षा यहाँ नाही है। करणानुयोगविषै तो रागादिरहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशत स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोगका साधन कैसैं करै। अर द्रव्यानुयोगविषै शुद्धोपयोग करने-ही का मुख्य उपदेश है, तातैं यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषै बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिसा आदि कार्यरूप परिणामनिको छुडाय आत्मानु-भवनादि कार्यनिविषै प्रवर्त्तैं, तिस काल ताको शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताकी विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडै तिस अपेक्षा याको शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसैं ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुण-स्थानादिविषै सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषै पाईए है। ऐसैं ही अन्यत्र जानने। तातैं द्रव्यानुयोगके कथनकी करणानुयोगतै विधि मिलाया चाहै सो कही तो मिलै, कही न मिलै। जैसैं यथाख्यातचारित्र भए तो दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषै द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतै शुद्धोपयोग नाही। ऐसैं ही अन्य कथन जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषै परमतविषै कहे तत्वादिक तिनको असत्य दिखावने के अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनको असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना। ऐसैं ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषै व्याख्यानका विधान है। या प्रकार च्यारो अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषै एक अनुयोगकी, कोई विषै दोयकी, कोई विषै तीन को, कोई विषै च्यारोकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहाँ जैसा सम्भवै, तहाँ तैसा समझ लेना।

अब इन अनुयोगनिविषै कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाईए है, सो कहिए है—

चारों अनुयोगोंमें व्याख्यान की पद्धति

प्रथमानुयोगविषै तो अलकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै अलकारादिकतै मन रजायमान होय, सूधी बात कहैं ऐसा उपयोग लागै नाही जैसा अलकारादि युक्ति सहित कथनतै उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातको किछू अधिकताकरि निरूपण करिए तो वाका स्वरूप नीके भासै। बहुरि करणानुयोगविषै गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायतै ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानुयोगविषै सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह

आचरण करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषै न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातै यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषै निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसै इन अनुयोगनिविषै पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धित लिए व्याख्यान इनविषै पाईए है।

यहाँ कोऊ कहै—अलकार गणित नीति न्यायका तो ज्ञान पडित-निकै होय, तुच्छबुद्धि समझै नाही तातै सूधा कथन क्यो न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपने पडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलकारादि आम्नाय लिए कथन होय तो तिनका मन लागे। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनको पडित समझाय दे अर जे न समझि सकै, तो तिनको मुखतै सूधा ही कथन कहैं। परन्तु ग्रन्थनिविषै सूधा कथन लिखे विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषै विशेष न प्रवर्तै। तातै अलकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसै इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषै घने शास्त्र तो इन च्यारो अनुयोगनिविषै गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषै पाईए हैं। तिनका कहा प्रयोजन है सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातै व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै—भाषारूप सूधा निरूपण करते तो व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तो अपभ्रशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश

विषैं और और है। सो महत पुरुष शास्त्रनिविषै ऐसी रचना कैसै करैं। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषै होय सकै नाही। तातै व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारते जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिक ते उपकार भी बनै। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषै अनुरक्त हैं ते वद्यकादिक चमत्कारते जैनी होय पीछे साँचा धर्म पाय अपना कल्याण करै। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहाँ इतना है—ए भी जिनशास्त्र हैं, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषै बहुत लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धिते इनिका सहज जानना होय अर इनिको जाने आपकै रागादिक विकार बधते न जानै, तो इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। तातै इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसै है तो गणधरादिक इनकी रचना काहेको करी ?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसै बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै तो धन तो तहाँ लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेते करै। तैसै बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषै लगै तो बुद्धि

तो तहाँ लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसै करै ? बहुरि जैसैं मदरागी तो पुराणादिविषै शृङ्गारादि निरूपण करै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसे शृङ्गारादि निरूप तो पाप ही बाँधै। तैसै मदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषै लगि जाय तो रागादिक बधाय पापकर्मको बाँधै, ऐसै जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अब इनविषै दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण कीजिए है—

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पनाका निराकरण

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषै शृङ्गारादिकका वा सग्रामादिकका बहुत कथन करे, तिनके निमित्ततै रागादिक बधि जाय, तातै ऐसा कथन न करना था वा ऐसा कथन सुनना नाही। ताको कहिए है--कथा कहनी होय तब तो सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलकारादिकरि बधाय कथन करै हैं सो पडितनिके बचन युक्ति लिए ही निकसै।

अर जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेको किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनको बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाही। बहुरि पहलै तो भोग सग्रामादि ऐसे किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततै रागादिक बधि जाय।

सो जैसैं कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तो प्रयोजन तहाँ धर्मकार्य करावनेका है अर कोई पापी तहाँ पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावनेवालेका तो दोष नाही। तैसे श्रीगुरु पुराणादिविषै शृङ्गारादि वर्णन किए, तहाँ उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तो है नाही, धर्मविषै लगावनेका प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तो श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै—जो रागादिकका निमित्त होय सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषै लागै नाही। तातै जैसैं बालकको पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसैं सरागीको भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषै रुचि कराईए है।

बहुरि तू कहेगा—ऐसै है तो विरागी पुरुषनिको तो ऐसे ग्रथनिका अभ्यास करना युक्त नाही।

ताका उत्तर यहु है—जिनकै अन्तरगविषै रागभाव नाही, तिनकै शृङ्गारादि कथन सुने रागादि उपजै ही नाही। यहु जानै ऐसैं ही यहाँ कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुने रागादि होय आवै, तिनको तो वैसा कथन सुनना योग्य नाही।

ताका उत्तर यहु है—जहाँ धर्महीका तो प्रयोजन अर जहाँ तहाँ धर्मको पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषै प्रसग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताको सुने भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहाँ

विरागी होसी, पुराण सुनना छोडि और कार्य भी ऐसा ही करेगा जहाँ बहुत रागादि होय। तातैं वाकै भी पुराण सुने थोरी बहुत धर्म-बुद्धि होय तो होय। और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषै अन्य जीवनिकी कहानी है, तातै अपना कहा प्रयोजन सधै है ?

ताको कहिए है—जैसैं कामीपुरुषनिकी कथा सुने आपकै भी काम का प्रेम बधै है, तैसैं धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुने आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

करणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—करणानुयोगविषैं गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनको जानि लिया 'यहु ऐसैं है' 'यहु ऐसें है', यामे अपना कार्य कहा सिद्ध भया ? कै तो भक्ति करिए, कै व्रत दानादिकरिए, कैं आत्मानुभवन करिए, इनतें अपना भला होय।

ताको कहिए है--परमेश्वर तो वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाही। भक्ति करतें मदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषै तिसतें भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तो कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहाँ उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होय, सो यहु अतरग निमित्तका साधन है। तातें यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषै उपयोग

थम्भै नाही अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका अभ्यास होय तो तिस विचारविषै उपयोगको लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातै यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार करि भेद जानै, तिनविषै रागादिकरनेका प्रयोजन नाही, तातै रागादि बधै नाही। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ तहाँ प्रगटै है, तातै रागादि मिटावनेको कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे तिनमे कहा सिद्धि है ?

ताका उत्तर—तिनको जाने किछू तिनविषै इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातै पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है—ऐसै है तो जिसते किछू प्रयोजन नाही ऐसा पाषाणादिकको भी जानै तहाँ इष्ट अनिष्टपनो न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूको जानने का उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय तो अतरग रागादिकका अभिप्रायके वशकरि तहाँते उपयोगको छुडाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिकको जानै है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटे ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषै इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय तो रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषै इस लोकसम्बन्धी कार्य किछू नाही तातै रागादिकका कारण नाही। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहाँ राग होय तो

परलोकसम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यको जानै तब पाप छोडि पुण्यविषै प्रवर्त्तै, इतना ही नफा होय। बहुरि दीपादिकके जाने यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटै उपयोगकी निर्मलता होय, तातै यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषै कठिनता घनी, तातै ताका अभ्यासविषै खेद होय।

ताको कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमे आवै, तहाँ उपयोग उलझै नाही अर जानी वस्तुको बारम्बार जानने का उत्साह होय नाही, तब पापकार्यनिविषै उपयोग लगि जाय। तातै अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानै ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाही, ताका कैसे करै ? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमे तो धर्म है नाही। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहाँ तो पाप ही होय। तातै धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

चरणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव ऐसै कहै हैं—चरणानुयोगविषै बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितै किछु सिद्धि नाही। अपने परिणाम निर्मल चाहिए, बाह्य चाहो जैसै प्रवर्त्तो। तातै इस उपदेशतै पराङ्मुख रहै हैं।

तिनको कहिए हैं—आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातै छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो हैं। कदाचित् बिना परिणाम कोई क्रिया हो है, सो परवशतै हो है। अपने वशतै उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस

रूप नाही है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातै परिणाम मेटनेके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषै कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटे बाह्य ऐसे अनुक्रमते श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसे श्रावक मुनिधर्म अगीकार किए पचम षष्ठमआदि गुणस्थाननिविषै रागादि घटनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोग-विषै किया। बहुरि जो बाह्य सयमते किछू सिद्धि न होय, तो सर्वार्थ-सिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तो चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थकरादिक गृहस्थपद छोडि काहेको सयम ग्रहैं। तातै यहु नियम है—बाह्य सयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै हैं। तातै बाह्य साधनका विधान जाननेको चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

द्रव्यानुयोग मे दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषै व्रत सयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगा-दिकको निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वछन्द होय पुण्य छोडि पापविषै प्रवर्त्तै, तातै इनिका वाचना सुनना युक्त नाही। ताको कहिए है—जैसै गर्दभ मिश्री खाए मरै, तो मनुष्य तो मिश्री खाना न छोडै। तैसै विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वछन्द होय, तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाको स्वछन्द होता जानै, ताकों जैसें वह

स्वच्छन्द न होय, तैसे उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषै भी स्वच्छन्द होनेका जहाँ तहाँ निषेध कीजिए है, तातै जो नीके तिनको सुनैं, सो तो स्वछन्द होता नाही। अर एक बात सुनि अपने अभिप्रायतै कोऊ स्वच्छन्द होसी, तो ग्रन्थका तो दोष है नाही, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्मशास्त्रका बाँचना सुनना निषेधिए तो मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहाँ ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसै मेघवर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पडै, तो तिसकी मुख्यताकरि मेघका तो निषेध न करना। तैसें सभाविषै अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिको मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूक उलटा पाप प्रवर्त्तै, तो तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनिका तो निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितै कोऊ स्वच्छन्द होय सो तो पहलै भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पडै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भए बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामे घने जीवनिका घना बुरा होय। तातै अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊँची दशाको प्राप्त होय, तिनको कार्यकारी है। नीचली दशावालोको तो व्रत सयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है।

ताकों कहिए है–जिनमतविषै तो यहु परिपाटी है, जो पहलै सम्यक्त होय पीछे व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय अर सो

श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातैं पहलै द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टि होय, पीछे चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि वृती होय। ऐसैं मुख्यपनै तो नीचली दशाविषै ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपनै जाको मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिए, ताको पहलै कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातै ऊँची दशावालोको अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालो को तहाँतैं पराङ्मुख होना योग्य नाही।

बहुरि जो कहोगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालोको भासै नाही।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानै अर यहाँ मूरखपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाही। अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेको पोषिए, सो तो जिनमार्गका द्वेषी होना है।

बहुरि जो कहोगे, अबार काल निकृष्ट है, तातै उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेशकी मुख्यता न करनी।

ताको कहिए है—अबार काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मन नाही। तातै आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुडविषै (मोक्षपाहुडमे) कह्या है—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं यत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

याका अर्थ—अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकों ध्यायकरि

सुरलोकविषै प्राप्त हो है वा लौकान्तिकविषै देवपणो पावै हैं। तहाँ तें च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि[1] तातैं इस कालविषै भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए।

बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषै अध्यात्मशास्त्र है, तहाँ स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया सो तो कार्यकारी भी घना अर समझिमे भी शीघ्र आव परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा प्रमाण नय आदिक का वा अन्यमतके कहे तत्वादिकके निराकरणका कथन किया, सो तिनिका अभ्यासते विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमे आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनिको कहिए है—

सामान्य जाननेते विशेष जानना बलवान् है। ज्यो-ज्यो विशेष जानै त्यो-त्यो वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ होय, रागादि घटै तातै तिस अभ्यासविषै प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसै च्यारो अनुयोगनिविषै दोषकल्पनाकरि अभ्यासतैं पराङमुख होना योग्य नाही।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र है, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातै इनिका ज्ञान बिना बडे शास्त्रनिका अर्थ भासै नाही। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानै जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाही। तातै परम्परा कार्यकारी जानि इन का भी अभ्यास करना परन्तु इनहीविषै फसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषै प्रवर्त्तना। बहुरि

1. यहाँ 'बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति मे छोडा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे किन्तु लिख नही सके।

बैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतें मोक्षमार्गविषै किछू प्रयोजन ही नाही। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतें बिनाखेद इनका अभ्यास होय जाय तो उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तो मत होहु, किछू बिगार नाही। ऐसैं जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अपेक्षा ज्ञान के अभाव से आगम मे दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण।

अब शास्त्रनिविषैं अपेक्षादिकको न जाने परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहाँ जैसैं कथन किया होय, तहाँ तेसैं जानि लेना। और अनुयोग का कथनको और अनुयोगका कथनतें अन्यथा जानि सन्देह न करना। जैसैं कहीं तो निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकें शका काक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कहीं भय का आठवाँ गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका आठवाँ पर्यन्त उदय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शकादिकका सम्यग्दृष्टीकैं अभाव भया अथवा मुख्यपने सम्यग्दृष्टी शकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषै शकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाईए है। तातैं करणानुयोगविषै तहाँ पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसैं ही अन्यत्र जानना। पूर्वें अनुयोगनिका उपदेशविधानविषैं कई उदाहरण कहे हैं, ते जानने अथवा अपनी बुद्धितै समझि लेने।

बहुरि एक ही अनुयोगविषै विवक्षाके वशतें अनेकरूप कथन करिए है। जैसैं करणानुयोगविषै प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं

अभाव कह्या, तहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे। बहुरि तहाँ ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै यहाँ प्रमादनिविषै तो जे शुभ अशुभ भावनि का अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषै ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातै तिनिका तहाँ अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है।

बहुरि चरणानुयोगविषै चोरी परस्त्री आदि सप्त व्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषै कह्या, बहुरि तहाँ ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमाविषै कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सप्तव्यसनविषै तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे हैं, जिनकरि दडादिक पावै, लोकविषै अतिनिन्दा होय। बहुरि व्रतनिविषै चोरी आदि का त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिंद्य होय, ऐसा अर्थ जानना। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षते एकही भावको अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसै कही तो महाव्रतादिक चारित्रके भेद कहे, कही महाव्रतादि होते भी द्रव्यलिगीको असयमी कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तो चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असयमी ही है।

बहुरि जैसै पच मिथ्यात्वनिविषै भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषै भी विनय कह्या, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करने योग्य नाही तिनका भी विनय करि धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है अर धर्म पद्धतिकरि जे विनय करने

योग्य हैं, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसैं कही तो अभिमानकी निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै मानकषायते आपको ऊँचा मनावनेके अर्थि विनयादि न करैं, सो अभिमान तो निंद्य ही है अर निर्लोभपनाते दीनता आदि न करैं, सो अभिमान प्रशसा योग्य है।

बहुरि जैसै कही चतुराई की निन्दा करी, कही प्रशसा करी, तहाँ विरुद्ध न जानना। जातै मायाकषायते काहूका ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तो निंद्य ही है अर विवेक लिए यथासम्भव कार्य करनेविषै जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि एक ही भावकी कही तो तिसते उत्कृष्ट भावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय अर कही तिसते हीनभावकी अपेक्षकरि प्रशंसा करी होय, तहाँ विरुद्ध न जानना। जैसे किसी शुभक्रियाकी जहाँ निन्दा करी होय, तहाँ तो तिसते ऊँची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहाँ प्रशसा करी होय, तहाँ तिसते नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसै ही काहू जीवकी ऊँचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहाँ सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशसा करी होय, तो सर्वथा प्रशसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लेना, ऐसै ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना।

बहुरि शास्त्रविषै एक ही शब्दका कही तो कोई अर्थ हो है, कही कोई अर्थ हो है, तहाँ प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना।

जैसै मोक्षमार्गविषै सम्यग्दर्शन कह्या तहाँ दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रियवर्णनविषै दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखने मात्र है। बहुरि जैसै सूक्ष्म बादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषै छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बडा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कधादिका कथनविषै इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषै ऋद्धि आदिका निमित्त विना स्वयमेव रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषै महीन का नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। [करणानुयोगके कथनविषै पुद्गल-स्कधके निमित्तते रुकै नाही ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है]। बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषै तो इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषै स्पष्ट प्रति-भासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषै आपविषै अवस्था होय ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसै मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञानका अभावते न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावते अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसै उदीरणा शब्दका अर्थ जहाँ देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तो अन्य निमित्तते मरण होय ताका नाम उदीरणा है अर दश करणनिका कथनविषै उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या, तहाँ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषै दीजिए ताका नाम उदी-

रणा है। ऐसे ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़े अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना। जैसे 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषै कर्मशत्रुको जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दको पूर्वे जोडे जो अर्थ होय सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसे 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहाँ जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहा तो इन्द्रियादि प्राणधारै सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तहाँ चैतन्यप्राणको धारै सो जीव है। बहुरि जैसे समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहाँ आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र काल का नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसे अनेक अर्थनिविषै जैसा जहा सम्भवै तैसा तहाँ अर्थ जानि लेना। बहुरि कही तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कही रूढि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहाँ रूढि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढिवाद अर्थ होय सो ही ग्रहण करना। जैसे सम्यक्तादिकको धर्म कह्या तहाँ तो यहु जीवको उत्तमस्थानविषै धारै है, तातै याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या तहाँ रूढि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना। बहुरि कही जो शब्दका अर्थ होता होई सो तो न ग्रहण करना अर तहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना।

जैसे कही किसीका अभाव कह्या होय अर तहाँ किंचित् सद्भाव पाईए, तो तहाँ सर्वथा अभाव ग्रहण करना। किंचित् सद्भावको न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहाँ ऐसैं अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तो यहु—'कषायका निषेध' सो तो अर्थ न ग्रहण करना अर यहाँ क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाही, किंचित् कषाय हैं तातै नोकषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। एसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसै कही कोई युक्तिकरि किया होय, तहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलशा**विषै[1] यहु कहा—"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिको न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहाँ यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होते ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषै काहूके आवते ही कोई कार्य भया होय, तहाँ ऐसै कहिए—"जो यहु आया ही नाही अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहाँ प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसै कही प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहाँ न मानि लेना, तहाँ प्रयोजन होय सो जानना। **ज्ञानार्णवविषै** ऐसा कह्या है—"अबार दोय तीन सत्पुरुष हैं[2]।" सो नियमते इतने ही नाही। यहाँ

---

1. अवतरति न याव्द्वृत्ति मत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि ।
   झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥
   (जीवाजीव अ० कलशा २९)

2 दु प्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्यामया ।
   विद्यन्ते प्रतिमन्दिर निजनिजस्वार्थोद्यता देहिन ॥

'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिए और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनको यथासम्भव जानने। विपरीत अर्थ न जानना।

बहुरि जो उपदेश होय, ताको यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय ताका अंगीकार करना। जैसै वैद्यकशास्त्रनिविषै अनेक औषधि कही हैं, तिनको जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तो उष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै, यहु औषधि औरनिको कार्यकारी है, ऐसा जानै। तैसै जैनशास्त्रनि विषै अनेक उपदेश हैं, तिनको जानै अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकों ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशको न ग्रहै। यहु उपदेश औरनिको कार्य-कारी है, ऐसा जानै। यहाँ उदाहरण कहिए है—जैसे शास्त्रविषै कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है। तहाँ आपकै व्यवहार का आधिक्य होय तो निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय तो व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै। बहुरि पूर्वै तो व्यवहार श्रद्धानतै आत्मज्ञानतै भ्रष्ट होय रह्या था, पीछे व्यवहार उपदेशही-की मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वै तो निश्चय-श्रद्धानतै वैराग्यतै भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछे निश्चय

आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वर
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षण परास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥२४॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसै विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसै **आत्मानुशासनविषै** ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय दोष क्यो लगावै है। दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यो न भया[1]।" सो जो जीव आप तो गुणवान् होय अर कोई दोष लगता होय तहाँ तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशको अंगीकार करना। बहुरि आप तो दोषवान् है अर इस उपदेशका ग्रहनकरि गुणवान् पुरुषनिकों नीचा दिखावै तो बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतै तो किंचित् दोषरूप होना बुरा नाही है तातै तुझतै तो वह भला है। बहुरि यहाँ यहु कह्या। "तू दोषमय ही क्यो न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाही है। बहुरि जो गुणवानकै किंचित् दोष भए भी निन्दा है तो सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषै तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहाँ कोऊ कहै—ऐसै है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह राखै तो भी निगोद जाय[2]" ऐसा षट्पाहुड विषै कैसै कह्या है ?

---

1. हे चन्द्रम किमितिलाञ्छनवानभूस्त्वं
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥ १४१ ॥

2. जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥ १८ ॥
(सूत्रपाहुड)

ताका उत्तर—ऊँची पदवी धारि तिस पदविषै न सम्भवता नीचा कार्य करै तो प्रतिज्ञा भगादि होनेतै महादोष लागै है अर नीची पदवीविषै तहाँ सम्भवता गुणदोष होय तो होय, तहाँ वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाही ऐसा जानना।

बहुरि **उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषै** कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भडार है [1]।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाही। इस उपदेशतै वक्ता क्रोध किया करै तो वाका बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी साचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही मानै। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसै काहूकै अतिशीताग रोग होय, ताके अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं, तिस औषधि को जाकै दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो ग्रहण करै तो दुःख ही पावै। तैसै काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता हाय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खीचकरि उपदेश दिया होय, ताको जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तो बुरा ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसै काहूकै शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाही, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाही वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतै शास्त्राभ्यास छोडै अर आत्मानुभवविषै उपयोग रहै नाही, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसै काहूकै यज्ञ स्नानादिककरि हिंसातै धर्म माननेकी मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै तो भी हिंसा

---

1 रोमोवि खमाकोमो सुत्तं भासत जस्सणधणस्य।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥१४॥

किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावें अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतें पूजनादि कार्य छोड़ें अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषै उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितें हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटे भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै तो उल्टा रोग होय। तैसें कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतें हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊँची दशा होतें नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषै लागै तो उल्टा विकार ही होय। यहाँ उदाहरण—जैसें पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतें प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै तो उल्टा विकार बधै, याहीतें **समयसार** विषै प्रतिक्रमणादिकको विष कह्या है। बहुरि जैसें अव्रती-के करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनको व्रती होयकरि करै तो पाप ही बाँधै। व्यापारादि आरम्भ छोडि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय सो कैसें बनै? ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तो महादोष उपजै। तैसें ऊँचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूरि न होय अर ऊँचा धर्म ग्रहै तो महादोष उपजै। यहाँ उदाहरण—जसें अपना अशुभविकार भी न छूटया अर निर्विकल्प दशाको अंगीकार करै तो उल्टा विकार बधै। बहुरि

जैसे भोजनादि विषयनिविषै आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मको अंगीकार करै तो दोष ही उपजै। बहुरि जैसे व्यापारादि करनेका विकार तो न छूटै अर त्यागका भेषरूप धर्म अंगीकार करै तो महादोष उपजै। ऐसै ही अन्यत्र जानना।

याही प्रकार और भी साँचा विचारतै उपेदेशको यथार्थ जानि अंगीकार करना। बहुत विस्तार कहाँ ताईं कहिए। अपने सम्यग्ज्ञान भए आपहीको यथार्थ भासै। उपदेश तो वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाही। तातै उपदेश तो एक ही अर्थकी मुख्यता लिए हो है। बहुरि जिस अर्थका जहाँ वर्णन है, तहाँ तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहाँ ही मुख्यता करै तो दोऊ उपदेश दृढ न होय। तातै उपदेशविषै एक अर्थको दृढ करै। परन्तु सर्व जिनमतका चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथंचित्' है। तातै जो उपदेश होय ताको सर्वथा न जानि लेना। उपदेशका अर्थको जानि तहाँ इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवको कार्यकारी है? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछे अपनी दशा देखै, जो उपदेश जैसे आपको कार्यकारी होय तिसको तैसे आप अंगीकार करै अर जो उपदेश जानने योग्य ही होय तो ताको यथार्थ जानि लै। ऐसे उपदेश के फलको पावै।

यहाँ कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै सो कहा करै?

ताका उत्तर—जैसे व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें

समझै सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफा टोटाका ज्ञान ता अवश्य चाहिए। तैसै विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमे समझै सो थोरा वा बहुत उपदेशको ग्रहै परन्तु मुझको यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाही—इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तो इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपने सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तो प्रयोजनको तो भूलै नाही, यहु तो सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमे अपना हितकी हानि होय, तैसै उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाही। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहाँ कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य अन्य प्रकार सम्भवै, तहाँ तो स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिए? जैसै प्रथमानुयोगविषै एक तीर्थंकरकी साथि हजारो मुक्ति गए बताए। करणानुयोगविषै छह महीना आठ समयविषै छहसै आठ जीव मुक्ति जाय—ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषै ऐसा कथन किया—देव देवांगना उपजि पीछे मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषै उपजै। करणानुयोगविषै देवका सागरो प्रमाण देवागनाका पल्यो प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसै मिलै?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषै कथन है, सो तो तारतम्य लिए है। अन्य अनुयोगविषैकथन प्रयोजन अनुसार है। तातै करणानुयोगका कथन तो जैसै किया है तैसै ही है। औरनिका कथनकी जैसै विधि मिलै, तैसै मिलाय लेनी। हजारो मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए

बताए, तहाँ यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाही। जहाँ तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहाँ तिनकी साथ इतनें मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे पीछे गए। ऐसें प्रथमानुयोग करणानुयोगका विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजै, पीछे देवांगना चयकरि बीचमें अन्य पर्याय धरै, तिनका प्रयोजन न जानि कथन न किया। पीछे वह साथि मनुष्य पर्यायविषै उपजै, ऐसें विधि मिलाए विरोध दूरि हो है। ऐसें ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसें कथननिविषै भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कही नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषै कही द्वारावतीविषै जन्म कह्या, रामचन्द्रादिककी कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी इत्यादि। एकेन्द्रियादिक को कही सासादन गुणस्थान लिख्या, कही न लिख्या इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसें मिलै ?

ताका उत्तर– ऐसे विरोध लिए कथन कालदोषतै भए हैं। इस कालविषै प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तो अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतै कोई अर्थ अन्यथा भासै ताको तैसे लिखै अथवा इस कालविषै केई जैनमतविषै भी कषायी भए हैं सो तिनने कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसें अन्यथा कथन भया, तातै जैनशास्त्रनिविषै विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बडे आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-

आम्नायते मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसें विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तो जैसें केवलीको भास्या है तैसें प्रमाण है, ऐसें मानि लेना। जातें देवादिकका वा तत्वनिका निर्द्धार भए बिना तो मोक्षमार्ग होय नाही। तिनिका तो निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तो आपहीको भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा संशयादि रहै वा अन्यथा भी जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै तो मोक्षमार्गविषैं विघ्न नाही, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसें नाना प्रकार कथन जिनमतविषैं कह्या, तैसें अन्यमतविषैं भी कथन पाइए है। सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषैं ऐसे कथनको तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तो नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीको पोषै तो कोई दोष है नाही। अर कही कोई प्रयोजन पोषै, कही कोई प्रयोजन पोषै तो दोष ही है। सो जिनमतविषैं तो एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है, सो कही बहुत रागादि छुडाय थोडा रागादि करावनेका प्रयोजन पोष्या है, कही सर्व रागादि मिटावनेका प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कही भी नाही तातैं जिनमतका कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषैं कही रागादि मिटावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, कही रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करै, ऐसेंही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करै हैं तातैं अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषैं भी एक प्रयोजन

को पोषते नाना वचन कहै, ताको प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बातैं करै, ताको बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषै नाना प्रकार कथन है सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाही। अन्यमतविषै एक ही अपेक्षा लिए अन्य अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसै जिनदेवकै वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति भी पाइए है, तहाँ विरोध नाही। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषै रागादिक नाही, तातै दोऊ बात सम्भवै हैं। अर अन्यमतविषै ईश्वरको साक्षीभूत वीतराग भी कहैं अर तिसहीकरि किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करै, सो एक आत्मा ही के वीतरागपनो अर काम क्रोधादि भाव कैसै सम्भवै ? एसै ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कालदोषतै जिनमतविषै एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषै दोष नाही। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कथन कोई कर सकै नाही। कही सौरीपुरविषै कही द्वारावतीविषै नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काठै ही होहु परन्तु नगरविषैं जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाही। अब भी होता दीसै है।

बहुरि अन्यमतविषै सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावै, बहुरि तिनिविषै परस्पर विरुद्ध भासै। कही तो बालब्रह्मचारीकी प्रशसा करै, कही कहैं **"पुत्र बिना गति ही होय नाहीं"** सो दोऊ साँचा कैसै होय। सो ऐसे कथन तहाँ बहुत पाइए हैं। बहुरि प्रमाणविरुद्ध

कथन तिनविषै पाइए हैं। जैसै वीर्य मुखविषै पडनेतें मछलीकै पुत्र हूवो, सो ऐसै अबार काहूकै होता दीसै नाही, अनुमानतें मिलै नाही। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए हैं। सो यहाँ सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए सो तो वे कैसै भूलै अर विरुद्ध कथन माननेमे आवै नाही, तातैं तिनके मतविषै दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहन करने योग्य है।

तहाँ प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहाँ पहिल याका अभ्यास करना, पीछे याका करना, ऐसा नियम नाही। अपने परिणाम-निकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतें अपने धर्मविषै प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसे रोजनामाविषै तो अनेक रकम जहाँ तहाँ लिखी हैं, तिनिको खाते मे ठीक खतावै तो लेना देनाका निश्चय होय तैसै शास्त्रनिविषै तो अनेक प्रकार उपदेश जहाँ तहाँ दिया है, ताको सम्यग्ज्ञानविषै यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै तो हित अहितका निश्चय होय। तातै स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचननिविषै रमै हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषै पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान बिना और धर्मका साधन होय सकै नाही। तातैं तुमको भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै उपदेशस्वरूप-प्रतिपादक नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया।

ॐ नमः

नवमा अधिकार

मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

शिवउपाय करतें प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरन, नमौंशुद्ध शिवभूप॥ १॥

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है—पहिले मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिको तो दुखःरूप दु ख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीचमे उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताको जानि उपदेशको यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिको सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अगीकार करना। जातै आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातै इसहीका उपदेश यहाँ दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है, और नाही—ऐसा निश्चय कैसै होय सो कहिए है—

आत्माका हित एक मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषै और तो कोई अवस्था होहू, किछू आत्माका बिगाड सुधार नाही।

एक दु खसुख अवस्थार्ते बिगाड सुधार है। सो इहाँ किछू हेतु दृष्टात चाहिए नाही। प्रत्यक्ष ऐसै ही प्रतिभासै है। लोकविषै जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाईए है—दु ख न होय, सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय भी जेते करै हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिये करै हैं, दूसरा प्रयोजन नाहीं। जिनके 'निमित्ततें' दु ख होता जानै, तिनिको दूर करनेका उपाय करै हैं अर जिनके निमित्तते सुख होता जानै, तिनिके होने का उपाय करै हैं। बहुरि सकोच विस्तार आदि अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी सयोग मिलै है परन्तु जिनकरि सुख दु ख होता न जानै, तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाही। सो इहाँ आत्मद्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाको सहि सकै, एक दु खको सह सकता नाही। परवश दु ख होय तो यहु कहा करै, ताको भोगवै परन्तु स्ववशपने तो किंचित् भी दु.खको न सहै। अर सकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय तैसी होहु, तिनिको स्ववशपनें भी भोगवै, सो स्वभावविषै तर्क नाही। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दु खी होय तब सूना चाहै, सो सोवने मे ज्ञानादिक मन्द हो जाय है परन्तु जड सरिखा भी होय दु:खको दूरि किया चाहै है वा मूआ चाहै। सो मरनेमे अपना नाश मानै है परन्तु अपना अस्तित्व भी खोय दु ख दूर किया चाहै है। तातै एक दु खरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दु ख न होय सो ही सुख है। जातै आकुलतालक्षण लिए दु ख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका सयोग मिलो,

जाकै अंतरंगविषै आकुलता है सो दुखी ही है, जाकै आकुलता नाही सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव भये हो है। जातै रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्यनिको और भाँति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भाँति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहाँ कै तो आपकै रागादिक दूरि होय, कै आप चाहै तैसे ही सर्वद्रव्य परिणमैं तो आकुलता मिटै। सो सर्वद्रव्य तो याके आधीन नाही। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय तैसै ही परिणमैं, तो भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तो होय ही सकै नाही। जातै कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाही। तातै अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातै रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तो है नाही, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततै भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जाय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय सुखकी प्राप्ति होय। तातै मोहकर्मका नाश हितकारी है।

बहुरि तिस आकुलताकों सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनावर्णके उदयतै ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातै याकै देखने जाननेकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानै, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहाँ आकुलता होय।

बहुरि अंतरायके उदयतै इच्छानुसार दानादि कार्य न बनै, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतै आकुलताकों सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका बल नाही।

अतर्मुहूर्तकालकरि आपै आप नाशको प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगट रूप निराकुल दशा भासै। तहाँ केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाको प्राप्त कहिए।

बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततै शरीरादिकका सयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतै शरीरादिकका सयोग आकुलताकों बाह्य सहकारी कारण है। अतरग मोहका उदयतै रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतै रागादिकको कारण शरीरादिकका सयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाही। परन्तु पूर्वै आकुलताका सहकारी कारण था, तातै अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माको इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होते किछु दुःख नाही तातै इनिके नाशका उद्यम भी नाही। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही कालमे सर्व नाशको प्राप्त होय जाय हैं। ऐसै सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातै आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाही, ऐसा निश्चय करना।

इहाँ कोऊ कहै—ससार दशाविषै पुण्यकर्मका उदय होते भी जीव सुखी हो है, तातै केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेको कहिए ?

सांसारिक सुख दुःख ही है

ताका समाधान—ससारदशाविषै सुख तो सर्वथा है ही नाही, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूँ बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूँ थोरा

दु ख हो है। सो पूर्वं बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दु ख पाइए है, तिस अपेक्षाते थोरे दु खवालेको सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतें थोरे दु खवाला आपको सुखी मानै है। परमार्थते सुख है नाही। बहुरि जो थोरा भी दु ख सदाकाल रहै है, तो वाका भी हित ठहराइए, सो भी नाही। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहाँ थोरा दु.ख होय, पीछे बहुत दु ख होइ जाय। तातै ससार अवस्था हितरूप नाही। जैसै काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपको नीका मानै। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थते यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाही है। तैसै ससारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय, तब वह आपको सुखी मानै। लोक भी कहैं—सुखी है। परन्तु परमार्थते यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुख नाही। बहुरि सुनि, ससार दशाविषै भी आकुलता घटे सुख नाम पावै है। आकुलता बधे दु ख नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीते सुख दु ख नाहीं। जैसे काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई, तहाँ किछू आकुलता घटनेतें वाको सुखी कहिए अर वह भी आपको सुखी मानै। बहुरि काहू बहुत धनवान्कै किंचित् धनकी हानि भई, तहाँ किछू आकुलता बधनेते वाको दु खी कहिए अर वह भी आपको दु खी मानै है। ऐसैही सर्वत्र जानना।

बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाही। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसै काहूक थोरा धन है अर वाकै सतोष है, तो वाकै आकुलता थोरी है। बहुरि

काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है, तो वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूको काहूनें बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तो वाकै आकुलता न हो है अर थोरी बाते कहे ही क्रोध होय आवै, तो वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसें गऊकै बछडेतें किछू भी प्रयोजन नाही परन्तु मोह बहुत, तातै वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकते घने कार्य सधै हैं परन्तु रणविषै मानादिककरि शरीरादिक्ते मोह घटि जाय, तब मरनेंकी भी थोरी आकुलता हो है। तातै ऐसा जानना—ससार अवस्थाविषै भी आकुलता घटने बधनेहीतें सुख दु ख मानिए हैं। बहुरि आकुलता-का घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधनेके अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दु ख नाही। कषायतै याकै इच्छा उपजै अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतें आकुलता घटै, तब सुख मानै अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै, तब कषाय बधनेते आकुलता बधै, तब दु ख मानै। सो है तो ऐसै अर यह जानै—मोकू परद्रव्यके निमित्तते सुख दु ख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातै इहाँ ऐसा विचार करना, जो ससार अवस्थाविषै किंचित् कषाय घटे सुख मानिए, ताको हित जानिए, तो जहाँ सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्तसुख पाइए ऐसी मोक्षअवस्थाको कैसै हित न मानिए? बहुरि ससार अवस्थाविषै उच्च पदको पावै, तौ भी कै तो विषयसामग्रीमिलावनेकी आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय, कै अपने और कोई क्रोधादि

कषायतें इच्छा उपजै, ताको पूरण करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाही, अभिप्रायविषै तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेंके उपाय करै, सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाही अर जो भवितव्य योगतें वह कार्य सिद्ध होय जाय, तो तत्काल और आकुलता मेटनेंका उपाय-विषै लागै। ऐसैं आकुलता मेटनेकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै तो नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषै काहेको प्रवर्त्तै है ? तातैं ससार अवस्थाविषै पुण्यका उदयतें इन्द्र अह-मिन्द्रादि पद पावै तो भी निराकुलता न होय, दु खी ही रहै। तातैं ससार अवस्था हितकारी नाही।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषै कोई ही प्रकारकी आकुलता रही नाही तातैं आकुलता मेटनेका उपाय करनेका भी प्रयोजन नाही। सदा काल शातरसकरि सुखी रहै। तातैं मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वं भी ससार अवस्थाका दु खका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताको भी विचारि मोक्षको हितरूप जानि मोक्षका उपाय करना, सब उपदेशका तात्पर्य इतना है।

इहां प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनै है कि मोहादिका उपशमादि भए बनै है कि अपने पुरुषार्थतें उद्यम किए बनै है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनै है, तो हमको उपदेश काहेको दीजिए है अर पुरुषार्थतें बनै है, तो उपदेश सर्व सुनै, तिनविषै कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

मोक्ष साधन में पुरुषार्थ की मुख्यता

ताका समाधान—एक कार्य होनेविषै अनेक कारण मिलै हैं। सो

मोक्षका उपाय बनै है तहाँ तो पूर्वोक्त तीनो ही कारण मिलै हैं अर न बनै है, तहाँ तीनो ही कारण न मिलै हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषै काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाही। जिस कालविषै कार्य बनै सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाही । बहुरि पुरुषार्थतै उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातै आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतै कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ तो अन्य कारण मिलै ही मिलै अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतै कार्य की सिद्धि होय अथवा नाही भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलै तो कार्यसिद्धिहोय, न मिलै तो न सिद्धि होय। सो जिनमतविषै जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतै मोक्ष होय ही होय। तातै जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करै हैं, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है तो यहु ऐसा उपाय करै है। तातै जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्वकारण मिलै हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाही अर कर्मका उपशमादि न भया है तो यहु उपाय न करै है। तातै जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलै नाही, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है— उपदेश तो सर्व सुनै हैं, कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ? सो कारण यहु ही है—जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै है सो मोक्षका उपाय न करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

द्रव्यलिंगीकै मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनो छोडि तपश्चरणादि करै हैं, तहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्य सिद्ध न भया, तातै पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाही।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तो कैसे सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषै अनुरागी होय प्रवर्त्तै, ताका फल शास्त्रविषै तो शुभबध कह्या अर यहु तिसते मोक्ष चाहै है, तो कैसै होय। यहु तो भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै ?

ताका उत्तर—साचा उपदेशते निर्णय किए भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिसहीते भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तो भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातै निर्णय करता परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसते मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तो कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तो कर्महीका कारण है। याकै तो ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतै निर्णय करनेकी शक्ति भई। जहाँ उपयोग लगावे, तिसहीका निर्णय होय सकै। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषै उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तो याहीका दोष है, कर्मका तो किछू प्रयोजन नाही।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व चारित्रका तो घातक मोह है, ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसे बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तो तत्वनिर्णयविषै उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतें मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतै सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषै कोई कर्मका दोष है नाही, तेरा ही दोष है। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिन आज्ञा मानै तो ऐसी अनीति सम्भवै नाही। तोको विषय कषायरूपही रहना है, तातै झूठ बोलै है। मोक्षकी साची अभिलाषा होय, तो ऐसी युक्ति काहेको बनावै। समारीक कार्यनिविषै अपना पुरुषार्थतै सिद्धि न होती जानै तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहाँ पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षको देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। वाका स्वरूप पहचानि

ताकों हितरूप न जानै है। हित जानि जाका उद्यम बनै सो न करै, यह असम्भव है।

इहाँ प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य, परन्तु द्रव्यकर्मके उदयतै भावकर्म होय, भावकर्मतै द्रव्यकर्मका बंध होय, बहुरि ताके उदयतै भावकर्म होय, ऐसै ही अनादितै परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसै होय सकै?

ताका समाधान—कर्मका बंध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ तो ऐसै ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततैं पूर्वबद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादि होते तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है तातै तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततै नवीन बंध भी मन्द तीव्र हो है। तातै संसारी जीवनिकै कर्मउदयके निमित्त-करि कबहूँ ज्ञानादिक घने प्रगट हो हैं, कबहूँ थोरे प्रगट हो हैं। कबहूँ रागादिक मन्द हो हैं, कबहूँ तीव्र हो हैं। ऐसै पलटनि हुवा करै है। तहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहूँ तीव्र रागादिक होय, कबहूँ मन्द होय। तहाँ रागादिकका तीव्र उदय होते तो विषयकषायादिकके कार्यनिविषै ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतें बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषै उपयोगको लगावै, तो धर्मकार्यनिविषै प्रवृत्ति होय। अर निमित्त न बनै वा आप पुरुषार्थ न करै, तो अन्य कार्यनिविषै ही प्रवर्त्तै परन्तु मन्द रागादि लिए प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषैं उपदेश कार्यकारी है। विचार-शक्तिरहित एकेन्द्रियादिक हैं, तिनिकै तो उपदेश समझनेका ज्ञान ही

नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनिका उपदेशविषै उपयोग लागै नाही। तातै जो जीव विचारशक्तिसहित होय अर जिनकै रागादि मंद होय, तिनको उपदेशका निमित्ततै धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तो ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषै पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करनेको समर्थ ही नाही, कैसै पुरुषार्थ करै अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाही। तातै विचारशक्तिसहित होय अर जिसकै रागादिक मन्द होय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततै तत्वनिर्णयादिविषै उपयोग लगावै, तो याका उपयोग तहाँ लगै, तब याका भला होय। बहुरि इस अवसरविषै भी तत्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतै काल गमावै। कै तो मन्दरागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषै प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषै प्रवर्त्तै, तब अवसर तो जाता रहै, ससारहीविषै भ्रमण होय।

बहुरि इस अवसरविषै जे जीव पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयकरनेविषै उपयोग लगावनेका अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषै आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तो कर्त्तव्य तत्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतै दर्शनमोहका उपशम तो स्वयमेव होय। यामै जीवका कर्त्तव्य किछू नाही। बहुरि ताको होते जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होतै श्रद्धान तो यहु भया—मैं आत्मा हूँ, मुझको रागादिक न करने परन्तु चारित्रमोहके उदयतै रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय,

तब तो विषयादिविषै प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तब अपनें पुरुषार्थतें धर्मकार्यनिविषै वा वैराग्यादिभावनाविषै उपयोगको लगावै है। ताके निमित्ततें चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसे होतें देशचारित्र वा सकलचारित्र अंगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रकों धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषै परणतिको बधावै, तहाँ विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातै विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसै क्रमतें मोहका नाश करै तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होय, तिनकरि ज्ञानावर्णादिका नाश होय तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहाँ पीछे बिना उपाय अघाति कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदको पावै। ऐसै उपदेशका तो निमित्त बनै अर अपना पुरुषार्थ करै, तो कर्मका नाश होय।

बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितें भी गिर जाय है। तहाँ तो जैसा होनहार होय तसा ही होय। परन्तु जहाँ मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहाँ तो प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसै कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषै पड़्या बहै है, तहाँ पानीका जोर होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। और पानीका जोर थोरा होय, तब जो पुरुषार्थकरि निकसै तो निकसि आवै, तिसहीको निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। अर न निकसै तो होलै २ बहै, पीछे पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसै जीव ससारविषै भ्रमै है तहाँ कर्मनिका तीव्र उदय होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थ-

करि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै तो मोक्षपावै; तिसहीको मोक्षमार्गका उपदेश दीजिए है। अर मोक्षमार्गविषै न प्रवर्त्तै तो किंचित् विशुद्धता पाय पीछे तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायको पावै। तातै अवसर चूकना योग्य नाही। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातै श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गको उपदेशैं, तिसविषै भव्य जीवनिको प्रवृत्ति करनी। अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है।

मोक्षमार्गका स्वरूप

जिनके निमित्ततें आत्मा अशुद्ध दशाको धारि दुखी भया, ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होतें केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए विना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसै मुनि लिंग धारे विना तो मोक्ष न होय अर मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाही भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपने तो जाके भए कार्य होय अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्धि होय। जैसै अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपने मोक्ष पाइए है, भरतादिककै बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जाके भए कार्य सिद्धि ही होय और जाके न भए सर्वथा कार्य सिद्धि न होय। जैसै सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तो मोक्ष होय ही होय अर ताको न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ए कारण कहे, तिनविषै अतिशयकरि

नियमते मोक्षका साधक जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषै एक भी न होय ता मोक्षमार्ग न होय। सोई **तत्वार्थसूत्रविषै** कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषै कह्या है—जो यहाँ "**मोक्षमार्ग**" ऐसा एक वचन कह्या ताका अर्थ यहु है—जो तीनो मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाही हैं।

यहाँ प्रश्न—जो असयतसम्यग्दृष्टीकै तो चारित्र नाही, वाकै मोक्ष मार्ग भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तो नियम भया। तातै उपचारते याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए। परमार्थतै सम्यक्-चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसे कोई पुरुषकै किसी नगर चालने का निश्चय भया तातै वाको व्यवहारते ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरको चल्या है", परमार्थते मार्गविषै गमन किए ही चलना होसी। तैसे असयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातै वाको उपचारते मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थते वीतरागभावरूप परिणमे ही मोक्षमार्ग होसी। बहुरि "**प्रवचनसार**" विषै भी तीनोकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है ताते यहु जानना—तत्वश्रद्धान ज्ञान विना तो रागादि घटाए मोक्षमार्ग नाही अर रागादि घटाए विना तत्वश्रद्धानज्ञानते भी मोक्षमार्ग नाही। तीनो मिले साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश कर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तो 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय अर जाकरि इनको पहिचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहाँ जाको पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ अतिव्याप्तिपनो जानना। जैसै आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षणं है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषै भी पाइए अर अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषै भी पाइए है। तातै यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जाय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो कोई लक्ष्यविषै तो होय अर कोई विषै न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषै पाइए, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए, तहाँ अव्याप्तिपनो जानना। जैसै आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवल ज्ञान कोई आत्माविषै तो पाइए, कोईविषै न पाइए, तातै यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो लक्ष्यविषै पाइए ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहाँ कहिए तहाँ असम्भवपना जानना। जैसै आत्माका लक्षण जडपना कहिए सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है जातै यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा माने पुद्गलादिक भी आत्मा होय जाय।

अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय, यहु दोष लागै।

ऐसें अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषें तो सर्वत्र पाइए अर अलक्ष्यविषें कहीं न पाइए सो सांचा लक्षण है। जैसें आत्माका स्वरूप चैतन्य है सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषें तो पाइए है, अनात्माविषें कहीं न पाइए। तातें यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा मानें आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसें लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या। अब सम्यग्दर्शनादिकका साचा लक्षण कहिए है—

सम्यग्दर्शनका सच्चा लक्षण

विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान-ऐसें ही है, अन्यथा नाहीं, ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातें 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातें जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्वं' ऐसा तत्व शब्दका समास होय है। बहुरि जो जाननेमें आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय'

ताका नाम अर्थ है। बहुरि 'तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः' तत्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाही। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाही। जैसे कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय—यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि प्रतीति हो है परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है सो मैं आत्मा हूँ बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतै भिन्न जुदा पदार्थ है- ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान कार्यकारी नाही। बहुरि जैसे 'मैं आत्मा हूँ' ऐसे श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाही। तातै तत्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है सो कार्यकारी है। अथवा जीवादिकको तत्व सज्ञा भी है अर अर्थ संज्ञा भी है तातै 'तत्वमेवार्थस्तत्वार्थ.' जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दशन है। इस अर्थकरि कही तत्वश्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै वा कही पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहै, तहाँ विरोध न जानना। ऐसे 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

बहुरि प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषै सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे, कै अनंते कहने थे। आस्रवादिक तौ जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकौं जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसें सर्व पदार्थनिका जानना होय तैसे ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तौ मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए बिना मोक्ष न होय, तिन-हीका यहाँ निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तो बहुत द्रव्य-निकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ए दोय जाति जानें जीवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतें भिन्न आपाकौं जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतैं भिन्न परकौं जानैं, तब परद्रव्यतैं उदासीन होय रागादिक त्यागि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातैं ए दोय जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोय जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितैं संसारीक प्रयोजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्ग-विषै कैसे प्रवर्त्तै। तातैं इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसें ए दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पाँच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्व हैं। सो इन पांच पर्यायनिको जाने मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकौं पहिचानै, तौ ताकौं हित मानि ताका उपाय करै। तातैं मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका

उपाय संवर निर्जरा है सो इनको पहिचान तो जस सवर निर्जरा होय तैसे प्रवर्त्तै। तातैं संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए हैं; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकौं पहिचानने चाहिए। जैसें क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकौं पहिचानै तो ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्तै। तैसें ही आस्रवका अभाव भए सवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधको पहिचानै तो तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तै। तातै आस्रव बधका श्रद्धान करना। ऐसें इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनको न पहिचानै तो मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषै कैसै प्रवर्त्तै। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसे करै ? ऐसे इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ एक मोक्षका प्रयोजन है तातै दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं, तातैं सात तत्वनिविषैं गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छन्द होय पापरूप न प्रवर्त्तै, तातैं मोक्षमार्गविषैं इनका श्रद्धान भी

उपकारी जानि दोय तत्व विशेष के विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे वा समयसारादिविषैं इनकौं नव तत्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसैं सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतै धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषै 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातै चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, किछु याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेंका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाही है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवको पहचानि आपकों वा परको जैसाका तैसा मानैं। बहुरि आस्रवको पहचानि ताकों हेय मानै। बहुरि बंधकों पहचानि ताकों अहित मानैं। बहुरि संवरकों पहचानि ताकों उपादेय मानैं। बहुरि निर्जराकों पहचानि ताकों हितका कारण मानैं। बहुरि

मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परम हित मानै। ऐसें तत्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय है। तिसतें उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातैं तत्वार्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहाँ कहा है।

अथवा काहूकै अभास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्राय-विषैं विपरीतपनों नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतैं अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषै पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसे द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितै तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषै अहंकार वा पुण्यास्रवविषै उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतै मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्वार्थ-श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसे विपरीता-भिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोइ तत्वार्थसूत्रविषैं कह्या है— "**तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१-२॥**" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसे कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतै यहाँ किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय विषै भी ऐसै ही कह्या है—

जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।

श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि

तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातें आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषै प्रगट हो है। पीछें सिद्ध अवस्थाविषै भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति–अतिव्याप्ति–असंभव दोष का परिहार

यहाँ प्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्त्वनिका नाम भी न जानि सकें, तिनिकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषै कही है। तातें तत्त्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषै अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान—जीव अजीवादिकका नामादिक जानो वा मति जानो वा अन्यथा जानो, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहाँ कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातें तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिकका नाम भी न जानैं हैं, तथापि उनका सामान्यपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करें हैं। तातैं उनकै सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसे कोई तिर्यंच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाही जानै परन्तु आपही विषै आपो मानैं है, औरनिकौं पर मानै है। तैसै तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानै परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है तिसविषै तो आपो मानै है अर जो शरीरादि है तिनकौं पर मानै है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसैं सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक

न जानें है, तथापि सुख अवस्थाकों पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख का कारणको पहिचानि ताका त्यागकों किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तैसें तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानै, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाको श्रद्धान करता ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताका त्यागरूप संवरको किया चाहै है। बहुरि जो संसार दुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसें आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्यागि शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है —

जो जीव अजीवकी जाति न जानि आपापरको न पहिचानै तो परविषै रागादिक कैसे न करै ? रागादिककों न पहिचानै तो तिनिका त्याग कैसें किया चाहे। सो रागादिक ही आस्रव है। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहे को रागादिक छोड्या चाहै। सो रागादिकका फल सोई बंध है। बहुरि रागादि रहित परिणामकों पहिचानै है तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण की हानिकों पहिचानै है तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्था का अभावको न पहिचानै तो संवर निर्जरारूप काहेको प्रवर्त्तै। सो संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातैं सातों तत्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्ध भाव होनेकी

इच्छा उपजै है। जो इनविषैं एक भी तत्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातैं वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतैं विशेषपनैं तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतैं सामान्यपनैं तत्व-श्रद्धानकी शक्ति प्रगट हो है। ऐसैं इस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण नाही है।

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषै सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यनिविषैं प्रवर्त्तै है तिसकालविषैं सप्त तत्वनिका विचार ही नाहीं, तहाँ श्रद्धान कैसे सम्भवै ? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहाँ उपयोग लागै, तिसहीका विचार हो है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतैं वा सोवना आदि क्रिया होतें तत्वनिका विचार नाही, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसैं कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूँ, तिर्यंचादि नाहीं हूँ। मेरै इस कारणतैं रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगकों घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसैं इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आत्मा हूँ, पुद्गलादि नाहीं हूँ, मेरे

आस्रवतैं बन्ध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान एसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेंके कारणनिविषै कैसें प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसें सोई मनुष्य कोई कारणके वशतै रोग बधने के कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। तैसें सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतै बन्ध होनेके कारणनिविषै भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगै करेंगे। ऐसै सप्ततत्व का विचार न होते भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है तातैं तहाँ अव्याप्तिपना नाही है।

बहुरि प्रश्न—ऊँची दशाविषै जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहाँ तो सप्त तत्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसें सम्भवै ? अर तहाँ निषेध सम्भवै है तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषै सप्ततत्वनिके विकल्पनिविषै उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ कीन्हो अर विषयादिकतै उपयोग छुडाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातैं जहाँ प्रतीति भी दृढ भई अर रागादिक दूर भए

तहाँ उपयोग अभावनेंका खेद काहेकों करिए। तातैं तहाँ तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाहीं। सातों तत्व-निकी प्रतीति तहाँ भी बनी रहै है। तातैं यहाँ अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै, तातैं तहा सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्या परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहाँ सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाही अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातै तहाँ तिस लक्षणविषैं अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसें छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीत्ति पाइए है, तैसें केवली सिद्धभगवान्कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीत्ति पाइए है। जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहलैं ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहाँ प्रतीतिको परम अवगाढपनो भयो। याहींतै परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वे श्रद्धान किया था, ताकौ झूठ जान्या होता तो तहाँ अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्व-निका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवान्कै पाइए है तातैं ज्ञानादिकको हीनता अधिकता होतें भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान् तिनकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या। बहुरि पूर्वअवस्थाविषै यहु मानैं थे—संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछें मुक्त अवस्था भए ऐसें मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई। बहुरि पूर्वे ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष

जानें था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानें परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली कैं पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकों भी प्रतीति लिए जानै है तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाही। तातैं सम्यक्त्वगुणविषैं सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं, ससार अवस्थाको न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शन को तो मोक्ष मार्ग कह्या था, मोक्ष विषै याका सद्भाव कैसे कहिए है ?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसे काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसको होतें वह शाखा नष्ट न हो है तैसें काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होतें सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसें केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षण ही पाइए है तातैं यहाँ अव्याप्तिपनों नाही है।

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषैं निरूपण है। प्रवचनसारविषै आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषैं अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो

नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामैं तत्वश्रद्धानका गुण नाहीं अर व्यव-हारविषैं जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए सो मिथ्यादृष्टीकै हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेंविषैं उपयोग नाहीं लगावैं है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थ श्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहाँ भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकैं श्रद्धान होय, ताकैं आत्मज्ञान कैसें न होय ? होय ही होय। ऐसैं कोई ही मिथ्यादृष्टीकैं सांचा तत्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातैं तिस लक्षणविषै अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाहीं है। जातैं सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व—यहु नाही है, वाका लक्षण इसतैं विपरीतता लिए है।

ऐसैं अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित सर्व सम्यग्-दृष्टीनिविषै तो पाइए अर कोई मिथ्यादृष्टिविषै न पाईए ऐसा सम्यग्दर्शनका साचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

बहुरि प्रश्न उपजै है— जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनै नाही, जातै कही परतें भिन्न आपका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कहैं है। समयसारविषैं[1] 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलशा

1 एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् ॥

(लिखा) है, तिसविषै ऐसा कह्या है—जो इस आत्माका परद्रव्यतैं भिन्न अवलोकन सो ही नियमतें सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्वकी संतति को छोडि हमारै यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कही एक आत्माके निश्चयहीको सम्यक्त्व कहै हैं। पुरुषार्थसिद्धयुपायविषै[1] 'दर्शन-मात्मविनिश्चिति' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेको लिखते।

ताका समाधान—परतें भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धान करि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषै उपयोग लगावनेका काहेको उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेको छाडै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेव ही सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि ताकै पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्त्वा नवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः॥ जीवाजीव०
अ० कलश ६॥

[1] दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥ पु० सि० २१६॥

होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातों तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान साँचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसैं तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसैं शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतें हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातैं श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबंधका अभावकरि संवर निर्जरारूप उपायतें मोक्षपदको पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे है, तो शास्त्रनिविषै आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसें कह्या?

ताका समाधान—जाकैं सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान होय, ताकैं सातों तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकैं सांचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकैं आपापर का वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानकौं या आत्मश्रद्धान ही कौं सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनैं आपापरको जानि वा आत्माकौं जानि कृतकृत्यपनौं मानै, तो वाकै भ्रम है। जातैं ऐसा कह्या है— **'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'**। याका अर्थ यहु— जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातैं प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिको भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीको भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानको वा आत्मज्ञानको कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाही। जातै प्रयोजनतो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यह प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतैं मानको बधावै, रागादिक छांड़ै नाही, तब वाका कार्य कैसे सिद्धि होय। बहुरि नव तत्वसततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वैं नवतत्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछैं निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्वनिका भी विकल्प छोडनेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिलै ही नवतत्वनिका विचार नाही, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करो। ऐसैं आपापरका श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै सप्ततत्वका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है, तातै तत्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कही शास्त्रनिविषैं अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसे है ?

ताका समाधान—अरहत देवादिकका श्रद्धानतें कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकों सम्यक्त्व कह्या है। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाही। जातै द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसे अणुव्रत महाव्रत होतें तो देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातै इनि व्रतनिको अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इनको चारित्र कह्या। तैसै अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होते तो सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए विना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातै अरहन्तादिकके श्रद्धानको अन्वयरूप कारण जानि कारणविषै कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है। याहीते याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै साचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाही। बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय। जातै अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचानै जीव अजीव आस्रवादिकको पहिचान हो है। ऐसै इनको परस्पर अविनाभावी जानि कही अरहन्तादिकके श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है।

यहाँ प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाही अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातै सम्यक्त्व होते अरहतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषै अरहतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातै तत्वश्रद्धानविषै मोक्षतत्वकों सर्वोत्कृष्ट मानै है। सो मोक्षतत्व तो अरहत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणको उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातै उनको भी सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरको न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण सवर निर्जरा हैं, तातै इनकों भी उत्कृष्ट मानै है। सो सवर निर्जराके धारक मुख्यपने मुनि हैं। तातै मुनिकों उत्तम मान्या, औरको न मान्या, सो ही गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीको उपादेय मानै है, औरको न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसै तत्वश्रद्धानविषै गर्भित अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततै याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततै अरहतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषै देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहतादिकका श्रद्धान करै हैं, तिनिके गुण पहिचानै हैं अर उनक तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै साचा अरहतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाही ?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान विना अरहतादिकके छियालीस आदि गुण जानै है, सो पर्यायाश्रित गुण जानै है परन्तु जुदा जुदा जीव

पुद्‌गलविषै जैसे सम्भवै तैसे यथार्थ नाही पहिचानै है। तातै साचा श्रद्धान भी न होय। जातै जीव अजीवकी जाति पहिचाने विना अरहंता-दिकके आत्माश्रित गुणनिकों वा शरीराश्रित गुणनिको भिन्न-भिन्न न जानें। जो जाने तो अपने आत्माको परद्रव्यतें भिन्न कैसे न मानै ? तातै प्रवचनसारविषै ऐसा कह्या है :—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतको द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानै है, सो आत्माको जानै है। ताका मोह विलयकों प्राप्त हो है। तातै जाकै जीवादिक तत्वनिका श्रद्धान नाही, ताकै अरहंतादिकका भी साचा श्रद्धान नाही। बहुरि मोक्षादिक तत्वका श्रद्धानविना अरहंता-दिकका माहात्म्य यथार्थ न जानैं। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंत का, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानै, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातै जाकै साचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो साचा तत्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्म श्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषै साची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारयो लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे है। जहाँ तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तो यहु प्रयोजन है जो इन तत्वनिको पहिचानै तो यथाथ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानको मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोडना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषै रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतै सिद्ध होता जानि इस लक्षणको कहा है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपको आप जानना। आपको आप जानें परका भी विकल्प कार्यकारी नाही। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानको मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातै अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान साचा तत्वार्थश्रद्धानको कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पत तत्वश्रद्धानकों कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुडाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेंके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसै जुदे २ प्रयोजननिकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे हैं।

इहाँ प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनविषैं यहु जीव किस लक्षणकों अगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतें विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारों लक्षण युगपत् पाइए हैं। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिको विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकों सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसैं ज्ञानविषै तो नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषै सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्वविचार करै है तो भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है अर भेदविज्ञान करै है तो तत्वविचार आदिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसैं ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणो है। तातैं सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषैं च्यारो ही लक्षणनिका अगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्व का उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ए लक्षण आभास मात्र होय, साँचे न होय। जिनमतके जीवादिकतत्वनिको मानै, और को न मानै, तिनके नाम भेदादिककों सीखै है, ऐसैं तत्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातैं करै अर वस्त्रादिकविषैं परबुद्धिकों चितवन करै परन्तु जैसैं पर्यायविषैं अहबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषै परबुद्धि है, तैसैं आत्माविषैं अहंबुद्धि अर शरीरादि विषैं परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माको जिनवचनानुसार चिन्तवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकों आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहन्तदेवादिक बिना और कुदेवादिकको न मानै परन्तु तिनके स्वरूपकों यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसे ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो हैं।

इनविषै कोई होय, कोई न होय। तहाँ इनकै भिन्नपनों भी सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषै इतना विशेष है जो पहिलें तो देवादिकका श्रद्धान होय, पीछें तत्वनिका विचार होय, पीछे आपापरका चिंतवन करै, पीछें केवल आत्माको चिन्तवै। इस अनुक्रमतें साधन करै तो परम्परा साचा मोक्षमार्गकों पाय कोई जीव सिद्धपदकों भी पावै। बहुरि इस अनुक्रमका उलघन करि जाकै देवादिक माननेका तो किछू ठीक नाही अर बुद्धिकी तीव्रताते तत्वविचारादिकविषै प्रवर्त्तै है तातै आपको ज्ञानी जानै है। अथवा तत्वविचारविषै भी उपयोग न लगावै है, आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपापरका भी ठीक न करै है अर आपको आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी बातैं हैं। मानादिक कषायके साधन हैं। किछू भी कार्यकारी नाही। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसको यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिको भी अनुक्रमहीते अंगीकार करना। सोई कहिए है —

पहलें तो आज्ञादिकरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना छोडि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातै इस श्रद्धान भए गृहीत-मिथ्यात्वका तो अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहंतदेवादि-कका निमित्त मिलै है। सो पहिलें देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि पीछें जिनमतविषै कहे जीवादिक तत्वतिनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखने। जातै इस अभ्यासतें तत्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय। बहुरि पीछे आपापरका भिन्नपन्ना जैसे भासै तैसे विचार किया

करै। जातै इस अभ्यासतै भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछे आपविषैं आपो माननेके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातै इस अभ्यास तें आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमते इनकों अगीकार करि पीछे इनहीविषैं कबहू देवादिकका विचारविषै, कबहू तत्वविचार विषै, कबहू आपापरका विचारविषैं, कबहू आत्मविचारविषै उपयोग लगावै। ऐसै अभ्यासते दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् साँचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय, बहुरि ऐसा नियम तो है नाही। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमें होय जाय, तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाही भी होय परन्तु मुख्यपने घने जीवनिकै तो इस अनुक्रमते कार्यसिद्धि हो है। तातै इनिको ऐसै अगीकार करनें। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिको मिलावै, पीछे घने पुरुषनिकै तो पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो न होय। याको तो उपाय करना। तैसै सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिको मिलावै, पीछें घने जीवनिकै तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो नाही भी होय। परन्तु याको तो आपतै बनै सो उपाय करना। ऐसै सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तो अनेक प्रकार कहे, तिन विषै तुम तत्वार्थश्रद्धान लक्षणको मुख्य किया, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनिकों अन्य लक्षणविषैं प्रयोजन प्रगट भासै नाही वा भ्रम उपजै। अर इस तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाही। तातैं इस लक्षणकों मुख्य किया है। सोई दिखाइए है :—

देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै —अरहंतदेवादिककों मानना, औरको न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहाँ जीव अजीवका वा बंधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषै सन्तुष्ट होय आपको सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवादिकतैं द्वेष तो राखै, अन्य रागादि छोडने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसते ही सम्यक्त्व हो है। तहाँ आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेविषै सन्तुष्ट होय आपको सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोडनेका उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषै तुच्छबुद्धीनिको यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतें सम्यक्त्व हो है। तहाँ जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतना ही विचारतें आपको सम्यक्त्वी माने स्वच्छन्द होय रागादि छोडनेका उद्यम न करै। याकैं भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जानि इन लक्षणनिकों मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषै जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहाँ सर्वका स्वरूप नीके भासै, तब मोक्षमार्गके प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धान भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेतें रागादि

छोड़ि मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उ-जै है। तातैं तत्वार्थ श्रद्धा। लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तो देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आ:त्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनिको भी भासै। बहुरि अन्य लक्षणविषै तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनों विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीकों भासै, तुच्छबुद्धीनिको न भासै तातैं तत्वार्थश्रद्धान लक्षणको मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होय। तहाँ तत्वार्थनिका विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेको कारण हो है, अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातैं यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि **विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है,** ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषै पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाईए है, तहाँ प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाई: है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्माका परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातैं यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकों कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातैं कारणविषै कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यव-

हार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका सांचा श्रद्धान है तिसही निमित्ततै याकै श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है अर देवगुरु धर्मादिकका श्रद्धान है सो यह व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसे एक ही कालविषै दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है अर याके श्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातै यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाही अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातै याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावको साक्षात् कारण भया नाही। कारण भए विना उपचार सम्भवै नाही। तातै साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकै न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानको परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाही, तथापि मुख्यपनै कारण है। बहुरि कारणविषै कार्यका उपचार सम्भवै है। तातै मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषै देवगुरुधर्मका श्रद्धानको वा तत्वश्रद्धानको तो व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कों वा केवल आत्माके श्रद्धानको निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसे है ?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषै तो प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषै अरहन्तादिकको देवादिक मानैं, औरकों न मानै,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषैं तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषै जीवादिकतत्वनिकों विचारै, ताको तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसैं मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकों कारण तो होय परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी सम्भवै है। तातैं इनिकों व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापर का श्रद्धानविषै वा आत्मश्रद्धानविषै विपरीताभिनिवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपने आत्माको अनुभवै, ताकै मुख्यपनें विपरीताभिनिवेश न होय। तातैं भेदविज्ञानीको वा आत्मज्ञानीको सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसैं मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीहीकै पाइए है। तातैं इनिकों निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपनें ए च्यारों आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होंय, साँचे सम्यग्दृष्टीकै होय। तहाँ आभासमात्र हैं सो तो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर साचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातैं इनिको व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततैं जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषै लिखै हैं—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है सो कैसे है ?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहो, तातैं निश्चयकरि आत्माहीकों सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकैं भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व व्यवहार कह्या है, ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं अर अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञा-सम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं, सो **आत्मानुशासनविषैं** कहा है :—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।
विस्तारार्थाभ्यांभवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातै तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहाँ इतना जानना—"मोको जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाही है। आज्ञा मानना तो कारणभूत है। याहीतै यहाँ आज्ञातै उपज्या कह्या है। तातै पूर्वै जिनआज्ञा माननेतैं पीछे जो तत्वश्रद्धान भया सो **आज्ञासम्यक्त्व** है। ऐसें ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतै तत्वश्रद्धान भया सो **मार्गसम्यक्त्व** [1] है।

[बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतै जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषै प्रवीणपुरुषनिकरि उपदेश आदितै भई जो उपदेशदृष्टि सो **उपदेशसम्यक्त्व** है। मुनिके आचरणका विधानको प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

1 मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति मे ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोंके लक्षण लिखनेके लिये छोडा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोके अनुसार दिये गये है।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानको कारण तिनकरि दर्शनमोहका अनुपम उपशमके बलते, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति जाकै, ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिकों संक्षेपपनेते जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली सक्षेपदृष्टि है। यह **सक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशागवानीको सुन कीन्ही जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्तते भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना।] ऐसैं आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए। बहुरि अग अर अगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताको अवगाह करि जो निपजो सो अवगाढदृष्टि है। यह **अवगाढसम्यक्त्व जानना।** बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है ताको **अवगाढ़सम्यक्त्व कहिए।** केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताको **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए। ऐसैं दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहां सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना।

बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १ औपशमिक २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहां औपशमिकसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहां मिथ्यात्वगुणस्थानविषै करणकरि दर्शनमोहकों

उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताको प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टिकै तो एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है, जातै याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाही। जब जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होय, तहाँ तिस सम्यक्त्वके कालविषै मिथ्यात्वके परमाणूनिको मिश्रमोहनीरूप वा सम्यक्त्वमोहनी-रूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिकी सत्ता हो है। तातै अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है, काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषै तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्व-रूप परिणमि गए होय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातै सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतिका उपशम हो है।

उपशम कहा ? सो कहिए है :—

अनिवृत्तिकरणविषै किया अंतरकरणविधानतै जे सम्यक्त्वकाकाल विषै उदय आवने योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके परमाणु अन्यकालविषै उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि अनिवृत्तिकरणही विषै किया उपशमविधानतै जे तिसकाल के पीछे उदय आवने योग्य निषेक थे ते उदीरणारूप होय इस कालविषै उदय न आय सकै, ऐसे किए। ऐसे जहाँ सत्ता तो पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतै भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यंन्त पाइए है। बहुरि

उपशमश्रेणीकों सन्मुख होते सप्तम गुणस्थानविषै क्षयोपशमसम्यक्त्वतें जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतीनिका उपशम हो है, जातै याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहाँ भी अंतरकरणविधानते वा उपशमविधानतें तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि गयारवाँ गुणस्थानपर्यन्त हो है। पडतां कोईकै छठे पाँचवें (**चौथे गुणस्थान**) [1] भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसै उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकाल विषै क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाईए है, तातै अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछे दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसै उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि जहाँ दर्शन मोहकी तीन प्रकृतीनिविषै सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय (पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है। जातै समलतत्त्वार्थ श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है।) अन्य दोयका उदय न होय, तहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्वका काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व-गुणस्थानतें वा मिश्रगुणस्थानते भी याकी प्राप्ति हो है।

क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है —

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषै जो मिथ्यात्वका अनुभाग है ताके अनन्तवे भाग मिश्रमोहनीका है। ताके अनन्तवे भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषैं सम्यक्तवमोहनी प्रकृति देशघाती है। याका उदय होतें भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता

---

1 "चौथे गुणस्थान" यह अन्य प्रतियो मे अधिक है।

करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है। सो जहाँ मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्तमानकालविषैं उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा हो है सो तो क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषै उदय आवने योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहाँ होय सो क्षयोपशम है, तातै समलतत्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहाँ मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानें हैं, उदाहरण दिखावनेके अर्थि चलमलिन अगाढपना कह्या है। तहाँ व्यवहार मात्र देवादिककीप्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषैं यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शकादि मल लागै सो मलिनपना है। यहु शातिनाथ शातिका कर्त्ता है इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाही। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषै जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानै हैं। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषैं कोई प्रकार करि समलपनो हो है तातै यहु सम्यक्त्व निर्मल नाही है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका-एक ही प्रकार है। याविषै किछू भेद नाही है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वको सन्मुख होते अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्व-की प्रकृतिका क्षय करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछे मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछे सम्यक्त्वमोहनीकी काडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहाँ मिथ्यात्वमिश्र-मोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहाँ क्षयोपशम नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहाँ वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषै भेद है नाही। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसै क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनो प्रकृतीनिकै सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थाननिविषै कही क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकै याकी प्राप्ति हो है। कैसै हो है ? सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि तहाँ मिथ्यात्वके परमाणूनिको मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसै मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र मोहनी के परमाणूनिको सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसै मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरै, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तो ताको स्थिति-काडादिकरि घटावै। जहाँ अन्तर्मुहूर्त्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदक-सम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतै इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतै निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रजनाके अभावतै वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतै उपजै तहाँतै सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसै क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसै तीन भेद सम्यक्त्वके हैं।

बहुरि अनन्तानुबधी कषायकी सम्यक्त्व होतैं दोय अवस्था हो हैं। कै तो अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतैं उपशम होय ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका

अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबधीका प्रशस्त उपशम तो होय ही नाही, अन्य मोहकी प्रकृतीनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबंधोनिके परमाणूनिकों अन्य चारित्रमोहकी प्रकृति रूप परिणमाय तिसकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसयोजन है। सो इनविषै प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषै तो अनन्तानुबधीका अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलै अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखै हैं, कोई नियम नाही लिखै हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषै कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलैं अनन्तानुबधीका विसयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहाँ यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबधीका विसंयोजनतैं सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषै आवै तो अनन्तानुबधीका बंध करै, तहाँ बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषै आवै नाही, तातै वाकै अनतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी तो चारित्रमोहकी प्रकृति है सो चारित्रकों घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसै सम्भव ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधीके उदयतै क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्व श्रद्धान होता नाही। तातै अनन्तानुबधी चारित्रहीकों घातै है, सम्यक्त्वको नाही घातै है। सो परमार्थतैं है तो ऐसैं ही परन्तु अनन्तानुबधीके उदयतैं जैसें क्रोधादिक हो हैं, तैसें क्रोधादिक सम्यक्त्व होव न होंय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाईए है। जैसे त्रसपनाकी

घातक तो स्थावरप्रकृति ही है परन्तु त्रसपना होतें एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, ताते उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकों भी त्रसपनाका घातक पना कहिए तो दोष नाही। तैसें सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतें अनन्तानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातें उपचारकरि अनन्तानुबधीकें भी सम्यक्त्वका घातक पना कहिए तो दोष नाही।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबधी चारित्रहीको घात है तो-याके गए किछू चारित्र भया कहो। असयत गुणस्थानविषै असयम काहेको कहो हो ?

ताका समाधान—अनन्तानुबधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मदकषाय की अपेक्षा नाही हैं। जातें मिथ्यादृष्टीकें तीव्र कषाय होतें वा मदकषाय होते अनन्तानुबधी आदि च्यारोका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताको गए न होय। ऐसै ही अप्रत्याख्यानकी साथि जैसा प्रत्याख्यान सज्वलनका उदय होय, तैसा ताको गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि सज्वलनका उदय होय, तैसा केवल सज्वलनका उदय न होय। तातें अनन्तानुबधीके गए किछू कषायनिकी मदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातें कषायनिके असख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानत उत्तरस्थानविषै मंदता पाईए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थाननिविषैं तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असयमरूप कहे, पीछें केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछे केतेक सकलसयमरूप कहे। तिनविषै प्रथम

गुणस्थानतें लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातै कषायनिकी मंदता होतें भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतै कषायका घटना चारित्रका अंश है, तथापि व्यवहारतै जहाँ ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय, तहाँ ही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषं ऐसे कषाय घटै नाही, तातै यहाँ असंयम कह्या है। कषायनिका अधिक हीनपना होतै भी जैसै प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषै सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै, तैसै मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषै असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी सम्यक्त्वको न घातै है तो याके उदय होतें सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानको कैसे पावै है ?

ताका समाधान—जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताको मनुष्यपर्यायका छोडनहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषै न भया। इहाँ मनुष्यहीकी आयु है। तैसै सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वके नाशका कारण अनन्तानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताको सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषै न भया। यहाँ उपशमसम्यक्त्वही का काल है, ऐसा जानना। ऐसै अनन्तानुबंधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतें अवस्था हो है, तातै सात प्रकृतीनिके उपशमादिकतै भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसे हैं ?

ताका समाधान—सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसैं सम्यक्त्व मार्गणाकरि

जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहाँ कोई कहै कि सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषै आया होय, ताकौं मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातै अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसै सयममार्गणाविषैं असयम कह्या, भव्यमार्गणाविषै अभव्य कह्या, तैसै ही सम्यक्त्वमार्गणा विषै मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वको सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभाव भासै तहाँ मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणा-विषै मिथ्यात्व कह्या है। ऐसै ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वके भेद नाही हैं। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना। यहाँ कर्मके उप-शमादिकतै उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाही। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततै स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जाननें। ऐसैं सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

सम्यक्दर्शन के आठ अंग

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अग कहे हैं। नि शाकितत्व, नि.कांक्षि-तत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहा भयका अभाव अथवा तत्वनिविषै सशयका अभाव, सो निःशाकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै रागरूप वांछाका अभाव, सो नि कांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सव है। बहुरि तत्वनिविषैं वा देवादिकविषैं अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्म-धर्मका वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपवृहण है। इसही अंगका

नाम उपगूहन भी कहिए है। तहाँ धर्मात्मा जीवनिका दोष ढाकना ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपने स्वभावविषै वा जिनधर्मविषैं आपकों वा परको स्थापन करना, सो स्थितिकरण है। बहुरि अपने स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषै वा जिनधर्मविषै वा धर्मात्मा जीवनिविषै अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है। ऐसैं ए आठ अग जानने। जैसै मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अग हैं, तैसै ए सम्यक्त्वके अग हैं।

यहाँ प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातै नि.शकितादिक अग सम्यक्त्वके कैसे कहो हो ?

ताका समाधान—जैसै मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अग कहिए है, तहाँ कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषै कोई अग न होय। तहाँ वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए परन्तु तिनि अगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसै सम्यक्त्वके नि शाकितादि अग कहिए है, तहाँ कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै नि शाकितत्वादिविषै कोई अग न होय। तहाँ वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसे बादरेकै भी हस्तपादादि अग हो हैं परन्तु जैसे मनुष्यके होंय, तैसे न हो हैं। तैसै मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप नि शकितादिक अग हो हैं परन्तु जैसै निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होंय तैसै न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषै पच्चीस मल कहे हैं—आठ शकादिक, आठ मद, तीन मूढता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होय। कदाचित् काहूकै कोई लागे सम्यक्त्वका सर्वथा नाश न हो है, तहाँ सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु……………

ॐ
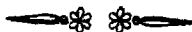
पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषे साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखत टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिंघजी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादते और सार्धर्मियों ने लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम मारिषे ही लिखें। अवार वर्तमान काल मे अध्यात्म के रसिक बहुत थोडे हैं। धन्य है जे स्वात्मानुभव की वार्ता भी करें है, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम् ॥

पद्मनन्दि पंच विंशतिका। (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषै मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव मे रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तार बुद्धि अनुसार लिखिये हैं।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै हैं।

जीव पदार्थ अनादिते मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूपसे विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षयते आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातैं आपापरका श्रद्धानविषैं शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाही है अर जिनमतविषैं कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानैं है, अन्य मत विषै कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाही मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाही। तातैं स्वपर भेद विज्ञान को लिए जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पचेन्द्री व छटा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा मे कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकू अयथार्थ भी जानै तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातै जाननेविषै विपरीत रूप पदार्थनिको न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अश है। जैसे थोडा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्तै है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। तातै सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषैं सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तै। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसें पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषें प्रवर्त्ते है, उस कार्य को अपना भी कहै है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्य विषै प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कों नाही विचारै है परन्तु अन्तरग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाही। ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूं चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए। तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणमै, तथापि अन्तरग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाही। जो शरीराश्रित व्रत सयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय। सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय हैं। अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है —

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञान करै, नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै, पीछे परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है, तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषै अहबुद्धि धारै है। मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते सते सहज ही आनन्द तरग उठै है, रोमाच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै, तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्तै। दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो। सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है। सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा—तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेहि जुत्ति मग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ—तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषै समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानै। पीछे आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषै नय प्रमाण नाही है, जातै प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्न की खरीद विषै अनेक विकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरियै तब विकल्प नाही, पहरने का सुख ही है। ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सो सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषै केवल स्वरूप सन्मुख भया। जातै वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषै एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होय तो भी स्वरूप ध्यानी को कुछ खबर नाही, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषै किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषै है। इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवको अतेन्द्रिय कहिए है जातै इन्द्रीनका धर्म तो यह है जो स्पर्श, रस, गध और वर्ण को जानै सो यहाँ नाही अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाही। तातै जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषै प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है। बहुरि इस स्वानुभवकों मन द्वारे भी भया कहिए जातै इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही हैं, और कोई ज्ञान नाही।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाही, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातै इन्द्रियका विषय मूर्त्तीक पदार्थ ही है। बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जातें मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषै एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं ताते याको मन द्वारै कहिये है।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषै सम्भवै है। तथा नाटक के कवित्तविषै कहा है—

दोहा:—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादित सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषै प्रवर्त्तै नाही तातै स्वानुभवकों मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने मे अरु मन जनित कहने मे कुछ विरोध नाही, विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा "जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातैं मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्त च तत्वार्थ सूत्रे—

"मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु।" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष सबंधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाही। चौथे गुणस्थान मे सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातैं सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है। वह जोव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, ताते तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाही है। सम्यक्त के तीन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जाते वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषै प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाही हैं।

क्षायक सम्यक्तीकै शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वाणुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातैं सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है, तातैं मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यथा—"**आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्**"। (तत्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषै प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"**स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।**"

जो ज्ञान अपने विषयको निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक हो ज्ञेय को सम्पूर्ण न जान सकै तातैं परोक्ष है और अवधि मन पर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकों स्पष्ट नीके जानै तातैं एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयको आप स्पष्ट जानै तातैं सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मन पर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातैं पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककों जानिए है, तातैं इनको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातैं जो एक वस्तु मे मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पाच भेद हैं—१ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए।

दृष्टात कर वस्तु निश्चय कीजिय सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।

हेतु के विचारतें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।

हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगम तें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाही। बहुरि अवधि मन पर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थके है नाही, तातै अनुभवविषैं अवधि मन.पर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाही। बहुरि यहाँ आत्माकूं स्पष्ट नीके जानै है, तातै पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तो सम्भवै नाही। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातै साव्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भवै नाही।

यहाँ पर तो आगम अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषै जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूं तैसा जान उस विषै परिणामोको मग्न करै है तातै आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मैं आत्मा ही हूँ तातै मुझविषै ज्ञान है, जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं। बहुरि जहाँ आत्मा नाही तहाँ ज्ञान भी नाही जैसे मृतक कलेवरादिक हैं। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तातै अनुमान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने में आया तिसहीको याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है तातै स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषै परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो हैं, ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषैं जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषै जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकों जानने रूप प्रवर्तै था, वह निर्विकल्प दशाविषै केवल आत्मा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषै परिणमै था सो केवल स्वरूप ही सो तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषैं उसके अश की भी जात नाही तातै उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषै भी आत्मा तो परोक्ष ही है तो ग्रथनविषै अनुभवकू प्रत्यक्ष कैसे कहिये? कारण कि ऊपरकी गाथा विषै ही **"पच्चक्खो अणुहवो जम्हा"** ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषै आत्मा तो परोक्ष ही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तो भासते नाही। परन्तु जो स्वरूपविषै परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादको वेदै है। जैसे कोई आधा पुरुष मिश्री कों आस्वादै है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसको भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषै कहिए है "हमने स्वप्नविषै वा ध्यान विषै फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाही परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाईं प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातै तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसे अनुभवविषै आत्मा प्रत्यक्ष की नाई यथार्थ प्रतिभासै है, तातै इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाही। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसो विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं?

ताका समाधान— चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल मे होय हैं और ऊपर के गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है, तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषै विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले हैं अर दो ही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषै कोई विकल्प नाही तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यजन, योग, संक्रमन रूप ऐसे क्यो कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताई मैथुन संज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषै निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताईं कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्य के जानने मे आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानै अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषै स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगा-दिक विषै सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टात लिखे वा दृष्टांत विषैं प्रश्न लिखा सो दृष्टात सर्वाङ्ग मिलता नाहीं। दृष्टात है सो एक प्रयोजन-कों दिखावै है सो यहाँ द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), जलबिन्दु, अग्नि-कण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमाशी का चन्द्र, महासागर तथा अग्नि-

कुण्ड ये सर्वदेश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवे गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयको प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माको प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाही, सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले कै मितश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवे गुणस्थान वाले कै केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसों जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तो जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयको निर्विकल्परूप जानै तैसे ए भी जानै सो तो है नाही, तातै प्रत्यक्ष परोक्ष मे विशेष जानना कह्या है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्व प्रकाशने।
भेद साक्षाद साक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत्॥

अष्टसहस्री दशमः परिच्छेद. १०५।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय सर्व तत्वो के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुत-ज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनो एक दूसरे से भिन्न नाही हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा है सो सत्य है परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणमन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माको प्रत्यक्ष जाने तो कर्मवर्गणाको प्रत्यक्ष क्यों न जानै ?"

सो कहिए है—आत्माको प्रत्यक्ष तो केवली ही जाने, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यो आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—यह दृष्टात प्रदेशन की अपेक्षा नाही, यह दृष्टांत गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व, स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुम हू जिनवाणीते तथा अपनी परणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताई लिखिये, जो बात जानिए सो लिखने मे आवै नाही। मिले कछु कहिये भी सो मिलना कर्माधीन, तातै भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममे रहना व अनुभव मे वर्तना। वर्तमान-कालविषै अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका सस्कृतविषै है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषै है तथा और भी अन्यग्रन्थविषै है। जो जानी है सो सर्व लिखनेमे आवै नाही। तातै तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषै मग्न रहना। अर तुम कोई विशेष ग्रन्थ जाने हो तो मुझको लिख भेजना। साधर्मी कै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाही परन्तु तुम सारिखे भाइनसो परस्पर विचार है सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाही तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फागुन बदी ५ स० १८११

—टोडरमल

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते।

एक जीवद्रव्य, ताके अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक एक गुणके असख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशविषै अनन्त कर्म-वर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनन्त पर्यायसहित विराज-मान है। या प्रमाण यह एक ससारावस्थित जीव पिडकी अवस्था है। याहीभाति अनन्त जीवद्रव्य सपिडरूप जानने। एकजीव द्रव्य अनन्त अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि सयोगित (सयुक्त) मानने। ताको व्यौरो—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परणति, अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्य-की परणति ताको व्यौरो—

एक जीवद्रव्य जा भाँतिकी अवस्थालिये नाना आकाररूप परिणमैं सो भाति अन्य जीवसो मिलै नाही। वाका यासे और भातिरूप परिणमण होय। याहीभाति अनतानत स्वरूप जीव द्रव्य अनतानत स्वरूप अवस्थालिये वर्त रह्या है वर्त काहु जीवद्रव्यके परिणाम काहु और जीवद्रव्य स्यों मिलै नाही। याही भाति एक पुद्गल परमाणु एक समयमाँहि जा भातिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमाणु द्रव्यसो मिलै नाही। तातै पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके, तामें विशेष इतनो जु जीवद्रव्य एक; पुद्गल परमाणु द्रव्य अनतानत,

चलाचलरूप, आगमनगमनरूप, अनताकार परिणमनरूप बंधमुक्ति-शक्ति लिये वर्तै है।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्ती अवस्था तामे तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीवद्रव्यकी जानना। संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहू अवस्थाको विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्धनिश्चय द्रव्यकों सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्ध व्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते —

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनो जु यावत्काल ससारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिए, सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातै जु ससार व्यवहार एक रूप दिखायो। ससारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो ससारी।

अब तीनहू अवस्था को विवरण लिख्यते :—

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकस्यो द्वादश गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तो द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारावस्थित भाव, ताको विवरण कहे हैं :—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनो स्वरूप नाही जानतो तातै परस्वरूप-विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतो छतो अशुद्ध-व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनो स्वरूप परोक्ष प्रमाणकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसो अपनो कार्य नाही मानतो सतो योगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करतो मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यात-चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमणशील है तातै शुद्धव्यवहारी कहिए, योगारूढ अवस्था विद्यमान है तातै व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थाकसो लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यन्त जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहार.।

अथ तीनहू व्यवहारको स्वरूप कहै है —

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोप-योगमिश्रित स्वरूपाचरणरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरणरूप। परन्तु विशेष इनको इतनो जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तो सिद्धहूविषै छतो है, वहा भी व्यवहार सज्ञा कहिए—सो यो नाही—जातै ससारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। ससारावस्था के मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहा यह थापना कीनी है, तातै सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्त।

अथ आगम अध्यात्मको स्वरूप कथ्यते —

आगम-वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव ससार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्योरो—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्या-

त्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताको व्यौरो कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम भावरूप पुद्गलाकारआत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तो जीवत्वपरिणाम, भावरूप ज्ञानदर्शन सुख-वीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार :—

अनतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसे—
वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजे ताको विचार दीर्घ दृष्टिसो कीजे तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है, सो वृक्ष जैसो कछु भ विकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वामें वास्तवरूप छतो है, अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसयुक्त है, फल फलविषै अनेक बीज होहि। या भातिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। और भी सूक्ष्मदृष्टि दीजे तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अतर्गभित वटवृक्षसयुक्त होहि। याही भाति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजे तो भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भाति अनतताको स्वरूप जाननो। ता अनतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै-अनन्तको और अत है ही नाही जो ज्ञानविषै भाषै। तातै अनन्तता अनन्तहीरूप प्रसिभासै, या भाति आगम

अध्यात्मकी अनन्तता जाननी। तामें विशेष इतनो जु अध्यातमको स्वरूप अनन्त, आगमको स्वरूप अनन्तानतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित, आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहू को स्वरूप सर्वथा प्रकार तो केवलज्ञानगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मन पर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेते यातै जु कथन मात्र तो ग्रथपाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानै नही। तातै मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निवदकत्वात्।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनो :—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै, काहे—यातै सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै, अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातै आगम अग को एकान्तपनो साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै, अध्यात्म अगको व्यवहारे न जानै—यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भाति सूझै, काहेते ?—यातै—जू आगम अंग बाह्यक्रिया रूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतो संतो आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सो अतरदृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टि के अभावसो अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाही, तातै मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यकदृष्टीको विचार सुनो :—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—सशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामै नाही सो सम्यग्दृष्टी। सशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो--जैसें च्यार पुरुष काहु एक स्थानक विषै ठाढे। तिन्ह चारिहू के आगे एक सीपको खड किनही और पुरुषने आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतें प्रश्न कीनी कि यह कहा है—सीप है कि रूपो है। प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो-कछु सुध नाही न परत, किधो सीप है किधो रूपो है, मोरी दृष्टिविषै याको निरधार होत नाहिनै। दूजो पुरुष भी विमोहवालो बोल्यो कि-कछू मोहि यह सुधि नाही कि तुम सीप कौनसों कहतु है, रूपो कोनसों कहतु है, मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही, तातै हम नाहिनै जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाहो गहलरूपसो। तीसरो पुरुष भी विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तो प्रत्यक्षप्रमाणरूपो है, याको सीप कौन कहै, मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझतु है तातै सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनो पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाही। तातै तीनो मिथ्यावादी। अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण सीपको खड है, यामें कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमाण भ्रामक अथवा अध, तैसे सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषै न ससै न विमोह न विभ्रम, यथार्थदृष्टि है तातै सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाही, अन्तरदृष्टिके प्रमाण मोक्षमार्ग साधै, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरणकी कनिका जागे मोक्षमार्ग साचो। मोक्षमार्गको साधिवोय है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसे निश्चय

व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै, मूढजीव न जानै न मानै। मूढ जीव बंधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाही। काहेते ? यातै जु बधके साधते बध सधै, मोक्ष सधै नाही। ज्ञाता जब कदाचित् बधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसो मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है--अब या पद्धतिसो मोह तोरि वहै तो या पद्धतिको राग पूर्वकी त्यो हे नर काहे करो ? छिन मात्र भी बधपद्धतिविषै मगन होय नाही सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै। यह ज्ञाताको आचार, याहीकौं नाम मिश्रव्यवहार।

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते —

हेय--त्यागरूप तो अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरण रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरो—गुणस्थानक प्रमाण हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यो ज्यो ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यो त्यो गुणस्थानककी बढवारी कही है, गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमाण क्रिया। तामे विशेष इतनो जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होहि तो अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाही। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होहि, तिन उदीकभावानुसारि ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परन्तु विशेष इतनो जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै, काहेतै ? अवस्थाप्रवान परसत्तावलबक है। ज्ञानको परसत्तावलबी

परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होंहि । तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर। न कर्त्ता न भोक्ता न अवलबी तातै कोऊ यो कहै कि या भातिके उदीक भाव होहि, सर्वथा तो फलानो गुणस्थानक कहिये सो भूठो। तिनि द्रव्यको स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यो नाही। काहेतै ? यातै जु और गुणस्थानकनिकी कौन बात चलावै, केवलीके भी उदीक-भावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाही। काहू केवलीको दड कपाटरूप क्रिया उदै होय, काहू केवली को नाही । तो केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थानककी कौन बात चलावै। तातै उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाही, ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति, ज्ञायक प्रमाण ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमाण —यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनो । इन बातनको व्यौरो कहाताई लिखिये, कहाताई कहिए । वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातै यह विचार बहुत कहा लिखहि। जो ज्ञाता होयगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुभैगा, जो अज्ञानी होयगो सो यह चिट्ठी सुनेगो सही परन्तु समुभैगा नही। यह वचनिका यथा का यथा सुमति-प्रवान के वलिवचनानुसारी है। जो याहि सुनेगो, समुभैगो, सरदहेगो, ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थ वचनिका समाप्त।

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको व्यौरो—निमित्त तो सयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको व्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको व्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना, ताकी चौभगी। प्रथम ही गुणभेद कल्पनाकी चौभगीको विस्तार कहू सो कैसै ?—ऐसै—सुनो—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभगीको विचार एक तो जीवको ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण।

ए दोनो गुण शुद्धरूप भाव जानने, अशुद्धरूप भी जानने, यथा-योग्य स्थानक मानने ताको व्योरो-इन दुहूँकी गति न्यारी२, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताको व्यौरो—ज्ञानगुणकी तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता परन्तु एक विशेष इतनो जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाही, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यत, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको व्यौरो कहै हैं,—सक्लेश विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मदो तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परन्तु एक विशेष जु मदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पचम गुणस्थानक पर्यन्त। यह तो दुहुको गुण भेद न्यारो

न्यारो कियो। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तो मर्यादा बध।

अथ चौभंगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको ब्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको ब्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देइकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी, समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी बात नाही चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भाति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान सक्लेश रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान सक्लेश चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, संक्लेश-रूप गति चारित्रकी तासमें निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू-समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमे अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान सकलेशरूप चारित्र तासमे शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमे शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताको ब्यौरो—जान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिये। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए सक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये। अब ताको विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसो जानतु है—

कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसो न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण मैं मरूगा ए यहा ही रहेगे सो जानतु है। अथवा ए जांयगे मैं रहू गा, कोई काल इनस्यो मोहि एक दिन वियोग है ऐसो जानपनो मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता, जब वस्तुको स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाही परन्तु गर्भित शुद्धता सो भी अकाम निर्जरा है, वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बध है, याही भाति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातै चारित्रा-वर्ण कर्म मद है। ता मदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण सक्लेशरूप है तातै केवल तीव्रबध है। या भाति करि मिथ्या अवस्थाविषै जा समै जानरूप ज्ञान है और विशुद्धतारूप चारित्र हे ता समै निर्जरा है। जा समै अजानरूप ज्ञान है सक्लेश रूप चारित्र है ता समै बध है, तामे विशेष इतनो जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातै मिथ्यात अवस्थाविषैकेवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसं— काहू पुरुषको नफो थोडो टोटो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परन्तु बन्ध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तो एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यो व्यवहारराशि कौनके बल आवतो ? वहा तो ज्ञान गुण अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातै ज्ञानगुणको तो बल नाही। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है, जीवद्रव्यविषै कषायकी मदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मदता प्रमाण शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो —

जानपनो ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गानुसारी हैं तातै दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनो जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाही। इन दुहू गुणकी गर्भित शुद्धता जब ताई ग्रथिभेद होय नाही तब ताँई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रथिभेद होइ तब इन दुहूंकी शिखा फूटै तब दोऊ गुण धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गको चलहि, ज्ञानगुणकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि, चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुण निर्मल होइ। वह केवलज्ञानको अकूर, वह यथाख्यातचारित्रको अकूर।

इहा कोऊ उटकना करतु है—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनो अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुस्यो निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनो सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासो निर्जरा कैसै ? यह हम नाही समुझी—ताको समाधानः—

सुनि भैया! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसो कहिये सो थिरता यथाख्यातको अश है तातै विशुद्धता मे शुद्धता आई। वह उटंकनावारो बोल्यो—तुम विशुद्धतासो निर्जरा कही, हम कहतु हैं कि विशुद्धतासो निर्जरा नाही, शुभबन्ध है—ताको सामाधान—कि सुन भैया यह तो तू साचो विशुद्धतासो शुभबन्ध, सक्लेशतासो अशुभबन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामें है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है, शुभपद्धति उर्द्धगतिको परणमण है तातै अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामै आई मानि मानि, यामे धोखो नाही है, विशुता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद बिना शुद्धताको

जोर चलत नाहीने ? जैसें कोऊ पुरुष नदी में डुबकी मारै फिर जब उछलै तब दैवयोगसो ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तो यद्यपि तारू पुरुष है तथापि कौन भाँति निकलै ? वाको जोर चलै नांहि, बहुतेरा कलबल करै पै कछु बसाइ नाँही, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तें गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रथिभेद भए मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण यथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताका जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहाँ मोक्षमार्ग साध्यो तहाँ कह्यो कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" और यों भी कह्यो कि "ज्ञानक्रिया-भ्या मोक्ष" ताको विचार-चतुर्थ गुणस्थानकस्यु लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताको व्यौरो, सम्यक्रूप ज्ञान-धारा विशुद्धरूप चारित्रधारा—दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसो ज्ञानकी शुद्धता क्रियासो क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामे शुद्धता है तो यथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामे शुद्धता का अश न होत तो ज्ञान गुण शुद्ध होतो, क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यो तो नही, वामे शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहा कोई कहेगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यो नाही। कोऊ गुण काहू गुणके सारै नही, सब असहाय रूप हैं। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तो अशुद्धताकी एती शक्ति नाही जु मोक्षमार्गको चलै तातै विशुद्धतामे यथाख्यातको अश है तातैं वह अ श क्रम क्रम पूरण भयो। ए भइया उटकनावारे—तै विशुद्धतामें शुद्धता मानी कि नाही। तै जो तो तै मानी तो कछु और

कहिवेको कार्य नाही। जो तै नाही मानी तो तेरो द्रव्य याही भाँति को परणयो है हम कहा करि हैं जो मानी तो स्याबासि। यह तो द्रव्यार्थिककी चौभगी पूरण भई।

निमित्त उपादान का शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभगी सुनो—एक तो वक्ता अज्ञानी श्रोता भी अज्ञानी सो तो निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथो वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका।
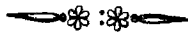
सस्ती ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. पदम पुराण ७)
२ रत्नकरण्ड श्रावकाचार ५)
३. मोक्षमार्ग प्रकाशक ३)
४. कल्याण गुटका १)५०पैसे
५ मानव धर्म)७५ ,,
६. सरल जैनधर्म)६२ ,,
७ प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्रथम भाग)६२ ,,
८. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर द्वितीय भाग)६२ ,,
९. स्वास्थ विधान)५० ,,
१०. वृहत् समाधि-मरण)३७ ५त
११ छहढाला सार्थ)३२ ,,
१२ भजन सग्रह)२५ ,,
१३. वैराग्य प्रकाश)२५ ,,
१४. दशधर्म लावनी)२५ ,,
१५. ब्रह्मचर्य रहस्य)२५ ,,
१६ जैन शतक)१६ ,,
१७. रहस्य पूर्ण चिट्ठी व छहढाला (मूल))२० ,,
१८. मेरी भावना)५ ,,

ाहा